तुलसी-ग्रंथावली

भाग १, खंड १

संपादक
माताप्रसाद गुप्त
एम्० ए०, डी० लिट०

हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

तुलसी के विषय में की गई डा० माताप्रसाद गुप्त की बहुमूल्य खोजों से तथा उनके ग्रंथ 'तुलसीदास' से हिंदी-संसार भली-भाँति परिचित है। अब उन्होंने तुलसी की समस्त-रचनाओं का वैज्ञानिक ढंग से पाठ-निर्धारण प्रारंभ किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अधिक प्रचलन के कारण तुलसी के संस्करणों में प्रक्षिप्तांशों की भरमार है और संशोधित तथा प्रामाणिक पाठ के प्रकाश में लाने की अत्यंत आवश्यकता है। हिंदुस्तानी एकेडेमी से तुलसी-ग्रंथावली दो भागों में प्रकाशित हो रही है। पहले भाग के दो खंड हैं। पहले खंड में ग्रंथावली के विद्वान संपादक ने पाठ-संबंधी समस्याओं का व्यापक विवेचन तथा समाधान किया है। दूसरे खंड में श्रीरामचरितमानस का पाठ प्रस्तुत किया गया है, और उसमें, पद-टिप्पणियों में, अबतक के उपलब्ध सभी महत्वपूर्ण पाठांतर दे दिए गए हैं। इसका एक सस्ता संस्करण अलग से भी प्रकाशित है। कहना न होगा कि यह अपने ढंग का हिंदी में प्रथम प्रयास है।

तुलसी-ग्रंथावली के दूसरे भाग में तुलसी की अन्य रचनाओं के संशोधित पाठ होंगे तथा पाठ-संबंधी समीक्षा होगी।

पूज्य गुरु

श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)

की सेवा में

सादर और सस्नेह

अर्पित

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास का 'राम चरित मानस' भारतीय साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ ग्रथ मात्र नही है, बल्कि उत्तर भारत की वर्तमान सस्कृति की सब से प्रमुख आधार-शिला है। पिछले तीन सौ वर्षों में भारतीय विचार धारा को जितना इस कृति ने प्रभावित किया है, उतना किसी अन्य ने नही। समाज के सभी अगो को इसने अभूतपूर्व बल और जीवन प्रदान किया है। परिणामस्वरूप इस ग्रथ को अप्रतिम लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है—देश में मुद्रणकला के प्रचार के साथ इस के सहस्राधिक सस्करण तो प्रकाशित हुए ही हैं, इसके पूर्व भी इसकी अगणित हस्तलिखित प्रतियों ने भारतीय जनसमुदाय की मानसिक और आध्यात्मिक पिपासा दूर की है।

इतने विभिन्न सस्करणों और प्रतियों के पाठो में यदि अतर मिलता है तो वह स्वाभाविक है। जब-तब विद्वानो ने इन विभिन्न पाठों की सहायता से ग्रथ का सपादित पाठ प्रस्तुत किया है, और उनके इन प्रयासो से निस्सदेह उपकार हुआ है—ग्रथ की पाठ विकृति रुक गई है, और सामान्य पाठक में भी ग्रथ के प्रामाणिक पाठ के जानने और समझने की उत्कठा जागृत हो गई है। फिर भी ग्रथ के पाठ की जो मुख्य समस्या है, वह बनी हुई है—और वह यह है कि इन विभिन्न पाठातरों के बीच में से होते हुए स्वत रचयिता के पाठ के अधिक से अधिक निकट किस प्रकार पहुँचा जा सकता है, और जो पाठातर बाहुल्य मिलता है उसका अधिक से अधिक सतोषजनक रूप में समाधान किस प्रकार किया जा सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास का विशेष अध्ययन प्रस्तुत सपादक का पिछले उन्नीस वर्षों का विषय रहा है, और इस सपूर्ण अवधि में गोस्वामी जी की कृतियों—और विशेष रूप से 'राम चरित मानस' के पाठ के विषय में उपर्युक्त समस्या उसके सामने रही है। ऐसा नहीं है कि अन्य सपादकों के सामने यह समस्या नही रही है, किंतु उन्होंने इसे जिस प्रकार सुलझाया है उससे प्रस्तुत सपादक को सतोष नही हुआ है। इसीलिए उसे प्रस्तुत प्रयास की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

'रामचरितमानस' का पाठ प्राय निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है

(१) सपूर्ण ग्रथ के लिए किसी एक प्रति का पाठ लेकर—अधिक से अधिक लिखावट की भूलों का मार्जन करते हुए

(२) किन्ही विशेप काडों के लिए किन्हीं विशेप प्रतियो के पाठ और शेप के लिए किसी अन्य प्रति या सपादित सस्करण का पाठ लेते हुए,

(३) सपूर्ण ग्रथ के लिए एक से अधिक प्रतियो या सपादित सस्करणो के पाठ लेकर जहाँ पर जो पाठ ठीक ज्ञात होता हे उसको ग्रहण करते हुए, और

(४) सपूर्ण ग्र थ के लिए समस्त वहिर्साक्ष्य और अतसाक्ष्य का विश्लेपण करके निकाले हुए व्यापक सिद्धातो का अनुसरण करते हुए।

ये सभी प्रणालियाँ काम की हैं, किंतु किन परिस्थितियो में किससे सतोपजनक परिणाम निकल सकता है यह सक्षेप में समझ लेना चाहिए।

पहली प्रणाली से प्राप्त पाठ तभी सतोषजनक होगा जब कि आधारभूत प्रति स्वत कवि लिखित हो, अथवा उस प्रति की कोई ऐसी प्रतिलिपि हो जिसे सतर्कता के साथ मूल प्रति के अनुसार तेयार किया गया हो। किंतु यह कहने मे मुझे सकोच नही हे कि निश्चित रूप से इस प्रकार की कोई प्रति अभी तक नही ज्ञात हो सकी है और इसलिए इस प्रणाली का आश्रय ग्रहण करने पर भय यह हो सकता है कि सपादित पाठ कवि के पाठ से दूर जा पडे।

दूसरी प्रणाली से प्राप्त पाठ भी तभी सतोपजनक होगा जब कि विभिन्न काडो की प्रतियाँ कवि लिखित या उनकी समकक्ष हो, अन्यथा जितनी शाखाओ की प्रतियाँ होगी, उतनी ही शाखाओं के पाठ मूल पाठ मे आ मिलेंगे।

तीसरी प्रणाली के द्वारा कवि के पाठ के अधिक से अधिक निकट तभी पहुँचा जा सकता है जब कि 'ठीक' पाठ का निश्चय केवल अपनी सुरुचि या कल्पना का आश्रय लेते हुए न किया जावे, वल्कि प्रमुख रूप से वहिर्साक्ष्य और अतर्साक्ष्य का आश्रय लेते हुए किया जाए, और अपनी सुरुचि या कल्पना को इन दोनों का सयोजक और

अनुवर्ती बनाया जावे। इस बात को किंचित् और स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

बहिर्साक्ष्य से तात्पर्य है वह प्रकाश जो पाठ-समस्या पर विभिन्न प्रतियों से प्राप्त होता है। अंतर्साक्ष्य से तात्पर्य है वह प्रकाश जो पाठ-समस्या पर कवि की विचार-धारा, प्रसंग की आवश्यकता तथा कवि की भाषा और शाब्दिक प्रयोग आदि की प्रवृत्तियो से पड़ता है। और, अपनी सुरुचि या कल्पना को इन दोनो का सयोजक और अनुवर्ती बनाने का आशय यह है कि उसे इन दोनो—अर्थात् बहिर्साक्ष्य और अंतर्साक्ष्य—की परिधियो के केंद्र में रखते हुए ऐसे सिद्धातो का अनुसरण किया जावे जो दोनो के अंतर को यथासभव दूर कर सकें। किंतु, इतना सब होने पर तीसरी प्रणाली ही चौथी प्रणाली बन जाती है। यदि इन प्रणालियो मे इतनी सतर्कता से कार्य न लिया गया तो ग्रंथ का पाठ कवि का न होकर सपादक का हो सकता है।

प्रथम तीन प्रणालियो पर प्रयास किए जा चुके हैं—उदाहरण के लिए श्रावणकुंज, अयोध्या की प्रति के अनुसार प्रस्तुत किए गए बाल कांड के, और राजापुर की प्रति के अनुसार प्रस्तुत किए गए अयोध्या कांड के कुछ सस्करण, रघुनाथदास, बंदन पाठक और कोदव राम के संपूर्ण ग्रंथ के सस्करण—जिनका परिचय आगे मिलेगा—पहली प्रणाली के हैं, श्री विजयानंद त्रिपाठी का भारती भंडार का सस्करण, और श्री नंददुलारे वाजपेयी का 'कल्याण' के 'मानसाङ्क' के रूप मे प्रकाशित गीता प्रेस का सस्करण दूसरी प्रणाली के हैं, और काशी से प्रकाशित भागवतदास खत्री का सस्करण तीसरी प्रणाली का है। चौथी प्रणाली पर अभी तक कोई सस्करण नहीं प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत सपादक का प्रयास इसी चौथी प्रणाली का है। कवि की स्वहस्तलिखित या उसकी समकक्ष प्रतियों के अभाव मे यही एकमात्र प्रणाली रह जाती है जिसकी सहायता से कवि के पाठ के अधिक से अधिक निकट पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है।

इस प्रणाली पर जो कार्य प्रस्तुत सपादक ने किया है, वह इतना विस्तृत है कि उसको एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप मे प्रस्तुत करने की आवश्यकता हुई है। 'रामचरितमानस का पाठ' नाम से वह ग्रंथ प्रेस में है, और शीघ्र प्रकाशित होगा। यह सस्करण उसी मे प्रस्तुत किए गए पाठानुसधान के अनुसार है। यहाँ पर केवल कुछ

'रामचरितमानस' का पाठ प्राय निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है

(१) सपूर्ण ग्रथ के लिए किसी एक प्रति का पाठ लेकर—अधिक से अधिक लिखावट की भूलो का मार्जन करते हुए

(२) किन्ही विशेष काडो के लिए किन्हीं विशेष प्रतियो के पाठ और शेष के लिए किसी अन्य प्रति या सपादित सस्करण का पाठ लेते हुए,

(३) सपूर्ण ग्रथ के लिए एक से अधिक प्रतियो या सपादित सस्करणो के पाठ लेकर जहाँ पर जो पाठ ठीक ज्ञात होता है उसको ग्रहण करते हुए, और

(४) सपूर्ण ग्रथ के लिए समस्त वहिर्साक्ष्य और अतसाक्ष्य का विश्लेषण करके निकाले हुए व्यापक सिद्धातो का अनुसरण करते हुए।

ये सभी प्रणालियाँ काम की हैं, किंतु किन परिस्थितियो मे किससे सतोषजनक परिणाम निकल सकता है यह सक्षेप में समझ लेना चाहिए।

पहली प्रणाली से प्राप्त पाठ तभी सतोषजनक होगा जब कि आधारभूत प्रति स्वत कवि लिखित हो, अथवा उस प्रति की कोई ऐसी प्रतिलिपि हो जिसे सतर्कता के साथ मूल प्रति के अनुसार तैयार किया गया हो। किंतु यह कहने मे मुझे सकोच नही है कि निश्चित रूप से इस प्रकार की कोई प्रति अभी तक नही ज्ञात हो सकी है, और इसलिए इस प्रणाली का आश्रय ग्रहण करने पर भय यह हो सकता है कि सपादित पाठ कवि के पाठ से दूर जा पडे।

दूसरी प्रणाली से प्राप्त पाठ भी तभी सतोषजनक होगा जब कि विभिन्न काडो की प्रतियाँ कवि लिखित या उनकी समकक्ष हो, अन्यथा जितनी शाखाओ की प्रतियाँ होगी, उतनी ही शाखाओ के पाठ मूल पाठ मे आ मिलेंगे।

तीसरी प्रणाली के द्वारा कवि के पाठ के अधिक से अधिक निकट तभी पहुँचा जा सकता है जब कि 'ठीक' पाठ का निश्चय केवल अपनी रुचि या कल्पना का आश्रय लेते हुए न किया जावे, वल्कि प्रमुख रूप से वहिर्साक्ष्य और अतर्साक्ष्य का आश्रय लेते हुए किया जावे, और अपनी सुरुचि या कल्पना को इन दोनो का सयोजक और

अनुवर्ती बनाया जावे। इस बात को किंचित् और स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

बहिर्साक्ष्य से तात्पर्य है वह प्रकाश जो पाठ-समस्या पर विभिन्न प्रतियों से प्राप्त होता है। अंतर्साक्ष्य से तात्पर्य है वह प्रकाश जो पाठ-समस्या पर कवि की विचार-धारा, प्रसंग की आवश्यकता तथा कवि की भाषा और शाब्दिक प्रयोग आदि की प्रवृत्तियों से पड़ता है। और, अपनी सुरुचि या कल्पना को इन दोनों का संयोजक और अनुवर्ती बनाने का आशय यह है कि उसे इन दोनों—अर्थात् बहिर्साक्ष्य और अंतर्साक्ष्य—की परिधियों के केंद्र में रखते हुए ऐसे सिद्धांतों का अनुसरण किया जावे जो दोनों के अंतर को यथासंभव दूर कर सकें। किंतु, इतना सब होने पर तीसरी प्रणाली ही चौथी प्रणाली बन जाती है। यदि इन प्रणालियों में इतनी सतर्कता से कार्य न लिया गया तो ग्रंथ का पाठ कवि का न होकर संपादक का ही सकता है।

प्रथम तीन प्रणालियों पर प्रयास किए जा चुके हैं—उदाहरण के लिए श्रावणकुंज, अयोध्या की प्रति के अनुसार प्रस्तुत किए गए बालकांड के, और राजापुर की प्रति के अनुसार प्रस्तुत किए गए अयोध्याकांड के कुछ संस्करण, रघुनाथदास, वंदन पाठक और कोदवराम के संपूर्ण ग्रंथ के संस्करण—जिनका परिचय आगे मिलेगा—पहली प्रणाली के हैं, श्री विजयानंद त्रिपाठी का भारती भंडार का संस्करण, और श्री नंददुलारे वाजपेयी का 'कल्याण' के 'मानसाङ्क' के रूप में प्रकाशित गीता प्रेस का संस्करण दूसरी प्रणाली के हैं, और काशी से प्रकाशित भागवतदास खत्री का संस्करण तीसरी प्रणाली का है। चौथी प्रणाली पर अभी तक कोई संस्करण नहीं प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत संपादक का प्रयास इसी चौथी प्रणाली का है। कवि की स्वहस्तलिखित या उसकी समकक्ष प्रतियों के अभाव में यही एकमात्र प्रणाली रह जाती है जिसकी सहायता से कवि के पाठ के अधिक से अधिक निकट पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है।

इस प्रणाली पर जो कार्य प्रस्तुत संपादक ने किया है, वह इतना विस्तृत है कि उसको एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता हुई है। 'रामचरितमानस का पाठ' नाम से वह प्रेस में है, और शीघ्र प्रकाशित होगा। यह संस्करण उसी में प्रस्तुत किए गए पाठानुसंधान के अनुसार है। यहाँ पर केवल कु

त्यंत स्थूल बातों का उल्लेख किया जा रहा है। इन समस्त बातो का
रा विवरण उक्त 'रामचरितमानस का पाठ' नामक ग्रंथ में मिलेगा।

'राम चरित मानस' की जो प्रतियाँ अभी तक देखने मे आई हैं, पाठसाम्य की दृष्टि से चार शाखाओ मे विभक्त की जा सकती। इन चारो शाखाओं की जिन प्रतियो का आधार लेकर यह कार्य क्या गया है, उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक की ादटिप्पणियो मे पाठांतरों का निर्देश करते हुए उन शाखाओ और ्रतियो के लिए जिन संकेतों और सकेत-सख्याओ का उपयोग किया गया है, वे नीचे उनके साथ बाएँ सिरे पर हैं।

प्र० : प्र थ म शा खा

(१) : स० १७२१ वि० की प्रति—जो भारत कला भवन, काशी मे है। इसका अयोध्या कांड प्राप्त नही है। पाठ मे सशोधन स्वच्छंदता-पूर्वक किया गया है।

(२) : सं० १७६२ वि० की प्रति—जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के भूतपूव पुस्तकाध्यक्ष स्वर्गीय पं० शभुनारायण चौबे के संग्रह में थी, और उन्ही से उपयोग के लिये प्रस्तुत संपादक को प्राप्त हुई थी। यह उपर्युक्त स० १७२१ वि० की प्रति की प्रतिलिपि मात्र प्रमाणित हुई है।

द्वि० : द्वि ती य शा खा

(३) : छक्कनलाल की प्रति—जो सं० १८१६ से १८२१ वि० के बीच महामहोपाध्याय स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी के पिता पं० कृपालु द्विवेदी की लिखी हुई है, और उन्हीं के वंशधरों के पास है। इस प्रति में भी पाठ-सशोधन स्वच्छंदता-पूर्वक किया गया है।

(४) : रघुनाथदास की प्रति—जो यद्यपि इस समय अप्राप्त है, किंतु जिसके अनुसार सं० १८२६ वि० मे काशी से ग्रथ का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। भागवतदास खत्री के संस्करण की तुलना में उस संस्करण के पाठभेद उपयुक्त प० शंभुनारायण चौबे ने अपने *'रामचरितमानस के पाठभेद'* शीर्षक एक अत्यंत उपयोगी लेख में प्रकाशित किए थे। प्रस्तुत काय मे इन्हीं प्रकाशित पाठभेदों की सहायता ली गई है

(५) : चंदन पाठक की प्रति—जो यद्यपि इस समय अप्राप्य

किंतु जिसके अनुसार सं० १९४६ वि० में काशी से प्रकाशित 'राम चरित मानस' के एक अन्य संस्करण के भी पाठभेद उपर्युक्त प्रकार चौबे जी ने प्रकाशित किए थे। प्रस्तुत कार्य में इन्हीं प्रकाशित पाठभेदों की सहायता ली गई है।

(५अ): मिर्जापुर की दो प्रतियाँ—एक सं० १८७८ वि० की जो लेखक के संग्रह में है, और दूसरी सं० १८८१ की प्रति जो कोतवाली रोड, मिर्जापुर के बाबू कैलाशनाथ के पास है। इनका पाठ प्रायः एक है—केवल दूसरी प्रति का बाल कांड अप्राप्य है।

तृ० : तृ ती य शा खा

(७): कोदवराम की प्रति—जो इस समय अप्राप्य है, किंतु जिसके अनुसार सं० १९५३ वि० में और पुनः सं० १९६५ वि० में श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई से 'राम चरित मानस' के संस्करण प्रकाशित हुए थे। प्रस्तुत कार्य में सं० १९६५ वि० के संस्करण का उपयोग किया गया है।

च० : च तु र्थ शा खा

(६): सं० १७०४ वि० की प्रति—जो श्री काशिराज के संग्रह में है।

(६अ): सं० १६६१ वि० की बाल कांड की प्रति—जो श्रावण-कुंज, अयोध्या में है। यह प्रति सं० १६६१ वि० की मानी जाती आ रही है—मैंने स्वतः अब तक अपने ग्रंथों और लेखों में इस तिथि का उल्लेख किया है, किंतु यह वास्तव में '८' की संख्या को '६' में परिवर्तित करके इस प्रकार कवि के जीवन काल की बनाई गई है। इस प्रति में भी पाठ-संशोधन स्वच्छंदता-पूर्वक किया गया है।

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक होगा, कि एक तो १६६१ तथा १७०४ की प्रतियों में निकटतम पाठसाम्य है, और वे न केवल एक शाखा की हैं वरन् एक ही मूल प्रति की दो प्रतिलिपियाँ हैं, यह भली-भाँति प्रमाणित हुआ है। दूसरे, इन दोनों का प्रतिलिपि-संबंध प्रथम शाखा की १७२१-१७६२ की प्रतियों से भी प्रमाणित हुआ है, और वह इस प्रकार का है कि १६६१ तथा १७०४ की प्रतियाँ जिस मूल की प्रतिलिपियाँ हैं वह अथवा उसका कोई पूर्वज और १७२१ की प्रति अथवा उसका कोई पूर्वज किसी ऐसी आदिम मूल प्रति:

प्रति-लिपियाँ थीं जो निश्चित रूप से कवि लिखित नहीं कही जा सकती है।

(८) · बाल काड की एक प्रति—जो स० १६०५ वि० की है, और हिंदू सभा, मुँगरा बादशाहपुर, जिला जौनपुर के पुस्तकालय में है।

अयोध्या काड की सुप्रसिद्ध राजापुर की प्रति—जिसके अत मे कोई पुष्पिका नहीं दी हुई है।

अरण्य काड की एक प्रति—जो मिर्जापुर-निवासी श्री हरिदास दलाल के पास है, और जो यद्यपि पुष्पिका में स० १६४१ वि० की बताई गई है, किंतु प्रामाणिक रूप से उक्त तिथि की नहीं मानी जा सकती है।

सु दर काड की एक प्रति—जो प्रस्तुत सपादक को बड़ोरिकपुर, परगना मुँगरा, जिला जौनपुर के स्वर्गीय प० धनजय शर्मा से प्राप्त हुई थी, और जिसकी पुष्पिका मे दी हुई स० १८६४ की तिथि के '८' को '६' बना कर प्रति को कवि के जीवन-काल की बनाया गया है।

लका काड की दो प्रतियाँ—जो प्रस्तुत स पादक को उपर्युक्त स्व० धनजय शर्मा से प्राप्त हुई थीं, और जिनमे से एक की पुष्पिका में दी हुई स० १८८७ वि० की तिथि के '८' को '६' बना कर प्रति को वास्तविक समय से २०० वर्ष और पूर्व की बनाया गया है, और दूसरी की पुष्पिका में दी हुई स० १८०२ की तिथि के '८' को '७' बना कर प्रति को वास्तविक से १०० वर्ष और पूर्व की बनाया गया है।

उत्तर काड की एक प्रति—जो प्रस्तुत सपादक को उपर्युक्त स्व० धनजय शर्मा से प्राप्त हुई थी, और जिसकी पुष्पिका मे दी हुई स० १८८३ वि० की तिथि के '८' को '६' बनाकर उसे २०० वर्ष और प्राचीन बनाया गया है।

ऊपर की शाखाओं में परस्पर पाठ विषयक कितना अतर है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि प्रथम शाखा की (१)-(२) और चतुर्थ शाखा की ऊपर बताई गई उसकी निकटतम प्रतियों (६)(६अ) भी प्राय १००० स्थलो पर पाठभेद है प्रथम और तृतीय शाखाओं मे भी पाठभेद प्राय इतना ही है, और प्रथम और द्वितीय शाखाओ मे पाठभेद प्राय इसका आधा ही होगा। इस अतर का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है, और इस विशाल पाठभेद के बीच से कवि के पाठ को किस प्रकार निकाला जा सकता है, ग्र थ के पाठ निर्धारण की सबसे टेढ़ी समस्या यही है।

इन विभिन्न शाखाओं के पाठों की वहिर्साक्ष्य और अंतर्साक्ष्य के अनुसार सम्यक् परीक्षा के अनंतर ज्ञात हुआ है कि यद्यपि विभिन्न शाखाओं के सब के सब पाठभेद किसी समाधान-क्रम में नहीं रक्खे जा सकते, फिर भी एक महत्वपूर्ण संख्या इनमें ऐसे पाठभेदों की है जो एक समाधान-क्रम में रक्खे जा सकते हैं, और यह है पाठ-संस्कार-क्रम, जिससे यह मानना पड़ेगा कि इस पाठभेद का एक मुख्यतम कारण किसी के द्वारा किया गया पाठ-संस्कार का प्रयास है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट होगी। बाल कांड में पाठभेद के मुख्य स्थल ३५७ हैं। इनमें से २७८ स्थलों पर जो पाठभेद है, उसमें किसी प्रकार का क्रम या शृंखला नहीं है, किंतु शेष ७९ पर वह पाठ-संस्कार-क्रम दिखाई पड़ता है। प्रथम शाखा का पाठ इस दृष्टि से सब से पूर्व का पाठ ज्ञात होता है। उसकी तुलना में उपर्युक्त ७९ में से ३८ स्थल ऐसे हैं जिनका उत्कृष्टतर पाठभेद द्वितीय, तृतीय, तथा चतुर्थ शाखाओं में, २३ स्थल ऐसे हैं जिनका उत्कृष्टतर पाठभेद तृतीय और चतुर्थ शाखाओं में, और १८ स्थल ऐसे हैं, जिनका उत्कृष्टतर पाठभेद केवल चतुर्थ शाखा में मिलता है। प्रायः इसी ढंग की विशेषता शेष कांडों के पाठभेदों में भी दिखाई पड़ती है।

यहाँ जो 'उत्कृष्टतर' शब्द का प्रयोग किया गया है, उसके विषय में इतना ही और कहने की आवश्यकता है कि उत्कृष्टतर होने के साथ-साथ वह कवि प्रयोगसम्मत भी है, और इसलिए यह पाठ-संस्कार स्वतः कवि-कृत ज्ञात होता है। फलतः इस दृष्टि से देखने पर ऊपर की प्रथम, द्वितीय, तृतीय, और चतुर्थ शाखाएँ—यद्यपि किंचित् विकृत रूप में—ग्रंथ के पाठ-संस्कार की क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थितियाँ भी प्रस्तुत करती हैं।

इस स्थिति-क्रम के स्वीकृत किए जाने पर पाठ-निर्णय के विषय में नीचे लिखे स्थूल परिणाम आवश्यक हो जाते हैं :—

(क) जिन स्थलों पर प्रथम शाखा और चतुर्थ शाखा में पाठ एक ही मिलता है, किंतु बीच की शाखाओं में उससे भिन्न मिलता है, वहाँ पर बीच की स्थितियों के लिए भी वही पाठ स्वीकृत किया जाना चाहिए जो प्रथम और चतुर्थ शाखाओं में मिलता है, और अन्य पाठों को अस्वीकृत करना चाहिए। इस विषय में इतना और देख लेना होगा कि जिन स्थलों पर प्रथम शाखा और चतुर्थ शाखा का इस प्रकार

का पाठसाम्य केवल (१)- (२) तथा (६)।(६अ) का पाठसाम्य है वहाँ पर यह केवल दोनों समूहों में ऊपर बताए गए घनिष्ठ प्रतिलिपि सबध के कारण तो नहीं है।

(ख) जिन स्थलो पर प्रथम शाखा और चतुर्थ शाखा एक दूसरे से भिन्न पाठ देती है, वहाँ पर सामान्यत प्रथम शाखा का पाठ एक छोर का और चतुर्थ शाखा का दूसरे छोर का मानना होगा।

(ग) जिन स्थलो पर चतुर्थ शाखा का पाठ बीच की किसी शाखा से इस प्रकार मिलने लगता है कि पूर्ववर्ती पाठ उसके और चतुर्थ शाखा के बीच मे नही मिलता, वहाँ पर यह मानना होगा कि उक्त भिन्न पाठ सस्कार-क्रम मे उक्त स्थिति से प्रारभ होता है।

प्रस्तुत सस्करण मे ऊपर की चारो शाखाएँ ही नही चारों स्थितियो के भी पाठो का नियोजित रूप प्रस्तुत किया गया है। मूल में चतुर्थ स्थिति का पाठ देते हुए, पाठभेद वाले स्थलो पर पाद-टिप्पणियो मे चारो स्थितियो के पाठ दिए गए हैं। प्रत्येक स्थिति के लिए स्वीकृत पाठ उक्त शाखा का सकेताक्षर देते हुए दिया गया है, और अस्वीकृत पाठ प्रतियो का निर्देश करते हुए चौकोर कोष्ठकों में दिया गया ह। जहाँ पर किसी स्थिति का पाठ पूववर्ती स्थिति का स्वीकृत पाठ ही है, वहाँ पर उक्त पाठ के स्थान पर उक्त पूर्ववर्ती स्थिति की शाखा का सकेताक्षर मात्र दिया गया है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

मूल मे पाठ दिया गया है —

चिदानद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम। (बाल० ७५)

यह पाठ चतुर्थ स्थिति का है। पादटिप्पणी मे 'काम' शब्द के पाठ के विषय में निम्नलिखित सूचनाएँ हैं.

प्र० : काम [(२) : मान] द्वि०, तृ० : प्र०। च० : प्र० [(६) (६अ) : मान]।

इस सूचना का आशय यह है कि प्रथम स्थिति के लिए 'काम' पाठ स्वीकृत किया गया है, (२) में 'मान' पाठ अवश्य मिलता है, किंतु (२) का यह पाठ स्वीकृत नही किया गया है, क्योकि वह जिस प्रति की प्रतिलिपि है, उस (१) में पाठ 'काम' है। द्वितीय तथा तृतीय स्थितियो मे भी प्रथम स्थिति का स्वीकृत पाठ ही है। चतुर्थ स्थिति मे भी 'काम'

पाठ स्वीकृत किया गया है, क्योंकि पूर्व की स्थितियों का यह पाठ चतुर्थ शाखा की एक प्रति में मिलता है, यद्यपि उसकी सब से प्रमुख और प्राचीन प्रतियों (६) तथा (६अ) में 'मान' पाठ मिलता है। यदि प्रथम स्थिति का स्वीकृत और द्वितीय और तृतीय स्थितियों का एकमात्र पाठ 'काम' चतुर्थ स्थिति की किसी भी प्रति में न मिलता, तो 'मान' पाठ को इस दृष्टि से देखने की आवश्यकता होती कि वह पाठ-संस्कार की भावना से कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया तो नहीं है। (६) और (६ अ) एक ही मूल की प्रतिलिपियाँ है, इसलिए इन दोनो का प्रमाण भी वस्तुतः एक ही प्रति का प्रमाण हो जाता है, और यह अनुमान किया जा सकता है कि मूल की भूल दोनों प्रतियों में आ सकती है।

इन पाठभेदों का कवि की विचारधारा, प्रसंग तथा कवि-प्रयोग आदि के अनुसार विवेचन मेरे 'रामचरितमानस का पाठ' नामक उक्त ग्रंथ में मिलेगा।

इस प्रसंग में इतना ही और कहने की आवश्यकता है कि प्रथम तीन शाखाओं के प्रायः समस्त स्थलों के पाठभेद पादटिप्पणी में दिए गए हैं, किंतु चतुर्थ शाखा की (८) संख्यक प्रतियों के उन स्थलों पर के पाठभेद नहीं दिए गए हैं जिनके विषय में (६)(६अ) का पाठ अन्य शाखाओं के पाठ से अभिन्न है, क्योंकि (८) संख्यक प्रतियाँ—जिनमें राजापुर की भी प्रति है—बड़ी असावधानी के साथ लिखी गई हैं, और—कदाचित् राजापुर की प्रति के अतिरिक्त—सभी बहुत पीछे की भी हैं। इसी प्रकार चतुर्थ शाखा की किसी प्रति में पाई जाने वाली ऐसी अतिरिक्त पंक्तियाँ भी नहीं दी गई हैं जो उस शाखा की ही अन्य प्रतियों मे नही पाई जातीं—ऐसा पंक्तियाँ (८) संख्यक कुछ प्रतियों में तो हैं ही, (६) में भी कुछ कांडों में हैं, और स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त हैं।

प्रयुक्त अक्षर-विन्यास के विषय मे इतना ही कहना है:—

१—प्रतियों में 'ष' का प्रयोग 'ख' तथा 'ष' दोनो के स्थान पर किया गया है; दोनों को इस संस्करण में अलग अलग कर दिया गया है;

२—प्रतियों में अनुस्वार के बिंदु का ही प्रयोग सानुनासिक के लिए भी हुआ है। संस्करण में शिरोरेखा के ऊपर लगने वाली मात्राओं के साथ ही ऐसा हुआ है, अन्यथा अनुस्वार के लिए बिंदु और सानुनासिक के लिए चंद्रबिंदु रक्खा गया है।

३—प्रतियो मे 'ये' केवल कुछ प्रयोगों मे मिलता है, यथा 'येहि', तथा 'आयेसु' मे, अन्यथा 'ए' ही प्रयुक्त हुआ है, सस्करण मे भी प्राय इसी प्रकार मिलेगा।

४—प्रतियो का आद्य 'अै' स स्करण में कहीं-कहीं पर बना रहने दिया गया है, अन्यथा सामान्यत उसका रूप 'ऐ' कर दिया गया है।

५—प्रतियो मे अत्य 'ऐ' और 'औ' कभी-कभी 'अइ' और 'अउ' की भाँति प्रयुक्त हुए हैं, यथा 'करै' और 'करौ' मे, किंतु प्राय 'अइ' अत्य रूप मिलते हैं, 'ऐ' अत्य नहीं, सस्करण मे भी प्राय यह बात मिलेगी।

६—प्रतियो मे 'श्र' के स्थान पर भी यद्यपि सामान्यत 'स्र' रूप मिलता है, किंतु कभी कभी 'श्र' रूप भी मिलता है, यथा 'श्री' और 'श्रुति' मे। सस्करण मे भी यह बात मिलेगी।

अक्षर विन्यास के विषय मे एकरूपता लाने के लिए प्रस्तुत सस्करण मे कोई व्यापक प्रयास नही किया गया है इसलिए तत्सबधी विषमता मिलेगी।

आभार स्मरण शेष है। उपर्युक्त समस्त प्रतियों के स्वामियो का मै आभारी हूँ, जिन्होने अपनी प्रतियो का उपयोग करने की मुझे सुविधाएँ प्रदान की। उनकी कृपा के बिना यह कार्य असभव था। विशेष आभारी मै काशी के श्री राय कृष्णदास जी का हूँ, जिन्होने न केवल भारत कला भवन की १७२१ की प्रति वरन् प० शभुनाथ चौबे की १७६२ कीप्रति और छक्कनलाल की स्व० सुधाकर द्विवेदी के उत्तराधिकारियो की प्रति भी मुझे सुलभ कर दी थी।

किंतु सब से अधिक श्रद्धेय डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का कृतज्ञ हूँ, जिन्होने मेरे सभी अन्वेषण कार्यों की भाँति इस कार्य मे भी मुझे प्रोत्साहन प्रदान किया है।

इस सस्करण के मुद्रक हिंदी साहित्य प्रेस, प्रयाग का भी मैं आभारी हूँ, जिसने इस सस्करण को भरसक शुद्ध छापने का यत्न किया है।

माताप्रसाद गुप्त

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री राम चरित मानस

प्रथम सोपान

बाल कांड

श्लो०—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणी विनायकौ ॥
भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतःस्थमीश्वरं ॥
वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते ॥
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥
उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभां ॥
यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः ॥
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं ॥
नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ॥

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवौ सकल कलिमल दहन॥
नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करौ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुनाअयन।
जाहि दीन पर नेह करौ कृपा मर्दन मयन॥
बंदौ गुर पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर॥

बंदौ गुर पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअँ मूरि मय चूरनु चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलकु गुन गन बस करनी॥
श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बडे भाग उर आवै जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक॥

दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान॥ १॥

गुर पद रज मृदु मंजुल[1] अंजन। नयन अमिअँ दृग दोष बिभंजन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौ रामचरित भव मोचन॥
बंदौ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करौ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

साधु सरिस सुभचरित[१] कपासू । निरस बिसद गुन मय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जसु पावा ॥
मुद मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥
बिधि निषेध मय कलि मल हरनी । करम कथा रबिनंदिनि बरनी ॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी । सुनत सकल[२] मुद मंगल देनी ॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा । तीरथ साज[३] समाज सुकरमा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ । देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग ॥ २ ॥

मज्जन फलु पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ॥
सुनि आचरजु करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
बालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस[४] कुधातु सोहाई ॥
बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

१—प्र०: चरित सुभ सरिस । [द्वि०: चरित सुभ चरित]। तृ०:प्र० । च०: सरिस सुभचरित

२—प्र०: सकल [(२) सुभग] । द्वि०, तृ०,च०: प्र०

३—प्र०: साज । द्वि०: प्र० [(४)(५) राज] । [तृ०: राज] । च०: ० [(८) राज]

४—प्र०: परस । द्वि०: प्र० [(३) परसि] । [तृ०: परसि] । च० :प्र ० [(८) परसि]

दो०—बंदौं संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ ॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल बिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ॥ ३ ॥

बहुरि बंदि खलगन सतिभायें । जे बिनु काज दाहिनेहु[१] बायें ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे । उजरें हरप बिपाद बसेरें ॥
हरि हर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ॥
जे परदोप लखहिं सहसाँखी । पर हित घृत जिन्हके मन माखी ॥
तेज कृसानु रोप महिपेसा । अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥
उदै केतु सम हित सबही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिम उपल कृपी दलि गरहीं[२] ॥
बंदौं खल जस सेष सरोषा । सहस बदन बरनै पर दोषा ॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनै सहस दस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस नयन पर दोष निहारा ॥

दो०—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करै सप्रीति ॥४॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पलिअहि अति अनुरागा । होहिं निरामिप कबहुँ[३] किकागा ॥
बंदौं संत असज्जन[४] चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

१—प्र०: दाहिनेहु । द्वि०, तृ०: प्र० । [च०: दाहिनहु]
२—[प्र०: गलहीं] । द्वि०: गरहीं । तृ०, च०: द्वि०
३—प्र०: कबहिं । द्वि०: कबहुँ । । तृ०, च०: द्वि०
४—प्र०: असन्तन । द्वि०: प्र० । [तृ०: असंतन] । च०: प्र० [(८) असंतन]

मन अनमल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलि मल सरि ब्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहिं सोई ॥

दो०—भलो भलाई पै लहै लहै निचाईहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु ॥ ५ ॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए ॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन नाना ॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा[१]। मरु मालव[२] महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा ॥

दो०—जड चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं[३] पय परिहरि बारि बिकार ॥ ६ ॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता ॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलौ प्रकृति बस चुकै भलाई ॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जस देहीं ॥
खलौ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटै न मलिन सुभाउ अभंगू ॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेषप्रताप पूजिअहिं तेऊ ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू ॥
किएहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥

१—प्र० कर्मनासा। द्वि० प्र० [(३)(४)(५) कबिनासा]। तृ० क्रमनासा। च० तृ०[(६) कबिनासा]
२—प्र० मागव। द्वि०प्र०, तृ० प्र०। च० ० [(६)(६अ) मारव]
३—प्र० ग्रहहिं। द्वि० गहहिं। तृ०, च० द्वि०

हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ॥
गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलै नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं । सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारीं ॥
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवन दाता ॥

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक[१] समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।
बंदौं सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब ।
बंदौं किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब ॥ ७ ॥

आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी ॥
सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
जानि कृपा करि किंकर मोहू । सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू ॥
निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं । तातें बिनय करौं सब पाहीं ॥
करन चहौं रघुपति गुन गाहा । लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकौ अंग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी । चहिअ अमिअ जग जुरै न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बालबचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी । जे पर दूषन भूषन धारी ॥

१—प्र०: पोषक सोषक । द्वि०: प्र० [(३)(४) सोपक पोषक । तृ०, च०: प्र० [(६) (६अ) सोपक पोषक]

निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सकृत[१] सिंधु सम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़ै जोई ॥

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करौं एक बिस्वास ।
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन[२] खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥

खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
हंसहि बक दादुर[३] चातक ही । हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ॥
कबित रसिक न राम पद नेहू । तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनिति मोरि मति भोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ॥
राम भगति भूषित जिअ जानी । सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥
कवि न होउँ नहि बचन[४] प्रबीनू । सकल कला सब बिद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक बिधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे । सत्य कहौं लिखि कागद[५] कोरे ॥

दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥ ९ ॥

येहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥

१—[प्र०: सहृति] । द्वि०: सकृत । [तृ० : सुकृत] । च० : द्वि० [(८): सुकृत] ।
२—प्र०: नर । द्वि०: प्र० । [तृ०: सब] । च०: प्र० [(६) (८अ): सब] ।
३—प्र०: गादुर । द्वि०: प्र० [(५): दादुर] । [तृ०: दादुर] । च०: प्र० [(८): दादुर] ।
४—प्र०: चतुर । द्वि०, तृ०: प्र० । च०: बचन ।
५—प्र० कागर । द्वि०: प्र० [(४) (५) (८अ): कागद] । [तृ०: कागद] । च०: प्र० [(८): कागद] ।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥
जदपि कबित रस एकौ नाहीं। राम प्रताप प्रगट येहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा॥
धूमौ तजै सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। रामकथा जग मंगल करनी॥

छं०—मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ[1] की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करै कोउ बंदिय मलय प्रसंग॥
स्याँम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य[2] सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥१०॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो स्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलिमल हारी॥
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति[3] पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना॥

१—प्र०: रघुबीर। द्वि०, तृ०, च०: रघुनाथ।
२—प्र०: ग्राम्य। [द्वि०: ग्राम]। तृ०: प्र०। च०: प्र० [(८): ग्राम]।
३—प्र०: लगति। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: [(६) (७): लागत, (८): लागि]।

जौं बरखै बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुता मनि चारू॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥११॥

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलि मल भाँड़े॥
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक[१] धोरी॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ॥
तातें मैं अति अलप बखाने। थोरेहि[२] महुँ जानिहहिं सयाने॥
समुझि बिबिध बिधि बिनती[३] मोरि। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं ते असंका[४]। मोहितें अधिक जे[५] जड़ मतिरंका॥
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावौं। मति अनुरूप राम गुन गावौं॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमिति राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

दो०—सारद सेष महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥१२॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा॥
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥

१—प्र०: धंधक। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: प्र० [(६) धंअक]।

२—प्र०: थोरेहि। [द्वि०, तृ०: थोरे]। च०: प्र० [(६अ) थोरे]।

३—प्र०: बिनती अब। द्वि०: प्र० [(३) (५अ) बिधि बिनती]। तृ०, च०: बिधि बिनती।

४—प्र०: जे असंका। द्वि०: प्र० [(४) (५) जे संका। [तृ०: जे संका]। च०: ते असंका।

५—प्र०: ते। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: जे।

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहिं जन पर ममता अति छोहू। जेहिं[1] करुना करि कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहौं नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम[2] मोहिं भाई॥

दो०—अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकौ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥१३॥

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबिपुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥
चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे। पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सबहिं[3] कपट छल[4] त्यागे॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरें। सिअनि सुहावनि टाट पटोरें[5]॥

१—प्र० : जेहिं। द्वि० : प्र०। [तृ० तेहिं]। च० : प्र०।
२—[प्र० : सुगम]। द्वि०, तृ०, च० : सुगम।
३—प्र० : सबनि। द्वि०, तृ० . प्र०। च० : सबहिं।
४—प्र० : छल। द्वि: प्र०। [तृ० : सब"]। च० : प्र० [(६) (६ अ) सब]।
५—प्र० : इसके अनंतर (५) तथा (७) में निम्नलिखित अर्द्धाली और है :
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहिं अनुहरइ सुबानी।

दो०—सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहिं मति बल अति थोर ।
करहु कृपा हरि जस कहौं पुनि पुनि करौं निहोर[1] ॥
कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल ।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल ॥
सो०—बंदौं मुनिपद कंजु रामायन जेहिं निरमएउ ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥
बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ।
जिन्हहिं न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥
बंदौ बिधि पद रेनु भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥
दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहौं कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥१४॥

पुनि बंदौं सारद सुरसरिता । जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥
गुर पितु मातु महेस भवानी । प्रनवौं दीनबंधु दिनदानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥
कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥
सोर[2] महेस[3] मोहिं पर अनुकूला । करिहिं[4] कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनौं राम चरित चित चाऊ ॥

१—प्र० : कहौं निहोरि । द्वि०: प्र० [(४)(५) कहहुँ निहोर] । तृ०: करउँ निहोर । च० : तृ० ।

२—[प्र० : सोउ] । द्वि० : सो [(४) (५) सोउ] । तृ०, च० : द्वि० ।

३—प्र० : महेस । द्वि० : प्र० । [तृ० : उमेस] । च०: प्र० [(६) (६ अ) उमेस] ।

४—प्र० : करहिं । [द्वि० : करउ] । तृ०: करउ । च० : करिहिं [(८) करहिं] ।

भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती । ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ॥
जे एहि कथहिं सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥

दो०—सपनेहु साँचेहु मोहिं पर जौं हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ॥१५॥

बंदौं अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥
प्रनवौं पुर नर नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहिं न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदौं कौसल्या दिसि प्राची । कीरति जासु सकल जग माची ॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू । बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
दसरथ राउ सहित सब रानी । सुकृत सुमंगल मूरति मानी ॥
करौं प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता । महिमा अवधि राम पितु माता ॥

सो०—बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु त्रिन इव परिहरेउ ॥१६॥

प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू । जाहि रामपद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महुँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवौं प्रथम भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू ॥
बंदौं लछिमन पद जलजाता । सीतल सुभग भगत सुखदाता ॥
रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ॥
सेष सहस्रसीस जगकारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रह मोपर । कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी । सूर सुसील भरत अनुगामी ॥
महाबीर बिनवौं हनुमाना । राम जासु जस आपु बखाना ॥

सो०—प्रनवौं पवनकुमार खल बन पावक ज्ञान घन[1] ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥१७॥

कपिपति रीछ निसाचर राजा । अंगदादि जे कीस समाजा ॥
बंदौं सब के चरन सुहाये । अधम सरीर राम जिन्ह पाए ॥
रघुपति चरन उपासक जेते । खग मृग सुर नर असुर समेते ॥
बंदौं पद सरोज सब केरे । जे बिनु काम राम के चेरे ॥
सुक सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिवर बिज्ञान बिसारद ॥
प्रनवौं सबहि धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥
जनकसुता जगजननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावौं । जासु कृपा निरमल मति पावौं ॥
पुनि मन बचन करम रघुनायक । चरन कमल बंदौं सब लायक ॥
राजिव नयन धरे धनु सायक । भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥

दो०—गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत[2] भिन्न न भिन्न ।
बंदौं सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥१८॥

बंदौं नाम राम रघुबर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुननिधान सो ॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू[3] । भएउ सुद्ध करि उलटा जापू[4] ॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी । जपि जेंई पिअ संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को । किए भूषनु तिअ भूषन ती को ॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

१—प्र० : घर । द्वि०, : घन । तृ०, च० : द्वि० ।
२—प्र० : देखिअत । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : कहिअत ।
३—प्र० : प्रभाऊ । द्वि० : प्रतापू । तृ०, च० : द्वि० ।
४—प्र० : कहि उलटा नाऊँ । द्वि० : करि उलटा जापू । तृ०, च० : द्वि० ।

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥१९॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ । बरन बिलोचन जन जिअँ जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
कहत सुनत सुमिरत[1] सुठि नीके । राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती । ब्रह्म जीव सम[2] सहज सँघाती ॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता । जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिअ कल करन बिभूषन । जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जन मन मंजु कंज[3] मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

दो०—एकु छत्र एकु मुकुट मनि सब बरनन्हि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत[4] दोउ ॥२०॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहि रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जाने । करतल गत न परहिं पहिचाने ॥
सुमिरिअ नामु रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥
नाम रूप गति[5] अकथ कहानी । समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

१—प्र० : समुझत । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सुमिरत ।
२—प्र० : इव । द्वि० : प्र० । तृ० : मन । च० : तृ० ।
३—प्र० : कंज मंजु । द्वि० : मंजु कंज [(न) कंज मंजु] । तृ०, च० : द्वि० ।
४—प्र० : बिराजित । द्वि० : बिराजत । तृ०, च० : द्वि० ।
५—प्र० : गुन । द्वि० : प्र० । तृ० : गति । च० : तृ० ।

दो०—राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ[1] जौ चाहसि उजिआर ॥२१॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
जानी[2] चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं[3] तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय[4] लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥

दो०—सकल कामनाहीन जे राम भगति रस लीन।
नाम पेम[5] पीयूष हृद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥२२॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरें[6] मत बड़ नामु दुहूँ ते। किए जेहि जुग निज बस निज बूतें[7] ॥
प्रौढ़ि[8] सुजन जनि जानहिं जन की। कहेउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

१—प्र०: बाहरौ। द्वि० : प्र०। [तृ०: बाहिरउ]। च०: प्र० [(६) (६अ) बाहरहुँ]।
२—प्र०: जानी। द्वि०: प्र० [(५) जाना] । [तृ०: जाना]। च० : प्र०।
३—प्र० जानहिं। द्वि०, तृ० : प्र०। [च०: (६) (६ अ) जानहुँ, (८) जानत]।
४—प्र०: लौ। द्वि० : लय। तृ०,च०: द्वि०।
५—प्र० पेम। [द्वि०, तृ०: प्रम] च०: ० [(६अ) सुप्रेम, (८) प्रभाव]।
६—प्र०: हमरे। द्वि०: मोरे [(५ अ) हमरे]। तृ०, च०: द्वि०।
७—प्र० नि बूते [(८) निहबूते]। द्वि०,तृ०, च०: प्र०।
८—प्र० : प्रौढि। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) प्रौढ़]। तृ० : प्र०। च० : प्र० [(८) प्रौढ़]।

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥२३॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिअ तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥
दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

दो०—सबरी गीध सुसेवकन्हि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥२४॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकल कुल[१] रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जिअ जानि॥२५॥

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि साधु मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥

१—प्र०: सकल कुल। [द्वि०, तृ०: सकुल रन]। च०: प्र०[(६) (६अ) सकुल रन]।

नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पाएउ[1] अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
अपतु[2] अजामिलु गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥
दो०--नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो[3] भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥२६॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
बेद पुरान संत मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजें । द्वापर परितोषत[4] प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला[5] ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥
दो०--राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकालु ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु ॥२७॥
भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दस हूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करौं नाइ रघुनाथहि माथा ॥

१—प्र० : थापेउ । द्वि० : पाएउ । तृ०, च० : द्वि० ।
२—प्र० : अपतु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (८) : अपह] ।
३—प्र० : भयो । द्वि० : प्र० । [तृ० : भय] । च० : प्र० [(८) : भय] ।
४—प्र० : परितोषन । द्वि० : प्र० । तृ० : परितोषत । च० : तृ० ।
५—प्र० : सकल समन जंजाला । द्वि० : समन सकल जगजाला । [तृ० : सुखद सुलभ सब काला] । च० : द्वि० ।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मो सो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥
लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती । बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ।
गनी गरीब ग्राम नर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥
सुकबि कुकबि निज मत अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंस भव परम कृपाला ॥
सुनि सनमानहि सबहि सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान[1]सिरोमनि कोसलराऊ ॥
रीझत राम सनेह निसोतें । को जग मंद मलिन मति[2] मो तें ॥

दो०-सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु ।
उपल किए जलजान जेहि सचिव सुमति कपि भालु ॥
हौं हु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास ।
साहिब सीतानाथ से सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने ॥
सुनि[3] अवलोकि सुचित चख चाही । भगति मोरि[4] मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हिअँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥
रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हिअँ हेरी ॥

१—प्र० : ग्यान [(२) ज्ञानि]। द्वि०, तृ०, च० : प्र०।
२—प्र० : मत। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : मति।
३—[प्र० : श्रुति]। द्वि० : सुनि। तृ०, च० : द्वि०।
४—प्र० : मोरि। द्वि० : प्र० [(३) (४) : मोरि]। [तृ० : मोरि]। च० : प्र० [(६अ) (८) : मोरि]।

ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ[1] रघुबीर बखाने॥

दो०–प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ[2] न राम से साहिब सीलनिधान॥
राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥
एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनौं रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥२९॥

जागबलिक जो कथा सुहाई[3]। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई[3]॥
कहिहौं सोइ संबाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला। सबदरसी[4] जानहिं हरि लीला॥
जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतल गत आमलक समाना॥
औरौ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

दो०–मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥
श्रोता बकता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥३०॥

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

१—[प्र० : राम सभाँ]। द्वि० : राज्सभाँ। तृ० : द्वि०। च० : प्र० [(६) (६अ) : (रामसभाँ]।
२—प्र० : कहीं। द्वि० : प्र० [(५अ) : कहूँ]। तृ० : कहूँ। च० : तृ०।
३—प्र० : सुनाई, सुहाई]। [द्वि० : सुनाई, सुनाई]। तृ० : सुहाई, सुनाई। च० : तृ०।
४—प्र० : सबदरसी। द्वि० : प्र० [(३) (४)। समदरसी]। [तृ० : समदरसी] च० : प्र०।

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहौं हिअँ हरि कें प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भयभंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥
असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्वभार भर अचल छमा सी॥
जम गन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिअ हुलसी सी॥
सिव प्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुर गन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिअ रघुबीर बिहारु॥३१॥

रामचरित चिन्तामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सद्गुर ज्ञान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम पेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥
काम कोह कलि मल करि गन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥
अभिमत दानि देवतरुबर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥

सुकवि सरद नभ मन उडुगन से । राम भगत जन जीवन धन[१] से ॥
सकल सुकृत फल भूरि भोग से । जग हित निरुपधि साधु लोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से । पावन गंग तरंग माल से ॥

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड ॥
रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥३२॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहिं बिधि संकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध बचित्र बनाई ॥
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरजु करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्हके मन माहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥
कलप भेद हरि चरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥

दो०—राम अनत अनत गुन अमित कथा बिस्तार ।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्हके बिमल बिचार ॥३३॥

एहि बिधि सब ससय करि दूरी । सिर धरि गुर पद पकज धूरी ॥
पुनि सबहीं बिनवौं[२] कर जोरी । करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा । बरनौ बिसद राम गुन गाथा ॥
संवत सोरह से एकतीसा । करौं कथा हरिपद धरि सीसा ॥
नौमी भौमबार मधु मासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहिं रघुनायक सेवा ॥

१—प्र० : धन । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(द) धर] ।
२—प्र० : प्रनवौं । द्वि० : प्र० । तृ० : बिनवौं । च० : तृ० ।

जनम महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम कल कीरति गाना ॥

दो०—मज्जहिं सज्जन वृंद बहु पावन सरजू नीर ।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर ॥३४॥

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरै पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकै सारदा बिमल मति ॥
राम धामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥
राम चरित मानस एहि नामा । सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा ॥
मन करि बिषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौं येहिं सर परई ॥
राम चरित मानस मुनि भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥
तातें राम चरित मानस बर । धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर ॥
कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

दो०—जस मानस जेहि बिधि भएउ जग प्रचार जेहि हेतु ।
अब सोइ कहौं प्रसंग सब सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

संभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी । राम चरित मानस कबि तुलसी ॥
करै मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी ॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । बेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करै मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥
सो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जन जीवन सोई ॥

मेधा महिगत सो जल पावन । सकिलि[१] स्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि[२] चारु चिराना ॥

दो०—सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारु[३] ।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारु[४] ॥३६॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम सीअ जस सलिल सुधा सम । उपमा बीचि[५] बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाईं । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाईं ॥
छंद सोरठा सुंदर दोहा । सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला । ज्ञान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥
अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी ॥
नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जल बिहग समाना ॥
संत सभा चहुँ दिसि अँबराई । श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम[६] लता बिताना ॥
सम जम[७] नियम[८] फूल फल ज्ञाना । हरिपद रति रस[९] बेद बखाना ॥

१—[प्र० : सकल] । द्वि० : सकिलि । तृ०, च० : द्वि० ।
२—[प्र० : रुचि] । द्वि० : बर । तृ०, च० : द्वि० ।
३—प्र० : बिचारु । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : बिचारि] ।
४—प्र० : चारु । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : चारि] ।
५—प्र० : बिमल । द्वि० : बीचि । तृ० : द्वि० । च० : द्वि० [(६) : बीच] ।
६—प्र० : दम । द्वि० : प्र० । [तृ० : द्रुम] । च० : प्र० [(८) : द्रुम] ।
७—प्र० : सम जम । द्वि० : प्र० । [तृ० : संजम] । च० : प्र० [(८) : सम दम] ।
८—प्र० : नियम । [द्वि० : नेम] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(८) : नेम] ।
९—प्र० : रतिरस । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (६अ) : रस बर] ।

औरौ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥
दो०–पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥
जे गावहिं यह चरित सँभारे । तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी । तेइ सुर बर मानस अधिकारी ॥
अति खल जे बिषई बग कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥
संबुक भेक सेवार समाना । इहाँ न बिषय कथा रस नाना ॥
तेहि कारन आवत हिअँ हारे । कामी काक बलाक बिचारे ॥
आवत एहि सर अति कठिनाई । रामकृपा बिनु आइ न जाई ॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला ॥
गृह कारज नाना जंजाला । तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला ॥
बन बहु बिषम मोह मद माना । नदीं कुतर्क भयंकर नाना ॥
दो०–जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥
जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहिं नींद जुड़ाई होई ॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा । गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवै समेत अभिमाना ॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा । सर निंदा करि ताहि बुझावा ॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही । राम सुकृपा बिलोकहिं जेही ॥
सोइ सादर सर[१] मज्जनु करई । महा घोर त्रयताप न जरई ॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ । जिन्ह कें रामचरन भल भाऊ[२] ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई । सो सतसंग करौ मन लाई ॥
अस मानस मानस चष चाही । भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ॥

१—प्र० : मज्जन सर । द्वि० : प्र० । तृ० : सर मज्जनु । च० : तृ० [(८) : सरि मज्जनु] ।
२—प्र० : चाऊ । द्वि० : प्र० [(३)(५अ) : भाऊ] । तृ० : भाऊ । च० : तृ० ।

भएउ हृदयँ आनद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सो[1]। राम बिमल जस जल भरिता सो[2]॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलि मल तिन तरु मूल निकंदिनि॥
दो०—श्रोता त्रिबिधि समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥३९॥
राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥
उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥
दो०—बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहु रंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥४०॥
सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥
सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध[3] राम बर बानी॥
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

१—प्र० : सो। द्वि० : प्र०। [तृ० : सी]। च० : प्र० [(८) : सी]।
२—प्र० : सो। द्वि० : प्र०। [तृ० : सी]। च० : प्र० [(८) : सी]।
३—प्र० : सुबध (पढ़ने में 'सुबद्ध')। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : सुबंधु]। तृ०, च० : प्र०।

राम तिलक हित मंगल साजा । परब जोग जनु जुरे[1] समाजा ॥
काई कुमति केकई केरी । परी जासु फल बिपति घनेरी ॥
दो०—समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।
कलि अघ खल[2] अवगुन कथन ते जल मल बग काग ॥४१॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । समय सुहावनि पावनि भूरी ॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥
बरनब राम बिबाह समाजू । सो मुद मंगल मय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू । पंथ कथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥
सती सिरोमनि सिअ गुन गाथा । सोइ गुन अमल अनूपम पाथा ॥
भरत सुभाउ सो सीतलताई । सदा एक रस बरनि न जाई ॥
दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास ।
भायप भलि चहुँ बंधु की जल माधुरी सुबास ॥४२॥

आरति बिनय दीनता मोरी । लघुता ललित सुबारि न खोरी[3] ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी । आस पिआस मनोमल हारी ॥
राम सुपेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन । बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किए तें । मिटहिं[4] पाप परिताप हिए तें ॥
जिन्ह एहि बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥

१—प्र० जुरेउ । द्वि०, तृ० प्र० । च० जुर ।
२—प्र० खल अघ । द्वि० प्र० [(५ अ) अघ खल] । तृ० प्र० । च० अघ ग ।
३—प्र० न खोरा । द्वि० प्र० । [तृ० न थोरा] । च० प्र० [( ) बहोरा] ।
४—[प्र० मिटहि] । द्वि० मिटहिं । तृ० च० द्वि० ।

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाइ ॥
अब रघुपति पद पंकरुह हिअँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहौं जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग सबाद ॥४३॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत रबि जब होई । तीरथपतिहि आव सब कोई ॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनी । सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी ॥
पूजहिं माधव पद जलजाता । परसि अखयबटु हरषहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन । परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा । जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परसपर हरि गुन गाहा ॥

दो०—ब्रह्म निरूपन धर्म बिधि बरनहिं तत्व बिभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै सजुत ज्ञान बिराग ॥४४॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं । पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा । मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा ॥
एक बार भरि मकर नहाए । सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी ॥
सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी । बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरें । करगत बेदतत्व सबु तोरें ॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा । जौं न कहौं बड़ होइ अकाजा ॥

दो०—संत कहहिं असि[१] नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥४५॥

१—प्र० : अस । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : असि ।

अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू । हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥
सतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं । कासी मरत परम पद लहहीं ॥
सोपि राम महिमा मुनिराया । सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछौं तोहीं । कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोहीं ॥
एक राम अवधेसकुमारा । तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा । भएउ[1] रोषु रन रावनु मारा ॥
दो०—प्रभु सोइ रामु कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्य धाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ॥४६॥
जैसें मिटै मोर[2] भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई[3] । तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ॥
राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी । चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा । कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥
तात सुनहु सादर मनु लाई । कहौं राम कै कथा सुहाई ॥
महा मोहु महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससि किरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ॥
दो०—कहौं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद ।
भएउ समय जेहि हेतु जेहि[4] सुनु मुनि मिटिहि[5] बिषाद ॥४७॥
एक बार त्रेता जुग माहीं । संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥

१—प्र० भएँ । द्वि० भएउ तृ०, च० द्वि० ।
२—प्र० मोह । द्वि०, तृ० प्र० । च० मोर
३—प्र० मुसुकाई [(२) मुसकाई] । द्वि०, तृ०, च० प्र० ।
४—[प्र० अब] । [द्वि० सो] । तृ० जेहि । च० तृ० ।
५—प्र० मिटहि । द्वि० प्र० । तृ०, च० प्र० [(२) मिटिहि ।

संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥
तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडकबन बिचरत अबिनासी॥

दो०--हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुपुत[1] रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ॥
सो०--संकर उर अति छोभु सती न जानइ मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥४८॥

रावन मरनु मनुज कर जाँचा। प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा॥
जौं नहिं जाउँ रहै पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥
एहि बिधि भए सोच बस ईसा। तेहीं समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भएउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित प्रभु[2] आए। आश्रमु देखि नयन जलु छाए॥
बिरह बिकल नर इव[3] रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह[4] दुखु ताकें॥

दो०--अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदय धरहिं कछु आन॥४९॥

१--प्र०, गुपुत। [द्वि० : गुप्त]। तृ० : प्र०। [च० : गुप्त]।
२--प्र०, प्रभु। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : प्र० [(६) (६अ) : हरि]।
३--प्र० : इव नर। द्वि० : प्र० [(४) (५) : (५अ)नर इव]। तृ० : नर इव। च० : तृ०।
४--प्र० : दुसह। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : बिरह।

संभु समय तेहि रामहिं देखा । उपजा हिय अति[1] हरषु बिसेखा ॥
भरि लोचन छबि सिंधु निहारी । कुसमउ जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानंद जगपावन । अस कहि चलेउ मनोज नसावन ॥
चले जात सिव सती समेता । पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा संभु कै देखी । उर उपजा संदेहु बिसेखी ॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावहिं[2] सीसा ॥
तिन्ह नृपसुतहिं कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानंद परधामा ॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥५०॥

बिष्नु जो सुर हित नर तनु धारी । सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजै सो कि अग्य इव नारी । ग्यान धाम श्रीपति असुरारी ॥
संभु गिरा पुनि मृषा न होई । सिव सर्बग्य जान सबु कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अंतरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ । संसय अस न धरिअ तन[3] काऊ ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई । भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी ॥

१—प्र० : तेहि । द्वि० : कति । तृ०, च० : द्वि० ।
२—प्र० : नावहिं । द्वि०,तृ०: प्र० । : च० प्र० [(६) (६अ) : नावत] ।
३—प्र० : तन । द्वि० : प्र० [(१) : उर] । [तृ०,च० : मन] ।

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेसु हरि माया बलु जानि जिय ॥५१॥
जौ तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करइ[1] बिचारु करौं का भाई॥
इहाँ[2] संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि[3] तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन[4] हरि नामा। गईं सती जहँ प्रभु सुख धामा॥
दो०—पुनि पुनि हृदय बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलीं पथ तेहि जेहि आवत नरभूप ॥५२॥
लछिमन दीख उमा कृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदय बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटै अग्याना। सोइ सर्बग्य रामु भगवाना॥
सती कीन्ह चह तहौं दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदय बखानी। बोले बिहँसि रामु मृदु बानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज[5] नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
दो०—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥५३॥

१—प्र० : करइ। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : करहिं [(८) : गरै]।
२—प्र० : इहां। द्वि० : प्र०। [तृ० : उहाँ]। च० : प्र०।
३—[प्र० : कै]। द्वि० : करि। तृ०, च० : द्वि०।
४—प्र० : जपन लगे। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : लगे जपन।
५—प्र० : हरि। द्वि० : प्र० [(४) (५अ) : निज]। तृ० : निज। च० : तृ०।

मै संकर कर कहा न माना । निज अज्ञानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देइहौ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
जाना राम सती दुखु पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख कौतुकु मग जाता । आगेँ राम सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछेँ प्रभु देखा । सहित बंधु सिअ सुंदर बेखा ॥
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना । सेवहि सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव बिधि बिष्णु अनेका । अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा । बिबिध बेष देखे सब देवा ॥

दो०—सती बिधात्रीं इंदिरा देखीं अमित अनूप ।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा । राम रूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न बेष घनेरे ॥
सोइ रघुपति सोइ लछिमन सीता । देखि सती अति भईं सभीता ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूँदि बैठीं मग माहीं ॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥

दो०—गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ । भयबस सिव[१] सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परीछा लीन्हि गुसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरे मन प्रतीति अति सोई ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥

१—प्र०ः मनु। द्वि० प्र०। तृ० मिश्र। १ . १०।

बहुरि राम मायहि सिरु नावा । प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदय बिचारत संभु सुजाना ॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भएउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करौं सती सन प्रीती । मिटै भगति पथु होइ अनीती ॥

दो०—परम प्रेम नहिं जाइ तजि[1] किए प्रेमु बड़ पापु ।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदय अधिक संतापु ॥५६॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा । सुमिरत रामु हृदय अस आवा ॥
एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं । सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ॥
अस बिचारि संकरु मतिधीरा । चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई । जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥
अस पन तुम्ह बिनु करै को आना । राम भगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा । पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला । सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सती पूँछा बहु भाँती । तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती ॥

दो०—सती हृदय अनुमान किअ सबु जानेउ सर्बग्य ।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥

सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ[2] रसु जाइ कपट खटाई परत ही[3] ॥५७॥

हृदय सोचु समुझत निज करनी । चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा । प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
संकर रुख अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई । तपै अवाँ इव उर अधिकाई ॥

१—प्र० : प्रेम तजि जाइ नहिं । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (६अ) : पुनीत न जाइ तजि] ।
२—प्र० : होत । द्वि० : होइ [(५अ) : होत] । तृ०, च० : द्वि० ।
३—प्र० : ही । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (६अ) : पुनि] ।

सतिहि ससोच जानि बृषकेतू । कही कथा सुंदर सुख हेतू ॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा । बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन । बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूपु सँभारा । लागि समाधि अखंड अपारा ॥

दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥५८॥

नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहौं दुख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पति बचन मृषा करि जाना ॥
सो फलु मोहिं बिधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोहीं । संकर बिमुख जिआवसि मोहीं ॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी । मन महुँ रामहिं सुमिरि सयानी ॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरति हरन बेद जसु गावा ॥
तौ मैं बिनय करौं कर जोरी । छूटौ बेगि देह यह मोरी ॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू । मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू ॥

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करौ सो बेगि उपाइ ।
होइ मरनु जेहि बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥५९॥

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी । अकथनीय दारुन दुखु भारी ॥
बीते संबत सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी ॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउँ सती जगतपति जागे ॥
जाइ[१] संभु पद बंदनु कीन्हा । सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥
लगे कहन हरिकथा रसाला । दच्छ प्रजेस भए तेहि काला ॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक । दच्छहिं कीन्ह प्रजापति नायक ॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमान हृदयँ तब आवा ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥

---

१ प्र० : जाइ [(-) : जोइ] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ॥६०॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा ॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥
सती बिलोके व्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना ॥
सुरसुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥
पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥
जौं महेसु मोहिं आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं ॥
पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहै न निज अपराध बिचारी ॥
बोलीं सती मनोहर बानी। भय सकोच प्रेम रस सानी ॥

दो०—पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन[१] सादर देखन सोइ ॥६१॥

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हौ बिसराईं ॥
ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना ॥
जौं बिनु बोले जाहु भवानी। रहै न सीलु सनेहु न कानी ॥
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यान न होई ॥
भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बुलाएँ। नहिं भलि बात हमारे[२] भाएँ ॥

दो०—कहि देखा हर जतन बहु रहै न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६२॥

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहु न सनमानी ॥

१—प्र० : कृपाभवन। द्वि० : कृपायतन। तृ०, च० : द्वि०।
२—प्र०, हमारेहि। द्वि० : प्र० [(च्म) : हमरे]। तृ०, च० : द्वि०।

सादर भलेहि मिली एक माता । भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुखु न हृदय अस[१] ब्यापा । जस यह भएउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भएउ अति क्रोधा । बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ॥

दो०-सिव अपमानु न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ॥६३॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा । कही सुनी जिन्ह संकर निंदा ॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ । भली भाँति पछिताब पिताहूँ ॥
संत संभु श्रीपति अपबादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिअ[२] तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई ॥
जगदातमा महेसु पुरारी । जगत जनक सब के हितकारी ॥
पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भएउ सकल मख हाहाकारा ॥

दो०-सती मरनु सुनि संभुगन लगे करन मख खीस ।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

समाचार सब संकर पाए । बीरभद्रु करि कोपु पठाए ॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह[३] बिधिवत फलु दीन्हा ॥
भै जग बिदित दच्छगति सोई । जसि कछु संभु बिमुख के होई ॥

१—प्र० : मम हृदय न । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : न हृदय मम ।
२—प्र० : काटिय । [द्वि० : काटिअ] । तृ०, च० : प्र० ।
३—[प्र० : सुरन्हि] । द्वि० : सुरन्ह । तृ०, च० : द्वि० ।

यह इतिहास सकल जगजानी । तातें मै संछेप बखानी ॥
सतीं मरत हरि सन बरु माँगा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमी पारबती तनु पाई ॥
जब तें उमा सैल गृह जाईं । सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रमु कीन्हे । उचित बास हिमभूधर दीन्हे ॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनिआकर बहु भाँति ॥ ६५ ॥

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं । खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह[१] त्यागा । गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥
सोह सैल गिरिजा गृह आएँ । जिमि जनु राम भगति के पाएँ ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू । ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥
नारद समाचार सब पाए । कौतुक हीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि बर[२] आसनु दीन्हा ॥
नारि सहित मुनिपद सिरु नावा । चरन सलिल सबु[३] भवनु सिचावा ॥
निज सौभाग्य बहुत बिधि[४] बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि ।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिवर हृदय बिचारि ॥६६॥

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी । सुता तुम्हारि सकल गुनखानी ॥
सुंदर सहज सुसील सयानी । नाम उमा अंबिका भवानी ॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी । होइहि संतत पिअहि पिआरी ॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता । इहि तें जसु पैहहिं पितु माता ॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं । एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥

१—प्र० : जीवन्ह । [द्वि० : जीवन] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) : जीवइ] ।
२—प्र० : बर । द्वि० : बर [(५अ) : तब] तृ०, च० : द्वि० ।
३—प्र० : सबु [(१) में शब्द छूटा हुआ है] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
४—प्र० : बिधि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (६अ) : गिरि] ।

एहि कर नामु सुमिरि संसारा । त्रिय[1]चढ़िहहिं पतिब्रत असि धारा ॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी । सुनहु जे[2] अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पितु हीना । उदासीन सब संसय छीना ॥
दो०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥६७॥
सुनि मुनि गिरा सत्य जिअ जानी । दुखु दंपतिहि उमा हरषानी ॥
नारद हूँ यह भेदु न जाना । दसा एक समुझब बिलगाना ॥
सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना । पुलक सरीर भरे जल नैना ॥
होइ न मृषा देवरिषि भाखा । उमा सो बचनु हृदय धरि राखा ॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू । मिलन कठिन भा मन[3] संदेहू ॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई । सखि उछंग बैठी[4] पुनि जाई ॥
झूठि न होइ देवरिषि बानी । सोचहिं दंपति सखी सयानी ॥
उर धरि धीर कहै गिरिराऊ । कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥
दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥६८॥
तदपि एक मै कहौं उपाई । होइ करै जौ दैउ सहाई ॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं । मिलिहि उमहिं तस संसय नाहीं ॥
जे जे बर के दोष बखाने । ते सब सिव पहिं मै अनुमाने ॥
जौं बिबाहु संकर सन होई । दोषौ गुन सम कह[5] सबु कोई ॥
जौं अहि सेज सयन हरि करहीं । बुध कछु तिन्हकर दोषु न धरहीं ॥

१—प्र० : त्रिन । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : तिअ] । [तृ० : तिअ] । च० : प्र० [(८) : तिअ]
२—प्र० : जो । द्वि० : प्र० । तृ० : जे । च० : तृ० ।
३—प्र० : भा मन । द्वि० : प्र० [(५अ) : मन भा] । [तृ० : मन भा] । च० : प्र० [(६) (६अ) : मन भा] ।
४—प्र० : सखी उछंग बैठि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सखि उछंग बैठी ।
५—[प्र० : समान] । द्वि० : सम कह । तृ०, च० : द्वि० ।

ानु कृसानु सर्व रस खाहीं । तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ॥
ुभ अरु असुभ सलिल सब बहही । सुरसरि कोउ अपुनीत न कहही ॥
मरथ कहुँ[1] नहिं दोषु गोसाईं । रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥
ो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़[2] बिबेक अभिमान ।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ॥६९॥
रसरि जल कृत बारुनि जाना । कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥
ुरसरि मिलें सो पावन जैसें । ईस अनीसहि अंतरु तैसें ॥
ंभु सहज समरथ भगवाना । येहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना ॥
ाराध्य पै अहहिं महेसू । आसुतोष पुनि किएँ कलेसू ॥
ौं तपु करै कुमारि तुम्हारी । भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥
द्यपि बर अनेक जग माहीं । येहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥
रदायक प्रनतारति भंजन । कृपासिंधु सेवक मनरंजन ॥
च्छित फल बिनु सिव अवराधें । लहिअ न कोटि जोग जप साधें ॥
ो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि येहि कल्यान अब[3] संसय तजहु गिरीस ॥७०॥
हि अस ब्रह्मभवन मुनि गएऊ । आगिल चरित सुनहु जस भएऊ ॥
तिहि एकांत पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे[4] मुनि बैना ॥
ौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा । करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥
त कन्या बरु रहौ कुआँरी । कंत उमा मम प्रान पिआरी ॥
ौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू । गिरि जड़ सहज कहिहिं सबु लोगू ॥
ोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू । जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ॥

—प्र० : कर । द्वि० : प्र० [(अ) : कहँ] । तृ० : कहुँ । च० : तृ० ।
—प्र० : जौं सै सहि इमिला करहिं नर । द्वि० : जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ । तृ०, च० : द्वि० ।
—प्र० : अब कल्यान सब । द्वि० : प्र० । तृ० : यहि कल्यान अब । च० : तृ० ।
—प्र० : बूझे । द्वि० : समुझे । [तृ० : समुझउँ] । च० : द्वि० ।

अस कहि परी चरन धर सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सब[1] सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबती[2] निरमएउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान॥७१॥

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करइ सो तपु जेहि मिलहिं महेसू। आन उपाइ न मिटिहि कलेसू॥
नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह[3] तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका॥
सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बज्ञ भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावौं तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥७२॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि येह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥
तप बल रचै प्रपंचु बिधाता। तप बल बिष्नु सकल जगत्राता॥
तप बल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरै महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जिअँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनाएउ गिरिहि हँकारी॥
मातु पितहि बहु बिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए[4] बिकल मुख आव न बाता॥

१—प्र०: अब। द्वि०: सब [(५अ): अब]। तृ०, च०: द्वि०।
२—प्र०: पारबती। द्वि०: प्र० [(३)(४) ५: पारबतिहि]। तृ०: प्र०। च०: प्र०
[(६) (६अ): पारबतिहि]।
३—प्र०: सब। द्वि०: तुम्ह [(५अ): सब]। तृ०, च०: द्वि०।
४—प्र०: भएउ। द्वि०: भए [(५अ): भएउ]। तृ०, च०: द्वि०।

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब सबहिं कहा समुझाइ ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ ॥७३॥

उर धरि उमा प्रानपति चरना । जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू । पति पद सुमिरि तजे सबु भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए । सागु खाइ सत बरष गँवाए ॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा । किए कठिन कछु दिन उपबासा ॥
बेलपाति[१] महि परै सुखाई । तीनि सहस संबत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भएउ अपरना ॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा । ब्रह्म गिरा भै गगन गँभीरा ॥

दो०—भए मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥७४॥

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी । भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी । सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥
आवै पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहिं जब[२] सप्त रिषीसा । जानिहु[३] तब प्रमान बागीसा ॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥
जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भएउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥

दो०—चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम[४] ।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम ॥७५॥

१—[प्र० : बलवाति] । द्वि० : बलपाति [(५अ) बेलपान] । [तृ० : बेलपात] ।
च० . द्वि० [(६) (६अ) बेलवानी] ।
२—प्र० . जबहि अब । द्वि० : प्र० [(४) (५) तुम्हहि जब] । तृ० : तुम्हहिं जब । च० तृ०
३—प्र० जानिहु । [द्वि०, तृ०, च० जानेहु] ।
४—प्र० . काम [(२) : मान] । द्वि०, तृ० प्र० । च० प्र० [(६) (६अ) : मान] ।

कबहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। कबहुँ रामगुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥
एहि बिधि गएउ कालु बहु बीती। नित नइ होइ रामपद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदय भगति कै रेखा॥
प्रगटे रामु कृतज्ञ कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जनम सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥
दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु॥७६॥
कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥
मातु पिता प्रभु गुर[1] कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥
अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहि सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥
दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि[2] पठएहु[3] भवन दूर करेहु संदेहु॥७७॥
रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिवंत[4] तपस्या जैसी॥

१—प्र० : प्रभु गुर। द्वि० : प्र० [(२) (४) (५) : गुर प्रभु]। [तृ० : गुर प्रभु]। च० : प्र० [(६) (६अ) : गुर प्रभु]।
२—प्र० : जाइ। द्वि० : प्रेरि [(५अ) : जाइ]। तृ०, च० : द्वि०।
३—प्र० : पठएहु। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : पठवहु]। [तृ० : पठवहु]। च० : प्र०।
४—प्र० : मूरतिवंत। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(२) (६अ) : मूरतिमंत]।

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु सब[1] कहहू॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी॥
कहत मरमु मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥
मनु हठ परा न सुनै सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोइ[2] जाना। बिनु पखन्ह हम चहहिं उड़ाना॥
देखहु मुनि अबिबेक हमारा। चाहिअ सिवहि सदा[3] भरतारा॥

दो०—सुनत बचन बिहँसे रिषय गिरिसंभव तब देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह॥७८॥

दच्छ सुतन्ह[4] उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥
नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवन भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥
तेहिकें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥
कहहु कवन सुखु अस बर पाएँ। भल भूलिहु ठग कें बौराएँ॥
पंच कहें सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह कें भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं॥७९॥

१—प्र० : सब। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : तिन]। तृ० : प्र० [(६) : तुम्ह] [(६) (६अ) में इस अर्द्धाली के अंतिम दो शब्द, अगली अर्द्धाली, तथा उसके बाद की अर्द्धाली के पहले दो शब्द टूटे हुए हैं]।
२—प्र० : सत्य हम। द्वि० : प्र०। तृ० : सदा सोइ। च० : तृ०।
३—प्र० : सिवहि सदा। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : सदा सिवहि]। तृ० : प्र० [च० : सदा सिवहि]।
४—[प्र० : दच्छ सुतन्हि]। द्वि०, तृ०, च० : दच्छ सुतन्ह।

अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला । गावहिं बेद जासु जसु लीला ॥
दूषन रहित सकल गुन रासी । श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी । सुनत बिहँसि कह बचन[१] भवानी ॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनकौ पुनि पषान तें होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ । बसौ भवनु उजरौ नहिं डरऊँ ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुनधाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥८०॥

जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु हित[२] हारा । को गुन दूषन करै बिचारा ॥
जौ तुम्हरें हठ हृदय बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ॥
जनम कोटि लगि रगरि[३] हमारी । बरौं संभु न तु रहौं कुआरी ॥
तजौं न नारद कर उपदेसू । आपु कहहिं सत बार महेसू ॥
मैं पा परौं कहै जगदंबा । तुम गृह गवनहु भएउ बिलंबा ॥
देखि प्रेम बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदंबिके भवानी ॥

दो०—तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । करि बिनती गिरजहि गृह ल्याए ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई । कथा उमा कै सकल सुनाई ॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा । हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥

१—प्र० : बचन यह बिहँसि । द्वि० : प्र० । तृ० : बिहँसि यह बचन । च० : तृ० ।
२—प्र० मैं । द्वि० : प्र० । तृ० : हित । च० : तृ० ।
३—प्र० : रगरि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८) : रगर] ।

मनु थिरु करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ॥
तारकु असुर भएउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज बिसाला ॥
तेहिं[1] सब लोक लोकपति जीते । भए देव सुख संपति रीते ॥
अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि बिबिध लराई ॥
तब बिरंचि सन[2] जाइ पुकारे । देखे बिधि सब देव दुखारे ॥
दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतै रन सोइ ॥८२॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
जदपि अहै असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥
पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं । करै छोभु संकर मन माहीं ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिआहु बरिआई ॥
एहि बिधि भलेहि देव हित होई । मत अति नीक कहै सबु कोई ॥
अस्तुति[3] सुरन्ह कीन्हि अस[4] हेतू । प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू ॥
दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥
तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति कह परम धरम उपकारा ॥
परहित लागि तजै जो[5] देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥
अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई । सुमन धनुष कर सहित[6] सहाई ॥

१—प्र० तेहि । द्वि० प्र० । [तृ० ते] । [च० तेइ] ।
२—प्र० पहिं । द्वि० प्र० । तृ० मन । च० तृ० ।
३—प्र० अस्तुति । द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६अ) प्रस्तुति] ।
४—प्र० अस । द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६अ) भाँति] ।
५—प्र० जे । द्वि० प्र० । तृ० जो । च० तृ० ।
६—प्र० तेन । द्वि० प्र० । तृ० सहित । च० तृ० ।

चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा॥
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुतिसेतू॥
ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धर्म ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥

छं०—भागेउ बिबेकु सहाइ सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

दो०—जे सजीव जग चर अचर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥८४॥

सबकें हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकै सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए कामबस समय बिसारी॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महा मुनि जोगी। तेपि काम बस भए बियोगी॥

छंद—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामय।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अय॥

सो०—धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥८५॥

उमय घरी अस कौतुक भएऊ । जब लगि काम संभु पहिं गयऊ ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू । भएउ यथाथिति सब संसारू ॥
भए तुरत जग जीव सुखारे । जिमि मद उतरि गए मतवारे ॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना । दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई । मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा । कुसुमित नव तरु राजि[१] बिराजा ॥
बन उपबन बापिका तड़ागा । परम सुभग सब दिसा बिभागा ॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा । देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा ॥
छं०—जागै मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही ।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल[२] सखा सही ॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ॥
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपसरा ॥
दो०-सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत ।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥
देखि रसाल बिटपबर साखा । तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा ॥
सुमनचाप निज सर संधाने । अति रिसि ताकि श्रवन लगि ताने ॥
छाँड़े बिषम बिसिख उर लागे । छूटि समाधि संभु तब जागे ॥
भएउ ईस मन छोभु बिसेखी । नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥
सौरभ पल्लव मदन बिलोका । भएउ कोप कंपेउ त्रैलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा । चितवत कामु भएउ जरि छारा ॥
हाहाकार भएउ जग भारी । डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥
समुझि कामु सुखु सोचहिं भोगी । भए अकंटक साधक जोगी ॥
छं०—जोगी अकंटक भए पति गति सुनति रति मुरछित भई ।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करत संकर पहिं गई ॥

१—प्र० : जाति । [द्वि० : सखा] । तृ० : प्र० । च० : राजि [(प) : रात्र] ।
२—[प्र० : अनिल] । द्वि०, तृ०, च० : अनल ।

अति प्रेम करि बिनती बिबिधि बिधि जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥
दो०—अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंग ॥८७॥
जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा ॥
कृष्नतनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥
रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहौं बखानी ॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए ॥
सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता ॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्रअवतंसा ॥
बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू ॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी ॥
दो०—सकल सुरन्ह कें हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ॥८८॥
यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदनमदमोचन ॥
काम जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारबती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा ॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुरसाईं ॥
अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहि बिधि गिरि भवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी ॥
दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पनु जारेउ कामु महेस ॥८९॥
सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी ॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा ॥

हमरें जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं सिव सेएउँ अस जानी । प्रीति समेत करम मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहा[1] हर जारेउ मारा । सोइ[2] अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा ॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई । अस मनमथ महेस कै नाई ॥

दो०—हिअँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास ।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास ॥९०॥

सबु प्रसंग गिरिपतिहि सुनावा । मदन दहन सुनि अति दुखु पावा ॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना । सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना ॥
हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई । सादर मुनिवर लिए बोलाई ॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई । बेगि बेद बिधि लगन धराई ॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सो दीन्ही । गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही ॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो[3] पाती । बाँचत प्रीति न हृदयँ समाती ॥
लगन बाँचि अज[4] सबहि सुनाई । हरषे मुनि सब[5] सुर समुदाई ॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे । मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे ॥

दो०—लगे सवाँरन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान ।
होहिं सगुन मंगल सुभद[6] करहिं अपछरा गान ॥९१॥

सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा । जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला । तन बिभूति पट केहरि छाला ॥

१—प्र० : कहा । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ) : कहेहु] ।
२—[प्र० : सो] । द्वि०, तृ०, च० : सोइ [(८) : सो] ।
३—प्र० : तिन्ह दीन्ही । द्वि० : प्र० [(५अ) : तिन्ह दीन्हि सो] । तृ० : तिन्ह दीन्हि सो । च० : तृ० [(८) : दीन्हे सो] ।
४—[प्र० : अस] । [द्वि० : बिधि] । तृ० : अज । च० : तृ० [(८) : अस] ।
५—प्र० : सब । द्वि० : प्र० । [तृ० : बर] ।
६—प्र० : सुभद । [द्वि० : सुभग] । [तृ० : सुखद] । च० : प्र० [(८) : सुभग]।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥
बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥
दो०—बिष्नु कहा अस बिहँसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥९२॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥
मन हीं मन महेस मुसुकाहीं। हरि के ब्यंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयनबिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना॥
छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर[१] सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥
सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥९३॥
जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥

१—प्र० : स्थुर : द्वि० : प्र०। तृ० : सुअर। च० : सू०।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं । लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदी तलावा । हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥
कामरूप सुंदर तनु धारी । सहित समाज[1] सहित बर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल[2] गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए । जथा जोगु जहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई । लागै लघु बिरंचि निपुनाई ॥
छं०—लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं ।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं ॥
दो०—जगदंबा जहँ अवतरी सो पुर बरनि कि जाइ ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥९४॥
नगर निकट बरात सुनि आई । पुर खरभरु सोभा अधिकाई ॥
करि बनाव सजि[3] बाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ॥
हिअँ हरषे सुर सेन निहारी । हरिहि देखि अति भए सुखारी ॥
सिव समाज जब देखन लागे । बिडरि चले बाहन सब भागे ॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने । बालक सब लै जीव पराने ॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता । कहहिं बचन भय कंपित गाता ॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता । जम कर धार किधौं बरिआता ॥
बरु बौराह बसहँ[4] असवारा । ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥
छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा ॥

१—प्र० : सहित समाज । द्वि० : प्र० । [तृ० सकल समाज] । च० : प्र० ।
२—प्र० : गए सकल तुहिनाचल । द्वि० : गए सकल तु हिमाचल । तृ० : प्र० ।
च० : प्र० [(८) : गवने सकल हिमाचल] ।
३—प्र० : सजि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(८) : सब] ।
४—प्र० : बरद । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बसहं ।

जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखिहि[१] सो उमा बिबाह घर घर बात असि लरिकन्ह[२] कही ॥
दो०—समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं ॥९५॥
लै अगवान बरातहि आए । दिए सबहि जनवास सुहाए ॥
मयना सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ॥
कंचन थार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा । अबलन्ह[३] उर भय भएउ बिसेखा ॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा । गए महेसु जहाँ जनवासा ॥
मयना हृदयँ भएउ दुखु भारी । लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी ॥
अधिक सनेह गोद बैठारी । स्याम सरोज नयन भरे[४] बारी ॥
जेहि बिधि तुम्हहिं रूपु अस दीन्हा । तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा ॥
छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई ॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं ॥
दो०—भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि ।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि ॥९६॥
नारद कर मैं काह बिगारा । भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा । बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥
साँचेहुँ उन्हकें मोह न माया । उदासीन धनु धामु न जाया ॥
पर घर घालक लाज न भीरा । बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥

१—[प्र० : देखहि] । द्वि० : देखिहि । तृ०, च० : द्वि० ।
२—[प्र०, द्वि० : लरिकन्हि] । तृ० : लरिकन्ह । च० : तृ० ।
३—प्र० : अबलन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० : अबलन्हि] । च० . प्र० [(न) :अबल] ।
४—प्र० : भरे [(२) : भरि] । [द्वि०, तृ० : भरि] । च० : प्र० [(न) :भरि] ।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोलीं जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि[1] लेहु कलंका॥
छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥
दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषिसप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥९७॥
तब नारद सबही समुझावा। पूरब कथा प्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु[2] अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥
जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥
एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भएउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रमबस बेषु सीय कर लीन्हा॥
छं०—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरह जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरें भवन निज पति लागि दारुन तपु किआ।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥
दो०—सुनि नारद कें बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद॥९८॥

१—[प्र० : जिनि]। द्वि०, तृ०, च० : जनि।
२—[प्र० : संग]। द्वि०, तृ०, च० : संभु।

तब मयना हिमवंतु अनंदे । पुनि पुनि पारबती पद बंदे ॥
नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने । नगर लोग सब अति हरषाने ॥
लगे होन पुर मंगल गाना । सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूप सास्त्र जस कछु[1] व्यवहारा ॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहिं भवन जेहि मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती । बिष्नु बिरंचि देव सब जाती ॥
बिबिध पाँति बैठी जेवनारा । लागे परुसन निपुन सुआरा ॥
नारि बृंद सुर जेवँत जानी । लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥

छं०—गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि व्यंग्य बचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचु पावहीं ॥
जेवँत जो बढ़ेउ अनंद सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यौ ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यौ ॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ ॥९९॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे । सबहि जथोचित आसन दीन्हे ॥
बेदी बेदबिधान सँवारी । सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥
सिंघासन अति दिव्य सुहावा । जाइ न बरनि बिरंचि बनावा ॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई । हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं । करि सिंगारु सखीं लै[2] आईं ॥
देखत रूप सकल सुर मोहे । बरनै छबि अस जग कबि को है ॥
जगदंबिका जानि भवभामा । सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥
सुंदरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिहूँ[3] बदन बखानी ॥

१—प्र० : रिछु । द्वि०, तृ०, च० : कछु ।
२—प्र० : लै । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ) : लेइ] ।
३—[प्र० : कोटि हु] । द्वि० : कोटिहुँ । तृ०, च० : द्वि० ।

छं०—कोटिहुँ[१] बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा ।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा ॥
छबि खानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मन मधुकर तहाँ ॥

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहिं पूजेउ संभु भवानि ।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिअँ जानि ॥१००॥

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति-गाई । महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपी जानि भवानी ॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हिअँ हरषे तब सकल सुरेसा ॥
बेद मंत्र मुनिबर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ॥
बाजन बाजहिं बिबिध बिधाना । सुमन बृष्टि नभ भै बिधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भएउ बिबाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥
दासीं दास तुरग रथ नागा । धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना । दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥

छं०-दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो ।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो ॥
सिव कृपासागर ससुर कर, संतोषु सब भाँतिहिं कियो ।
पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम परिपूरन हियो ॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान प्रिय[२] गृह किंकरी करेहु ॥
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ॥१०१॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिरु नाई ॥
जननी उमा बोलि तब लीन्ही । लै[३] उछंग सुंदर सिख दीन्ही ॥

१—[प्र० : कोटि बहु] । द्वि० : कोटिहुं । तृ०, च० : द्वि० ।
२—प्र० : प्रिय । द्वि० : प्र० [(-अ) : मम] । तृ०, च० : प्र० [(द्र) : मम] ।
३—प्र० : कै । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(द्र) : लेइ] ।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पतिदेउ न दूजा॥
बचन कहत भरे[1] लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमै बिचारी॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥
छं०—जननिहि बहुरि मिलि चलीं उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब[2] सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन[3] चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥
दो०—चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥१०२॥
तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहौं बखानी॥
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहिं बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब[4] जनमेउ[5] षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख[6] जन्मु सकल जग जाना॥

१—प्र० भरे। द्वि० प्र० [(४) भर, (५) (५अ) भरि]। [तृ० भरि]। च० प्र० [(८) भरि]।
२—प्र० जब। द्वि०, तृ० प्र०। च० तब।
३—[प्र० भवनहि]। द्वि० भवन [(४) भवनहि]। [तृ० भवनहिं]। च० द्वि०।
४—प्र० जब। द्वि०, तृ०, च० तब।
५—प्र० जनमेउ। द्वि० प्र० [(४)(५) जनम]। [तृ० जनमे]। च० प्र०।
६—प्र० षन्मुख। द्वि० प्र०। [तृ० षण्मुख]। च० प्र०।

छं०—जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं[1] जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

दो०—चरित सिंधु गिरिजारमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मति मंद गँवारु॥१०३॥

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि[2] नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहिं प्रान सम प्रिय गौरीसा॥
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सुहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥
सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

दो०—प्रथमहिं कहि मैं सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥१०४॥

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहौं सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥
रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहौं बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥
सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥
प्रनवौं सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनौं बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥

१—प्र० . बदहिं। द्वि० : प्र० [(५) : सुनहिं]। [तृ० : सुनहिं]। च० : प्र०।
२—प्र० : नयनन्हि। [द्वि० : नयन]। [तृ० : नयन]। च० : प्र०।

दो०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनिबृंद ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद ॥१०५॥

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं । ते नर तहँ सपनेहुँ नहि जाहीं ॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला । नित नूतन सुंदर सब काला ॥
त्रिबिध समीर सुसीतल छाया । सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गएऊ । तरु बिलोकि उर अति सुखु भएऊ ॥
निज कर डासि नाग रिपु छाला । बैठे सहजहिं संभु कृपाला ॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा । भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा ॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना । नख दुति भगत हृदय तम हरना ॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी । आननु सरद चंद छबिहारी ॥

दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बाल बिधु भाल ॥१०६॥

बैठे सोह काम रिपु कैसें । धरे सरीरु सांत रसु जैसें ।
पारबती मल[1] अवसरु जानी । गईं संभु पहिं मातु भवानी ॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । बाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥
बैठीं सिव समीप हरषाई । पूरब जन्म कथा चित आई ॥
पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी[2] । बिहँसि उमा बोलीं मृदु बानी[3] ॥
कथा जो सकल लोक हितकारी । सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥
बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी । त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नर देवा । सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥

दो०—प्रभु समरथ सर्बज्ञ सिव सकल कला गुन धाम ।
जोग ज्ञान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥१०७॥

१—प्र० मल [(२) : भलि] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : अनुमानी । [द्वि० : (३) (५) (५अ) : अनुमानी, (४) : अनुमाना] । तृ० : अनुमानी । च० : तृ० ।
३—प्र० : मृदु बानी । [द्वि० : (३) (५) (५अ) : दर बानी, (४) : प्रिय बानी] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) (६अ) : प्रिय बानी] ।

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी । जानिअ सत्य मोहि निज दासी ॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना । कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥
जासु भवनु सुरतरु तर होई । सह कि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी । हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ॥
प्रभु जे मुनि परमारथ बादी । कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेष सारदा बेद पुराना । सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनँग आराती ॥
राम सो अवधनृपति सुत सोई । की अज अगुन अलखगति कोई ॥
दो०—जौं नृप तनय तौ ब्रह्म किमि नारि बिरह मति मोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति[1] बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥
जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई । अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा । सो फलु भली भाँति हम पावा ॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें । करहु कृपा बिनवौं कर जोरें ॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं । राम कथा पर रुचि मन माहीं ॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥
दो०—बंदौं पद धरि धरनि सिरु बिनय करौं कर जोरि ।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥
जदपि जोषिता नहिं अधिकारी[2] । दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
अति आरति पूछौं सुर राया । रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी । निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥

१—[प्र०, द्वि० : भ्रमत] । तृ० : भ्रमति । च० : तृ० ।
२—प्र० : अनअधिकारी । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : नहिं अधिकारी ।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानकी बिबाही । राज तजा सो दूषन काही ॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
राज बैठि कीन्ही बहु लीला । सकल कहहु संकर सुखसीला ॥
दो०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम ।
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम ॥११०॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी । जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान[1] बिरागा । पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥
औरौ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई । सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । आन जीव पावँर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै[2] सहज सुहाई । छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हियँ रामचरित सब आए । प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा । परमानंद अमित सुख पावा ॥
दो०—मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥
झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने ॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥
बंदौं बाल रूप सोइ रामू । सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी । तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी[3] ॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा ॥

१—प्र० : बिग्यान । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ) में शब्द छूटा हुआ है] ।
२—प्र० : कै । द्वि० : प्र० [(४) (५) : कर] । [तृ० : कर] । च० : प्र० ।
३—प्र० : उपकारी । [द्वि० : अधिकारी] । तृ०, च० : प्र० ।

तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥
दो०—राम कृपा तें पारबति[१] सपनेहुँ तव मन माहिं ।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ॥११२॥
तदपि असंका कीन्हिहु सोई । कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करै राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरि चरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुरहित दनुज बिमोहन सीला ॥
दो०—रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि ।
सँत समाज सुर लोक सब को न सुनै अस जानि ॥११३॥
रामकथा सुंदर करतारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराज कुमारी ॥
राम नाम गुन चरित सुहाए । जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुन नाना ॥
तदपि जथाश्रुत जसि मति मोरी । कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद संत संमत मोहि भाई ॥
एक बात नहिं मोहि सोहानी । जदपि मोहबस कहेहु भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥
दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच ।
पाखंडी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साच ॥११४॥
अज्ञ अकोबिद अंध अभागी । काई बिषय मुकुर मन लागी ॥

१—प्र० : पारबति । [द्वि० : गिरिसुता] । तृ०, च० : प्र० ।

लपट कपटी कुटिल बिसेषी । सपनेहु संत सभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी । जिन्हकें[1] सूझ लाभु नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । राम रूप देखहि किमि दीना ॥
जिन्हकें अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहि कल्पित बचन अनेका ॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह कृत महा मोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥
सो०—अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु रामपद ।
सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥११५॥
सगुनहिं अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसें ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना । परमानंद परेस[2] पुराना ॥
दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नाएउ माथ ॥११६॥
निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहि कें भाएँ ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा । नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ॥

१—प्र० : तिन्हहिं न । द्वि०, तृ० : प्र० [च० : जिन्हकें] ।
२—[प्र० : पुरुष] । द्वि० : परेस । तृ०, च० : द्वि० ।

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥११७॥
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
दो०—जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥११८॥
कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर बस[१] उर अंतरजामी॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ज्ञान बिराग सकल गुन जाहीं॥
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥
दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥११९॥

१—प्र०: बस। [द्वि०, तृ०: सब]। च०: प्र०।

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह सरदातप भारी ॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । रामस्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥
नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी । जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू । जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी । सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता । रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

दो०—हिअँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़ ॥
सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥
हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहौं उमा सादर सुनहु ॥१२०॥

सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए[१] । बिपुल बिसद निगमागम गाए[१] ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावौं तोही । समुझि परै जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम[२] अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

१—प्र० सुहाए, गाए । [द्वि० : सुहावा, गावा] । तृ०, च० प्र० ।
२—[प्र० अधरम] । द्वि, तृ०, च० : अधम [(६) (६अ) : अधरम] ।

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजन्म कर हेतु ॥१२१॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ॥
राम जन्म के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥
जन्म एक दुइ कहौं बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु बिजय जान सब कोऊ ॥
बिप्र स्राप तें दूनौ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन । जगत बिदित सुरपति मद मोचन ॥
बिजई समर बीर बिख्याता । धरि बराह बपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा ॥

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान ॥१२२॥

मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जन्म द्विज बचन प्रवाना ॥
एक बार तिन्हकें हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ॥
कस्यप अदिति तहाँ[1] पितु माता । दसरथ कौसल्या बिख्याता ॥
एक कल्प एहिं बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा ॥
एक कल्प सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा । दनुज महा बल मरै न मारा ॥
परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी ॥

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहिं जानेउ मरम तब स्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

तासु स्राप हरि कीन्ह[2] प्रवाना । कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भएऊ । रन हति राम परम पद दएऊ ॥

१—[प्र० : महाँ] । द्वि०, तृ०, च० : तहाँ ।
२—[प्र० : दीन्ह] । द्वि० : कीन्ह । तृ०, च० : द्वि० [(६) (५अ) : दीन्ह] ।

एक जन्म कर कारन एहा । जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी । सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी ॥
नारद साप दीन्ह एक बारा । कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी । नारद बिष्नु भगत पुनि ग्यानी ॥
कारन कवन साप मुनि दीन्हा । का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी । मुनि मन मोह आचरज भारी ॥
दो०—बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥
सो०—कहौं राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु ।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥१२४॥
हिम गिरि गुहा एक अति पावनि । बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा । देखि देवरिषि मन अति भावा ॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा । भएउ रमापति पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि साप गति बाधी । सहज बिमल मन लागि समाधी ॥
मुनि गति देखि सुरेस डेराना । कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू । चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू ॥
सुनासीर मन महुँ असि त्रासा । चहत देवरिषि मम पुर बासा ॥
जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ॥
दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥
तेहि आश्रमहि मदन जब गएऊ । निज माया बसंत निरमएऊ ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहु रंगा । कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी । काम कृसानु बढ़ावनि[१] हारी ॥
रंभादिक सुरनारि नबीना । सकल असमसर कला प्रबीना ॥

१ प्र० जगावनि । द्वि० बढ़ावनि । तृ०, च० : द्वि० ।

करहिं गान बहु तान तरंगा । बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना । कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥
काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी । निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ॥

दो०—सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन ।
गहेसि जाइ मुनि चरन कहि सुठि आरत मृदु बैन[१] ॥१२६॥

भएउ न नारद मन कछु रोषा । कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आएसु पाई । गएउ मदन तब सहित सहाई ॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी । सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी ॥
सुनि सबकें मन अचरजु आवा । मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥
तब नारद गवने सिव पाहीं । जिता काम अहमिति मन माहीं ॥
मार चरित संकरहि सुनाए । अति प्रिय जानि महेस सिखाए ॥
बार बार बिनवौं मुनि तोहीं । जिमि यह कथा सुनाएहु मोहीं ॥
तिमि जनि हरिहि सुनाएहु[२] कबहूँ । चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ ॥

दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सुहान ।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान ॥१२७॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई । करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए । तब बिरंचि के लोक सिधाए ॥
एक बार कर तल बर बीना । गावत हरि गुन गान प्रबीना ॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥
हरषि मिले उठि[३] रमानिकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ॥

१—प्र० कहि सुठि आरत मृदु बैन । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६अ) : कहि सुठि आरत बैन, (८) : तब कहि सुभ आरत बैन] ।
२—[प्र० सुनावहु] । द्वि० : सुनाएहु । तृ०, च० : द्वि० [(६) (६अ) : सुनावहु] ।
३—प्र० , मिले उठि । [द्वि० : उठे प्रभु] । तृ०, च० : प्र० [(८) , उठे हरि] ।

बोले बिहसि चराचरराया । बहुते दिनन्हि[१] कीन्हि मुनि दाया ॥
काम चरित नारद सब भाखे । जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

दो०—रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान ।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान ॥१२८॥

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें । ग्यान बिराग हृदय नहि जाकें ॥
ब्रह्मचरज ब्रतरत मति धीरा । तुम्हहि कि करै मनोभव पीरा ॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी । उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी ॥
बेगि सो मै डारिहौं उखारी । पन हमार सेवक हितकारी ॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई । अवसि उपाय करबि मै सोई ॥
तब नारद हरिपद सिर नाई । चले हृदयँ अहमिति अधिकाई ॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार ।
श्रीनिवास पुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार ॥१२९॥

बसहिं नगर सुंदर नर नारी । जनु बहु मनसिज रति तनु धारी ॥
तेहिं पुर बसै सीलनिधि राजा । अगनित हय गय सेन समाजा ॥
सत सुरेस सम बिभव बिलासा । रूप तेज बल नीति[२] निवासा ॥
बिस्वमोहिनी तासु कुमारी । श्री बिमोह जिसु[३] रूप निहारी ॥
सोइ हरिमाया सब गुन खानी । सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करै स्वयंबर सो नृपबाला । आए तहँ अगनित महिपाला ॥

१—[प्र० : दिनन] । द्वि० दिनन्हि । तृ० द्वि० । [च० (६) दिन (६अ) दिनन, (८) दिन] ।
२—[प्र० : सान] । द्वि० नीति । [तृ० : मान] । च० : द्वि० ।
३—प्र० : जिसु । [द्वि० : (३) (४) (५) जहि, (५अ) तेहि] । तृ०, च० : प्र० ।

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गएऊ । पुरबासिन्ह सब[1] पूँछत भएऊ ॥
मुनि सब चरित भूप गृह आए । करि पूजा नृप मुनि बैठाए ॥
दो०—आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि कें हृदयँ बिचारि ॥१३०॥
देखि रूप मुनि बिरति बिसारी । बडी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने । हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने ॥
जो एहि बरै अमर सोइ होई । समर भूमि तेहि जीत न कोई ॥
सेवहि सकल चराचर ताही । बरै सीलनिधि कन्या जाही ॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे । कछुक बनाइ भूप सन भाषे ॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं । नारद चले सोच मन माहीं ॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहिं[2] काला । हे[3] बिधि मिलै कवन बिधि बाला ॥
दो०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल ।
जो बिलोकि रीझै कुअरि तब मेलै जयमाल ॥१३१॥
हरि सन माँगौं सुंदरताई । होइहि जात गहरु अति भाई ॥
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥
बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहिं काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने । होइहि काजु हिएँ हरषाने ॥
अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होहु सहाई ॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही ॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा । करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥
निज माया बल देखि बिसाला । हिअँ हँसि बोले दीनदयाला ॥

१—प्र० सब । द्वि० प्र० । [तृ० मन] । च० प्र० ।
२—प्र० तेहिं । द्वि० प्र० । [तृ० मन] । च० प्र० ।
३—प्र० हैं । द्वि०, हे [प(३) हैं] । त० द्वि० । च० द्वि० [(५) (५अ) हे] ।

दो०—जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

कुपथ माँगु रुज ब्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भएऊ ॥
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा । समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई ॥
निज निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें । मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ॥
मुनि हित कारन कृपानिधाना । दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा । नारद जानि सबहिं सिर नावा ॥

दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ ।
बिप्र बेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई । हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ । बिप्र बेष गति लखै न कोऊ ॥
करहिं कूटि[१] नारदहि सुनाई । नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी । इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेखी ॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ । हँसहिं संभुगन अति सचु पाएँ ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी । समुझि न परै बुद्धि भ्रम सानी ॥
काहुँ न लखा सो चरित बिसेखा । सो सरूप नृप कन्या देखा ॥
मर्कट बदन भयंकर देही । देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥

दो०—सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल ।
देखत फिरै महीप सब कर सरोज जयमाल ॥१३४॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली । सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं । देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥

१—प्र० ; रुटि । द्वि० ; प्र० [(०) (३अ) ; कूट] । [च० : कूट] । च० ; प्र० ।

धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला । कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिनि लै गए[1] लच्छिनिवासा । नृप समाज सब भएउ निरासा ॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥
तब हरगन बोले मुसुकाई । निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥
अस कहि दोउ भागे भयँ भारी । बदन दीख मुनि बारि निहारी ॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा । तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा ॥

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥१३५॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा । तदपि हृदयँ संतोष न आवा ॥
फरकत अधर कोप मन माहीं । सपदि चले कमलापति पाहीं ॥
दैहौं स्राप कि मरिहौं जाई । जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी । संग रमा सोइ राजकुमारी ॥
बोले मधुर बचन सुरसाईं । मुनि कहँ चले बिकल की नाईं ॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा । माया बस न रहा मन बोधा ॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी । तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी ॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु । सुरन्ह प्रेरि बिष पान कराएहु ॥

दो०—असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु ॥१३६॥

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । भावै मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू । बिसमय हरष न हिअँ कछु धरहू ॥
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥
भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥

१—[प्र० : लै गए] । द्वि० : लै गए । [तृ० : लै ग] । च० : द्वि० [(६) (६अ) : ले गे] ।

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु धरहु साप मम एहा ॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥
दो०—साप सीस धरि हरषि हिअँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ॥१३७॥
जब हरि माया दूरि निवारी । नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना । गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥
मृषा होउ मम साप कृपाला । मम इच्छा कह दीन दयाला ॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥
जपहु जाइ संकर सत नामा । होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें । असि परतीति तजहु जनि भोरें ॥
जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ॥
दो०—बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान[1] ।
सत्य लोक नारद चले करत राम गुन गान ॥१३८॥
हर गन मुनिहि जात पथ देखी । बिगत मोह मन हरष बिसेषी ॥
अति सभीत नारद पहिं आए । गहि पद आरत बचन सुनाए ॥
हर गन हम न बिप्र मुनिराया । बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥
साप अनुग्रह करहु कृपाला । बोले नारद दीनदयाला ॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ । बैभव बिपुल तेज बल होऊ ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ । धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा । होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई । भये निसाचर कालहि पाई ॥

१—[प्र०, द्वि० : अन्तर्ध्यान] । तृ० : अंतर्धान । च० तृ० । [(८) : अंतर्ध्यान] ।

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुवि भार ॥१३९॥

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई[1]। परम पुनीत प्रबंध बनाई[2]॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥
हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरि मायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥

सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि ॥१४०॥

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहिं[3] कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा॥
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरे मुनि बेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहौं मति अनुसारा॥
भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भएउ जेहि हेतू॥

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहौं सबु सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा कलिमल हरनि मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

१—प्र० : तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। द्वि० : प्र०। तृ० : तब तब कथा बिचित्र सुहाई। च० : प्र०।
२—प्र० : परम पुनीत प्रबंध बनाई। [द्वि० : परम बिचित्र प्रबंध बनाई]। तृ० : परम पुनीत मुनीसन्ह गाई। च० : प्र०।
३—[प्र० : केहि]। द्वि० : जेहि। तृ०, च : द्वि०।

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्हतें भै नर सृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका ॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरि भगत भएउ सुत जासू ॥
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही । बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥
आदि देव प्रभु दीन दयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्व बिचार निपुन भगवाना ॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु आयसु सब[1] बिधि प्रतिपाला ॥

सो०—होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथ पनु ।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गएउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

बरबस राज सुतहि तब[2] दीन्हा । नारि समेत गवन बन[3] कीन्हा ॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता । अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा । तहँ हिअँ हरषि चलेउ मनु राजा ॥
पथ जात सोहहिं मतिधीरा । ग्यान भगति जनु धरे सरीरा ॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निरमल नीरा ॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी । धरम धुरंधर नृपरिषि जानी ॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए । मुनिन्ह सकल सादर करवाए ॥
कृस सरीर मुनि पट परिधाना । सत[4] समाज नित सुनहिं पुराना ॥

दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ॥१४३॥

करहिं अहार साक फल कंदा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे । बारि अधार मूल फल त्यागे ॥

१—प्र० : सब । [द्वि० : सबु] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : तब । [द्वि० : (३) (४) (५) पुनि, (५अ) नृप] । [तृ० : नृप] । च० : प्र० [(८) : नृप] ।
३—[प्र० : बन] । द्वि० : बन । तृ०, च० : द्वि० ।

उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिन्तहिं परमारथबादी ॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद[1] निरुपाधि अनूपा ॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीला तनु गहई ॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥
दो०—एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार ।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार ॥१४४॥
बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ । ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहु बारा ॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥
प्रभु सर्बग्य दास निज जानी । गति अनन्य तापस नृप रानी ॥
माँगु माँगु धुनि[2] भइ नभबानी । परम गँभीर कृपामृत सानी ॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई । स्रवन रंध्र होइ उर जब आई ॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए । मानहु अबहिं भवन तें आए ॥
दो०—स्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात ॥१४५॥
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू । बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रनतपाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू । तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं । जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥

१—प्र० : निजानंद । द्वि० : प्र० [(४) चिदानंद] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : धुनि । द्वि० : प्र० । [तृ० : स्वर] । च० : प्र० [(६) (६अ) : स्वर] ।

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥
दो०—नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर[1] स्याम।
लाजहिं तनु सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥१४६॥
सरद मयंक बदन छबि सींवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबिहारी। तिलक ललाटपटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुज दंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥
दो०—तड़ित बिनिन्दक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि॥१४७॥
पद राजीव बरनि नहि जाहीं। मुनि मनमधुप बसहिंजिन्ह[2] माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयनपट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥
हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥

१—[प्र० : नीरनिधि]। द्वि० : नीरधर। तृ०, च० : द्वि०।
२—[प्र० : जैन्ह]। द्वि० : जिन्ह। तृ० : द्वि०। च० : (६) (६अ) जेन्ह, (८) तेन्ह]।

दो०—बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि ।
माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ॥१४८॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी । धरि धीरजु बोले[1] मृदु बानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं । सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं । अगम लाग मोहि निज कृपनाईं ॥
जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई । बहु संपति माँगत सकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान हिअ[2] सोई । तथा हृदयँ मम संसय होई ॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही । मोरें नहिं अदेय कछु तोही ॥

दो०—दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहौं सतिभाउ ।
चाहौं तुम्हहिं समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ॥१४९॥

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले । एवमस्तु करुनानिधि बोले ॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ॥
सतरूपहि बिलोकि कर जोरें । देबि माँगु बरु जो रुचि तोरें ॥
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा । सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ॥
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई । जदपि भगत[3] हित तुम्हहिं सुहाई ॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जगस्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥
अस समुझत मन संसय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥१५०॥

१—प्र० : बोली। द्वि० : बोले। तृ०, च० : द्वि०।
२—प्र० : जान हिअ। [द्वि०, तृ० : न जानहि]। [च० : (६) (६अ) जानहिं, (८) न जानत]।
३—[प्र० : भगति]। द्वि० : भगत। तृ० : द्वि०। [च० : (६) (६अ) भगति, (८) में शब्द छूटा हुआ है]।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बचन¹ रचना । कृपासिंधु बोले मृदु बचना ॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरें । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक बिनती प्रभु मोरी ॥
सुत बिषइक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥
मनिबिनु फनि जिमि जलबिनु मीना । ममजीवन तिमि² तुम्हहि अधीना ॥
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥
सो०—तहँ करि भोग बिसाल³ तात गएँ कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥१५१॥
इच्छामय नर बेष सँवारें । होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत सुख दाता ॥
जे⁴ सुनि सादर नर बड़भागी । भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
पूरब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपा निधाना । अंतरधान भए भगवाना ॥
दंपति उर धरि भगतकृपाला । तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥
दो०—यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु ॥१५२॥
सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी । जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥

१—प्र० बचन। [द्वि० बर]। [तृ० बर]। च० प्र० [(१) बर]।
२—प्र० : तिमि। द्वि० प्र० [(१) (२) भाँति]। [तृ० तिमि]। च० द्वि० [(२) तिमि]।
३—[प्र० बिसाल]। द्वि० बिसाल। तृ०, च० द्वि०।
४—प्र० जे द्वि०, तृ० प्र०। [च० (१) (१अ) जेहि (२) जो]।

बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू॥
धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥
राजधनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्रामा॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेद बिधि कतहुँ नहीं अघ लेस॥१५३॥

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥
सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥
सप्त दीप भुज बल बस कीन्हे। लै लै दंड छाँड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

दो०—स्वबस बिस्व करि बाहु बल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवै समयँ नरेसु॥१५४॥

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥
सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करै सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै सास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना बापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥

बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥
दो०—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
　　बार सहस सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥१५५॥
हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिन्ध्याचल गँभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहु क्रोध बस उगिलत नाहीं॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥
दो०—नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
　　चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥१५६॥
आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गएउ बिलोकत बाना॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप[१] चलेउ सँग लागा॥
गएउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजै नरेसू॥
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरि गुहाँ गँभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥
दो०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
　　खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भएउ अचेत॥१५७॥
फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा॥

१ [प्र० : रिस भूप ।] द्वि०, तृ०, च० : रिस बस भू॥

जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई । समर सेन तजि गएउ पराई ॥
समय प्रतापभानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी ॥
गएउ न गृह मन बहुत गलानी । मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा । बिपिन बसै तापस कें साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा । यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा ॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना । देखि सुबेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा । परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

गै श्रम सकल सुखी नृप भएऊ । निज आश्रम तापस लै गएऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी । पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें । सुंदर जुवा जीव परहेलें ॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें । देखत दया लागि अति मोरें ॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा । तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा ॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई । बड़ें भाग देखेउँ पद आई ॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा । जानत हौं कछु भल होनिहारा ॥
कह मुनि तात भएउ अँधियारा । जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा ॥

दो०—निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान ।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान ॥
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाइ ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ॥१५९॥

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा । बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही । चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई । जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी । नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना । भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा । छल बल कीन्ह चहै निज काजा ॥
समुझि राजसुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगै छाती ॥
सरल बचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदय हरषाना ॥
दो०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत ॥१६०॥
कह नृप जे बिज्ञान निधाना । तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराए । सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥
तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें । परम अकिंचन प्रिय हरि केरें ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा । होत बिरंचि सिवहि संदेहा ॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी । मो पर कृपा करिअ अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी । आपु बिषय बिस्वास बिसेषी ॥
सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सति भाउ कहौं महिपाला । इहाँ बसत बीते बहु काला ॥
दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावौं काहु ।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ॥
सो०—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥१६१॥
तातें गुपुत रहौं जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ । कहहु कवन सिधि लोक रिझाएँ ॥
तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें । प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें ॥
अब जौं तात दुरावौं तोही । दारुन दोष घटै अति मोही ॥
जिमि जिमि तापसु कथै उदासा । तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥

: [प्र० सं०]।[० ...।[० ...]। ...

देखा स्ववस कर्म मन बानी । तब बोला तापस बग[1] ध्यानी ॥
नाम हमार एकतनु भाई । सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी । मोहि सेवक अति आपन जानी ॥
दो०—आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।
नाम एकतनु हेतु तेहिं देह न धरी बहोरि ॥१६२॥
जनि आचरजु करहु मन माहीं । सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तप बल तें जग सृजै बिधाता । तप बल बिष्नु भए परित्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा । तप तें अगम न कछु संसारा ॥
भएउ नृपहि सुनि अति अनुरागा । कथा पुरातन कहै सो लागा ॥
करम धरम इतिहास अनेका । करै निरूपन बिरति बिबेका ॥
उदभव पालन प्रलय कहानी । कहेसि अमित आचरज बखानी ॥
सुनि महीप तापस बस भएऊ । आपन नाम कहन तब लएऊ ॥
कह तापस नृप जानौं तोही । कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥
सो०—सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि[2] तव ॥१६३॥
नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा । सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा । कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥
देखि तात तव सहज सुधाई । प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरें । कहौं कथा निज पूँछे तोरें ॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं । माँगु जो भूप भाव मन माहीं ॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें । चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । माँगि अगम बर होउँ असोकी ॥

१—प्र० : दग । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : बक] । [तृ० : बक] । च० : प्र० [(८) : बक] ।
२—प्र० : बिचारि। द्वि० : प्र० । [तृ० : देखि] । च० : प्र० [(८) : जानि] ।

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि१ कोउ ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ॥१६४॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥
कालौ तुअ पद नाइहि सीसा । एक बिप्र कुल छाड़ि महीसा ॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा । तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा ॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा । तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा ॥
चल२ न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई ॥
बिप्र स्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहुँ काला ॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मोकहुँ सर्ब काल कल्याना ॥

दो०—एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

तातें मैं तोहि बरजौं राजा । कहें कथा तव परम अकाजा ॥
छठें श्रवन यह परत कहानी । नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥
यह प्रगटें अथवा द्विज स्रापा । नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं । जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं ॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा । द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
राखै गुर जौं कोप बिधाता । गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता ॥
जौं न चलब हम कहें तुम्हारें । होउ नास नहिं सोच हमारें ॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा । प्रभु महिदेव स्राप अति घोरा ॥

दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखौं कोउ ॥१६६॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं । कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥

१—प्र० : जनि । द्वि० प्र० [(५अ) : जिनि] । तृ० प्र० । [च० जिनि] ।
२—प्र० : चलै । द्वि०, चल । तृ०, च० : द्वि० ।

अहे एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगें अरु जब तें भएउँ। काहू के गृह ग्राम न गएउँ ॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी ॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं ॥
जलधि[1] अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥

दो०–अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना ॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥
अवसि काज मैं करिहौं तोरा। मन क्रम[2] बचन भगत तैं मोरा ॥
जोग जुगुति जप[3] मंत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिअ दुराऊ ॥
जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥
पुनि तिन्हकें गृह जेंवै जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू ॥

दो०–नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेंवनार ॥१६८॥

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें ॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजेहिं बस देवा ॥
और एक तोहि कहौं लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ ॥

१—[प्र० : जल]। [द्वि० : जल]। तृ : जलधि। च० : तृ०।
२—प्र० : क्रम। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ) : तन]।
३—प्र० : जप। द्वि० : प्र०। [तृ० : तप]। [च० : (६) (६अ) तप, (८) जो]।

तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया । हरि आनब मैं करि निज माया ॥
तपबल तेहि करि आपु समाना । रखिहौं इहाँ बरष परवाना ॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा । सब बिधि तोर सवाँरब काजा ॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजे । मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता । पहुँचैहौं सोवतहिं निकेता ॥
दो०—मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि ।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि ॥१६९॥
सयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छलज्ञानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा । जानै सो अति कपट घनेरा ॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई । खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे । बिप्र संत सुर देखि दुखारे ॥
तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा । तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा ॥
जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ । भावीबस न जान कछु राऊ ॥
दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहु देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥१७०॥
तापस नृप निज सखहि निहारी । हरषि मिलेउ उठि भएउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई । जातुधान बोला सुख पाई ॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा । जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई । बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई । चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महा कपटी अति रोषी ॥
भानुप्रतापहि बाजि समेता । पहुँचाएसि छन माँझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई । हयगृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥

दो०—राजा के उपरोहितहि हरि लै गएउ बहोरि।
लै राखेसि गिरिखोह महुँ माया करि मति मोरि ॥१७१॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥
मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गएउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नरनारि न जानेउ केहीं॥
गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रहि मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रमबस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत ॥१७२॥

उपरोहित जेंवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकै न कोई॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद[1] पखारि सादर बैठाए॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भएउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

दो०—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार ॥१७३॥

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

१—प्र० : पद। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(३) (६अ) : पग]।

सबन मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि स्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥
बिप्रहु स्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गएउ जहँ भोजन खानी॥
तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥
दो०—भूपति भावी मिटै नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र स्राप अति घोर॥१७४॥
अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं[१]॥
उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥
सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्र स्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥
दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम॥१७५॥
काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भएउ सो कुंभकरन बल धामा॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भएउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषन जेहि जगु जाना। बिष्नु भगत बिज्ञान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

१—[प्र० तेहीं]। द्वि० जेहीं। तृ०, च० द्वि०।

कामरूप खल जिनस अनेका । कुटिल भयंकर बिगत बिबेका ॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी । बरनि न जाइ[१] बिस्व परितापी ॥
दो०—उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप ।
तदपि महीसुर स्राप बस भए सकल अघ रूप ॥१७६॥
कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गएउ निकट तप देखि बिधाता । माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
करि बिनती पद गहि दससीसा । बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारे । बानर मनुज जाति दुइ बारे ॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा । मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गएऊ । तेहि बिलोकि मन बिसमय भएऊ ॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू । होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी । माँगेसि नींद मास षट केरी ॥
दो०—गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु ।
तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥
तिन्हहिं देइ बर ब्रह्म सिधाए । हरषित ते अपने गृह आए ॥
मयतनुजा मंदोदरि नामा । परम सुंदरी नारि ललामा ॥
सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी । होइहि जातुधानपति जानी ॥
हरषित भएउ नारि भलि पाई । पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥
गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी । बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा । कनक रचित मनिभवन अपारा ॥
भोगावति जसि अहिकुल बासा । अमरावति जसि सक्र निवासा ॥
तिन्हतें अधिक रम्य अति बंका । जग बिख्यात नाम तेहि लंका ॥
दो०—खाईं सिंधु गँभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव ।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव ॥

१—प्र० : जाइ । [द्वि० : जाहिं] । तृ०, च० : प्र० [(न) जाहिं] ।

हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ ॥१७८॥

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥
फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

दो०—कौतुक हीं कैलास पुनि लीन्हिसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥

१—[प्र० बलमभा] द्वि० बल भमोत। तृ०, च० पं०।
२—प्र० हार। द्वि० प्र० [( ) बेर]। तृ०, च० प्र०।
३—प्र० [( ) बेर]। तृ०, च० प्र०।
४—प्र० [(४) कहुँ]। तृ०, च० प्र०।
— प्र०, ११। द्वि० प्र० [(४)

दसमुख बैठ सभाँ एक बारा । देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती । गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी । बोला बचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा । हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई । देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई । कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा । सबकै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥

दो०—छुधा छीन बल हीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा । दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा ॥
जे सुर समर धीर बलवाना । जिन्हकें लरिबे कर अभिमाना ॥
तिन्हहिं जीति रन आनेसु बाँधी । उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही । आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही ॥
चलत दसासन डोलत अवनी । गर्जत गर्भ स्त्रवहिं[1] सुररवनी ॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन्ह तकेउ मेरु गिरि खोहा ॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारि पचारी[2] ॥
रनमद मत्त फिरै जग धावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी । अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसबर्ती नर नारी ॥
आयसु करहिं सकल भयभीता । नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥

---

[1]—प्र० : स्रवत । द्वि० : प्र० । तृ० : स्रवहिं । च० : तृ० ।
[2]—प्र० : पचारी । [द्वि० : प्रचारी] । [तृ० : प्रचारी] । च० : प्र० [(६) (८) : प्र० ।]

दो०—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र ।
मंडलीकमनि रावन राज करै निज मंत्र ॥
देव जच्छ गंधर्व नर किंनर नाग कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि ॥१८२॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ । सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा । तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥
देखत भीमरूप सब पापी । निसिचर निकर देव परितापी ॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया ॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई । देव बिप्र गुर मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य जप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा[१] ।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा[१] ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना[१] ।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना[१] ॥

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥१८३॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानहु[२] निसिचर सम[३] प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै हानी[४] । परम सभीत धरा अकुलानी ॥

१—[प्र० क्रमश सीस खीस, कान पुरान] । द्वि०, तृ०, च० सीसा खीसा, काना पुराना [(८) (९अ) साम खीस, कान पुरान] ।
२—प्र० जान्हु । द्वि०, तृ० च० प्र० [(६) (६अ) जानेहु] ।
३—[प्र० सब] । द्वि० तृ० च० सम [(६) (६अ) सब] ।
४—प्र० हानी । द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६) (६अ) ग्लानी] ।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही । जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखै बिपरीता । कहि न सकै रावन भय भीता ॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी । गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई । काहू तें कछु काज न होई ॥

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका[1] ।
सँग गो तनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका[1] ॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई[2] ।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरउ तोर सहाई[2] ॥

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥१८४॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा । कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई । कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥
जाकें हृदयँ भगति जसि प्रीती । प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी ॥
मोर बचन सबकें मन माना । साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर ॥१८५॥

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता[3] ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता[3] ॥

१—[प्र० : क्रमशः लोक, सोक] । द्वि०, तृ०, च० : लोका, सोका [(६) (६अ) : लोक, सोक] ।

२—[प्र० : क्रमशः बसाई, सहाई] । द्वि०,तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ) बसाइ, सहाइ] ।

३—[प्र० : क्रमशः भगवंत, प्रिय कंत] । द्वि०, तृ०, च० : भगवंता, प्रिय कंता [(६) (६अ) : भगवंत, प्रिय कंत] ।

पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जाने कोई[1] ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करौ अनुग्रह सोई[1] ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा[2] ।
अबिगत गोतीत चरित पुनीत मायारहित मुकुंदा[2] ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा[3] ।
निसिबासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा[3] ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाइ न दूजा[4] ।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा[5] ॥
जो भव भय भंजन मुनिमन रंजन गंजन[6] बिपति बरूथा[7] ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा[7] ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना[8] ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवौ सो श्री भगवाना[8] ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा[9] ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा[9] ॥

दो०- जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥१८६॥

१—[प्र० जगइ कोइ, सोइ]। द्वि०, तृ०, च० कोई, सोई [(६) (६अ) कोई, सोइ]।
२—[प्र० क्रमशः परमानंद, मुकुंद]। द्वि० तृ० च० परमानंदा, मुकुंदा [(६) (६अ) परमानं, मुकुंद]।
३—[प्र० [illegible] मुनिबृंद, सच्चिदानंद]। द्वि०, तृ०, च० मुनिबृंदा, सच्चिदानंदा [(६) (६अ) मुनिबृंद, सच्चिदानंद]।
४—[प्र० न कोउ न दूजा]। द्वि०, तृ०, च० न दूजा।
५—[प्र० न पूजा]। द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६) न कछु पूजा]।
६—प्र० गंजन। द्वि० तृ० च० प्र० [(६) [illegible]]।
७—[प्र० क्रमशः रूथ, जूथ]। द्वि० तृ० च० बरूथा जूथा [(६) (६अ) बरूथ, जूथ]।
८—[प्र० क्रमशः जान, भगवान]। द्वि०, तृ०, च० जाना, भगवाना [(६) (६अ) जान, भगवान]।
९—[प्र० क्रमशः पुंज, कंज]। द्वि०, तृ०, च० पुंजा, कंजा [(६) (६अ) पुंज, कंज]।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहौं दिनकर बंस उदारा ॥
कस्यप अदिति महा तप कीन्हा । तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा । कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा ॥
तिन्हकें गृह अवतरिहौं जाई । रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद बचन सत्य सब करिहौं । परम सक्ति समेत अवतरिहौं ॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना । तुरत फिरे[१] सुर हृदय जुड़ाना ॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा । अभय भई भरोस जिअँ आवा ॥

दो०--निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहै सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि[२] हरि पद सेवहु जाइ ॥१८७॥

गए देव सब निज निज धामा । भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा ॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माहीं । अतुलित बल प्रतापनिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा । हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि[३] पूरी । रहे निज निज अनीक रचि[४] रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा । अब सो सुनहु जो बीचहि राखा ॥
अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ । बेदबिदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी । हृदयँ भगति मति सारँगपानी ॥

दो०--कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत ॥१८८॥

१--[प्र० : फिरेउ] । द्वि०, तृ०, च० : फिरे [(२) (२अ) : फिरेउ] ।
२--प्र० : धरि धरि महि । द्वि० : प्र० [( ) धरि धरनि महुँ, (५) धरि धरि धरनि] [तृ० : धरि धरि धरनि]। च० : प्र०[(६) (६अ) . धरि धरनि महुँ ।
३--प्र० : भरि । [द्वि० : महि] । तृ०, च० : प्र० ।
४--[प्र० : रचि] । द्वि० : रचि [(५) : रचि] । तृ०, च० : द्वि० ।

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुर गृह गएउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनाएउ। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझाएउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी॥
शृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
येह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
दो०--तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥१८९॥
तबहिं राय प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहाँ चलि आई॥
अर्द्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दएऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भएउ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारीं। भईं हृदय हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥
मंदिर महँ सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
सुख जुत कछुक काल चलि गएऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएऊ॥
दो०--जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत राम जनम सुख मूल॥१९०॥
नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरितामृतधारा॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥

बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा ॥
दो०—सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम ॥१९१॥
छं०—भए प्रगट कृपाला परम दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी ॥
लोचन अभिरामं तनु घन स्यामं निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता[१]।
माया गुन ज्ञानातीत अमाना बेद पुरान भनंता[१] ॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता[१]।
सो मम हित लागी जनअनुरागी भएउ प्रगट श्रीकंता[१] ॥
ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात येह रूपा[२]।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला येह सुख परम अनूपा[२] ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा[२]।
येह चरित जे गावहिं हरपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा[२] ॥
दो०—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥१९२॥

१—[प्र० : क्रमशः अनंत, भनंत, संत, श्रीकंत] । द्वि० : अनंता, भनंता, संता, श्रीकंता। तृ०, च० : द्वि० [(६) (६अ) : अनंत, भनंत, संत, श्रीकंत]।
२—[प्र० : क्रमश. रूप, अनूप, भूप, कूप] । द्वि० : रूपा, अनूपा, भूपा, कूपा। तृ०, च० : द्वि० [(६) (६अ) : रूप, अनूप, भूप, कूप]।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी । आनँद मगन सकल पुरबासी ॥
दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई । मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मन राजा । कहा बुलाइ बजावहु बाजा ॥
गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा । आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखिन्हि जाई । रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥
दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥१९३॥
ध्वज पताक तोरन पुर छावा । कहि न जाइ जेहिं भाँति बनावा ॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई । ब्रह्मानंद मगन सब लोई[1] ॥
बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं । सहज सिंगार किएँ उठि धाईं ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरती नेवछावरि करहीं । बार बार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदिगन गायक । पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥
सर्बस दान दीन्ह सब काहू । जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा । मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ॥
दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रभु सुखकंद[2] ।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद ॥१९४॥
कैकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ ॥
वोह सुख संपति समय समाजा । कहि न सकै सारद[3] अहिराजा ॥

१—प्र० : सब लोई । [द्वि० : (२) (५अ) नर लोई, (४) (५) सब कोई] । [तृ० : सब कोई] । च० : प्र० [(८) : सबकोई] ।
२—प्र० : प्रगटेउ प्रभु सुखकंद । [द्वि० : प्रभु प्रगटे सुखकंद] । तृ० : प्र० । [च० : (६) (६अ) प्रगटेउ सुखकंद, (८) प्रगट भए सुखकंद] ।
—प्र० : सारद । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : सादर] ।

अवधपुरी सोहे एहिं भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥
अगर धूप जनु बहु अँधिआरी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी ॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा ॥
भवन बेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी ॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना ॥
दो०—मासदिवस कर दिवस भा मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ ॥१९५॥
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना ॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा ॥
औरौ एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी ॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहिं कोऊ ॥
परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन[१] भूले ॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम के जापर होई ॥
तेहि अवसर जो जेहिं बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहिं मन भावा ॥
गजरथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा ॥
दो०—मन संतोष सबन्हि कें जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिरजीवहु तुलसिदास के ईस ॥१९६॥
कछुक दिवस बीते एहिं भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इन्हकें नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥

१—[प्र० : मकल रस]। द्वि० . मगन मन [(३) (४) (५अ) : सकल रस]। [तृ० : सकल रस]। च० : प्र०।

सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाकें सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥
दो०—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार ।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥१९७॥
धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी । बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना । बाल केलि रस तेहिं सुख माना ॥
बारेहि तें निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनौ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी ॥
चारिउ सील रूप गुन धामा । तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । मातु दुलारै कहि प्रिय ललना ॥
दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥१९८॥
काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नखजोती । कमलदलन्हि बैठे जनु मोती ॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गँभीर जान जेहिं देखा ॥
भुज बिसाल भूषनजुत भूरी । हिय हरिनख अति सोभा[१] रूरी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्रचरन देखत मन लोभा ॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरनै पारे ॥

१—प्र० : अति सोभा । द्वि० : प्र० । [तृ० : सोभा अति] । च० : प्र० [(८) : सोभा अति] ।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा । सो जानै सपनेहुँ जेहिं देखा ॥
दो०—सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ॥१९९॥
एहि बिधि राम जगत पितु माता । कोसलपुर बासिन्ह सुख दाता ॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी । तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी ॥
रघुपति बिमुख जतन कर कोरी । कवन सकै भव बंधन छोरी ॥
जीव चराचर बस कै[१] राखे । सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥
भृकुटि बिलास नचावै ताही । अस प्रभु छाँड़ि भजिअ कहु काही ॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई । भजत कृपा करिहहिं रघुराई ॥
एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा । सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा ॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै ॥
दो०—प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान ।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ॥२००॥
एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढ़ाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देखि सुत जाई ॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदयँ कंप मन धीर न होई ॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा ॥

१—[प्र० : सब के] । द्वि० : बसकरि । तृ० : द्वि०। [च० : (६) (६अ) सबके, (८) जो करि] ।

देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥
दो०—देखरावा मातहि निज अदभुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥२०१॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावै जाही । देखी भगति जो छोरै ताही ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा ॥
बिसमयवंत देखि महतारी । भए बहुरि सिसु रूप खरारी ॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगतपिता मैं सुत करि जाना ॥
हरि जननी बहु बिधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥
दो०—बार बार कौसल्या बिनय करै कर जोरि ।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि ॥२०२॥
बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा । अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीते सब भाई । बड़े भए परिजन सुखदाई ॥
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥
मन क्रम बचन अगोचर जोई । दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बाल समाजा ॥
कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई ॥
निगम नेति सिव अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥
धूसर धूरि भरे तनु आए । भूपति बिहँसि गोद बैठाए ॥
दो०—भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि[1] चले किलकत[2] मुख दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

१—प्र० : भाजि । [द्वि० : भागि] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : किलकत । द्वि० : प्र० [(५) (५अ): किलकात] । [तृ० : किलकात] । च० : प्र० ।

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए ॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता ॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुर पितु माता ॥
गुर गृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब पाई ॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला ॥
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥

दो०—कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ॥२०४॥

बंधु सखा सँग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
पावन मृग मारहिं जिअँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी ॥
जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं ॥
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुर नावहिं माथा ॥
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषै मन राजा ॥

दो०—ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ॥२०५॥

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई ॥
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥
गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ॥

एहि मिस देखौं[1] पद जाई । करि बिनती आनौं दोउ भाई ॥
ज्ञान बिराग सकल गुन अयना । सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ॥
दो०—बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार ।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार ॥२०६॥
मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गएउ लै बिप्र समाजा ॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहि दूजा ॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ॥
पुनि चरननि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
भए मगन देखत मुख सोभा । जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावौं बारा ॥
असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आएउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥
दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुजस प्रभु तुम्हकोर[2] इन्ह कहुँ अति कल्यान ॥२०७॥
सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुखदुति कुमुलानी ॥
चौथेंपन पाएउँ सुत चारी । बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्बस देउँ आजु सह रोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय[3] प्रान की नाईं । राम देत नहिं बनै गुसाईं ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ॥

१—प्र० : एहिं मिस देखौं पद । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ). एहि मिस मैं देखौं पद] [तृ० : यहि मिस देखौं प्रभु पद] । च० : प्र० ।
२—प्र० : तुम्हकोर । [द्वि० तृ० : तुम्हकहुँ] । च० : प्र० [(८) : तुम्हकहुँ] ।
३—प्र० : प्रिय । [(३) (४) (५) प्रिय मोहि , (५अ) प्रिय मम] । [तृ० : प्रिय

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ज्ञानी॥
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत बहु बिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

सो०—पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मति धीर अखिल बिस्व कारन करन॥२०८॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहि निति[1] पिता तजेउ भगवाना॥
चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
तब रिषि निज नाथहि जिअँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिआसा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

दो०—आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति[2] हित जानि॥२०९॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥
सुन मारीच निसाचर कोही[3]। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

1—प्र० निति। द्वि० प्र० [( ) हित]। [तृ०: हित]। च० प्र०।
2—प्र० भगत। [द्वि०, तृ० भगत]। च०: प्र० [(=). भगत]।
3—[प्र० क्रोही]। द्वि, तृ०, च०: कोही] (?) (द्वि) क्रोही।

पावकसर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥
मारि असुर द्विज निर्भय कारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
धनुष जग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेषी॥

दो०—गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥२१०॥

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही॥
धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ज्ञानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥
मुनि स्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहै लाभु संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगौं बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥

प्र ।। द्वि० प्र० [(५) मारा]। तृ० च० प्र० [(८) (२अ) [illegible]]।
—प्र [illegible]। द्वि० मुनि [(५३) करि]। तृ०, च० द्वि० [(६) (२अ) करि]।

एहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी॥

दो०–अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि[1] मजु छाड़ि कपट जंजाल॥२११॥

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहिं प्रकार सुरसरि महि आई॥
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया॥
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा सम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहु बरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता॥

दो०–सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास॥२१२॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँ लोभाई॥
चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय जनु बिधि स्वकर[2] सँवारी॥
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना॥
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥
मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ज्ञानी गुनवंता॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥

१—प्र०: तेहि। द्वि०: प्र० [(४) (५) (५अ): नाहि]। [तृ०: ताहि]। च०: प्र० [(८): नाहि]।

२—प्र०: जनु बिधि स्वकर। [द्वि०: बिधि जनु स्वकर]। तृ०: प्र०। [च०: (६) (६अ) बिधि जनु स्वकर, (८) बिधि निज कार]।

होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥
दो०-धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति॥२१३॥
सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप[१] गृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥
भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनि बृंद समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥
दो०-संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहिं भाँति॥२१४॥
कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्र बृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥
कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥
भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
दो०-प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गंभीर॥२१५॥
कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥

[१ प्र०: नृप]। द्वि०, तृ०, च०: भूप।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
ता तें प्रभु पूछौं सतिभाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी । मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए । मम हित लागि नरेस पठाए ॥
दो०—रामु लखनु दोउ बंधु बर रूप सील बल धाम ।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते[1] असुर संग्राम ॥२१६॥
मुनि[2] तव चरन[3] देखि कह राऊ । कहि न सकौं निज पुन्य प्रभाऊ ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता । आनँदहू के आनँददाता ॥
इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि । कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू । ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू । पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू । चलेउ लवाइ नगर अवनीसू ॥
सुंदर सदनु सुखद सब काला । तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई । गएउ राउ गृह बिदा कराई ॥
दो०—रिषय संग रघुबंसमनि करि भोजनु बिश्रामु ।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु ॥२१७॥
लषन हृदयँ लालसा बिसेषी । जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥
राम अनुज मन की गति जानी । भगत बछलता हिअँ हुलसानी ॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन पाई ॥

१—प्र० : जिते । द्वि० : प्र० । [तृ० : जीति] । च० : प्र० [(छ) : जाति] ।
२—[प्र० : मुनि] । द्वि० : मुनि । तृ०, च० द्वि० ।
३—[प्र० : चरित] । द्वि० : चरन । तृ०, च० : द्वि० ।

नाथ लषनु पुरु देषन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं । नगरु देखाइ तुरत लै आवौं ॥
मुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम बिबस सेवक सुख दाता ॥
दो०--जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ॥२१८॥
मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुख दाता ॥
बालक बृंद देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ॥
पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नाग मनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक ताप त्रय मोचन ॥
कानन्हि कनकफूल छबि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥
दो०-रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥२१९॥
देखन नगरु भूप सुत आए । समाचार पुरबासिन्ह पाए ॥
धाए धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई । होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं । निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती । सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ॥
बिष्नु चारिभुज बिधि मुखचारी । बिकट भेष मुखपंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही । येह छबि सखी पटतरिअ जाही ॥
दो०-बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम ।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह येहु रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥
ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥
स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन ॥
कौसल्यासुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी ॥
गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें ॥
लछिमनु नामु रामु लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥
दो०—बिप्र काजु करि बंधु दोउ मग मुनि बधू उधारि।
आए देखन चाप मख सुनि हरषीं सब नारि ॥२२१॥
देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि येहु बरु अहई ॥
जौं सखि इन्हहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिबाहू ॥
कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥
कोउ कह जौं भल अहै बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिंन आलि इहाँ संदेहू ॥
जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं येहि नातें ॥
दो०—नाहिं त हमकहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।
येह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ॥२२२॥
बोली अपर कहेहु सखि नीका। येहिं बिबाह अति हित सबहीं का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
सबु असमंजस अहइ सयानी। येह सुनि अपर कहै मृदु बानी ॥
सखि इन्हकहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥
परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें। येह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी । तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं । ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं ॥

दो०—हिअँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।
जाहिं जहाँ जहँ[1] बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥२२३॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई । जहँ धनु मख हित भूमि बनाई ॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी । बिमल बेदिका रुचिर सँवारी ॥
चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला । रचे जहाँ बैठहिं महिपाला ॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा । अपर मंच मंडली बिलासा ॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई । बैठहिं नगर लोग जहँ जाई ॥
तिन्ह कें निकट बिसाल सुहाए । धवल धाम बहु बरन बनाए ॥
जहँ बैठें देखहिं सब नारीं । जथाजोग निज कुल अनुहारीं ॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहि देखावहिं रचना ॥

दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेम बस परसि मनोहर गात ।
तन पुलकहिं अति हरषु हिअँ देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

सिसु सब राम प्रेमबस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥
राम देखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया । रचै जासु अनुसासन माया ॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुष मख साला ॥
कौतुक देखि चले गुर पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई । भजन प्रभाउ देखावत सोई ॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं । किए बिदा बालक बरिआईं ॥

दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

[1] : जहाँ जहँ । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (१) (६अ) जहँ जहँ, (२) जहाँ जहाँ]।

निसि प्रवेस मुनि आयेसु दीन्हा। सबहीं संध्या बंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल[१] पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लषनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

दो०—उठे लषनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥२२६॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयेसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुररूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा॥

दो०—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु येहु जो रामहि सुख देत॥२२७॥

चहुँ दिसि चितै पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखीं सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
सर समीप गिरिजागृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥

१—प्र० : कमल। [द्वि०, तृ० : पदुम]। च० : प्र० : [(८) : पदुम]।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गईं मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु माँगा॥
एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बयन॥२२८॥

देखन बागु कुँअर दुइ[1] आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ[2] आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

दो०—सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥२२९॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दगंचल॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृहँ दीप सिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी॥

१—प्र० दुइ। [द्वि०, तृ० दोउ]। च० प्र०।
२—प्र० तेइ। द्वि० प्र०। [तृ० सो] च० प्र० [( ) त]।

दो०—सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

तात जनकतनया येह सोई । धनुषजज्ञ जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आई । करत प्रकास फिरहिं फुलवाईं ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सबु कारनु जान बिधाता । फरकहिं सुभद[1] अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ[2] ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं[3] परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥

दो०—करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान ॥२३१॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता[4] ॥
जहँ बिलोक मृग सावक नयनी । जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहिं उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

१—प्र० : सुभद । [द्वि०, तृ० : सुभग] । च० : प्र० ।
२—प्र० : मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ । [द्वि० : भूमि न देहिं कुमारग पाऊ] । तृ०, च० : प्र० ।
३—प्र० : पावहिं । द्वि० : प्र० [(अ) : नावहिं] । [तृ० : नावहिं] । च० : प्र० [(ब) : लावहिं] ।
४—प्र० : चिंता । द्वि० : प्र० । [तृ० : चीता] । च० : प्र० [(ब) : चीता] ।

दो०—लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥२३२॥

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात[1] सरीरा॥
मोरपंख[2] सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच[3] कुसुमकली के॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूँघुरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥

दो०—केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यानु करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भएउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ[4] काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भएउ बिलंबु मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपउ[5] पितु बस जाने॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : जलजात [(६) (६अ) जलजाभ]।
२—प्र० : मोरपंख। द्वि० : प्र० [(४) : काकपक्ष]। [तृ० : काकपक्ष]। च० : प्र० [(८) : काकपक्ष]।
३—प्र० : गुच्छ बीच बिच। [द्वि०, तृ०, : गुच्छे बिच बिच]। च० : प्र० [(८) गुच्छे बिच बिच]।
४—प्र० : बेरिआँ। द्वि० : प्र० [(३) बरिआ, (४) (५) बिरिआ]। [तृ० : बिरिआ]। च० : प्र०।
५—प्र० : फिरी अपनपउ। [द्वि० : फिरि आपनपउ]। तृ०, च० : प्र०।

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरै बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥२३४॥
जानि कठिन सिव चाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन[1] खानी ॥
परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतीं[2] लिखि लीन्ही ॥
गईं भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोलीं कर जोरी ॥
जय जय गिरिबरराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ॥
नहिं तव आदि अंत[3] अवसाना । अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ॥
दो०—पति देवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष ॥२३५॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी । बरदायनी पुरारि[4] पिआरी ॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥
मोर मनोरथु जानहु नीकें । बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे[5] बैदेहीं ॥
बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ । बोलीं गौरि हरष हिअँ भरेऊ[6] ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥

१—प्र० : गुन । [द्वि० : कै] । तृ०, च० : प्र० [(न) : कै] ।
२—प्र० : चित्त भीतीं । [द्वि० : चित्र भीतर] । तृ०, च० : प्र० [(६) द्विचित्र भीति; (न) : चित्र भीतर] ।
३—प्र० : अंत । [द्वि०, तृ० : मध्य] । च० : प्र० ।
४—प्र० : बरदायनी पुरारि । द्वि० : प्र० । [तृ० : बरदायिनि त्रिपुरारि] । च० : प्र० [(न) : बरदायिनि त्रिपुरारि] ।
५—प्र० : गहे । द्वि० : प्र० । [तृ० : गहीं] । च० : प्र० ।
६—प्र० : भरेउ । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ) : भयउ] ।

नारद बचनु सदा सुचि साचा । सो बरु मिलिहि जाहिं मन राचा ॥
छं०—मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो[१] ।
करुनानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो[१] ॥
येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिअँ हरषीं अलीं ।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं ॥
सो०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिअँ हरषु न जाइ कहि ।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥२३६॥
हृदयँ सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
रामु कहा सबु कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं ॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही । पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे । राम लषन सुनि भए सुखारे ॥
करि भोजनु मुनिबर बिज्ञानी । लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
बिगत दिवसु गुर आयेसु पई । संध्या करन चले दोउ भाई ॥
प्राची दिसि ससि उएउ सुहावा । सियमुख सरिस देखि सुखु पावा ॥
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥
दो०—जनम सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंकु ।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंकु ॥२३७॥
घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई । ग्रसै राहु निज संधिहि पाई ॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा तोही ॥
बैदेही मुख पटतर दीन्हे । होइ दोषु बड अनुचित कीन्हे ॥
सिय मुखछबि बिधुब्याज बखानी । गुर पहिं चले निसा बडि जानी ॥
करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयेसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ॥
बिगत निसा रघुनायकु जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥
उएउ अरुनु अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुख दाता ॥
बोले लखन जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी ॥

प०, द्वि०, तृ०, च० : क्रमश: सावरो रावरो, [(६क)] : क्रमश: साँवरे,रावरे]।

दो०–अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ॥२३८॥
नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उएउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥
रबि निज उदयब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह देखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्य क्रिया करि गुर पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥
सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक बिनय तिन्ह आनि[1] सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥
दो०–सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ ॥२३९॥
सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जसभाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुष मख साला॥
रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुवान जरठ[2] नरनारी॥
देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥
दो०–कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ॥२४०॥

१— प्र० : आइ। द्वि० : आनि। [तृ० : आइ]। च० : द्वि०।
२—[प्र०, द्वि० : जठर]। तृ०, च० : जरठ [(८) : जठर]।

राजकुँअर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर[१] नागर बर बीरा । सुंदर स्यामल गोर सरीरा ॥
राज समाज बिराजत रूरे । उडगन महु जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं भूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रसु धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छलछोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नरभूषन लोचन सुखदाई ॥
दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हिअँ निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥२४१॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाइ[२] बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भायँ[३] जेहि सीया । सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ॥
एहि[४] बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ ॥
दो०—राजत राज समाज महु कोसलराज किसोर ।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर ॥२४२॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके । नीरज नयन भावते जी के ॥

१—[प्र० • मागर] । द्वि० सागर मागर । त०, च० द्वि० ।
२—प्र० ानि । द्वि० ाइ [(५अ) जान] । तृ०, च० द्वि० ।
३—प्र० भायँ । द्वि० प्र० [(४) भाय] । [तृ०, भाय च० प्र०] ( ) भाय] ।
४—प्र० येहि । द्वि० जहि । तृ० येहि । च० तृ० [( ) जहि] ।

चितवनि चारु मार मनु-हरनी । भावति हृदयँ जात नहिं बरनी ॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ॥
कुमुदबंधु कर निंदक हासा । भृकुटी बिकट मनोहर नासा ॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं । कच बिलोकि अलिअवलि लजाहीं ॥
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं । कुसुमकलीं बिच बीच बनाईं ॥
रेखैं रुचिर कंबु कल ग्रीवा । जनु त्रिभुवन सुषमा की सींवा ॥
दो०—कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल ।
वृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल ॥२४३॥
कटि तूनीर पीत पट बाँधे । कर सर धनुष बाम बर काँधे ॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए । नखसिख मंजु महा छबि छाए ॥
देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे[१] ॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई । मुनि पद कमल गहे तब जाई ॥
करि बिनती निज कथा सुनाई । रंगअवनि सब मुनिहि देखाई ॥
जहँ जहँ जाहिं कुँअर बर दोऊ । तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ ॥
निज निज रुख रामहि सबु देखा । कोउ न जानै कछु मरमु बिसेषा ॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ । राजा मुदित महा सुखु लहेऊ ॥
दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एकु सुंदर बिसद बिसाल ।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ॥२४४॥
प्रभुहि देखि सब नृप हिअँ हारे । जनु राकेस उदय भएँ तारे ॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं । राम चाप तोरब संक नाहीं ॥
बिनु भजेहु भवधनुषु बिसाला । मेलिहि सीय राम उर माला ॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई । जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई ॥
बिहसे अपर भूप सुनि बानी । जे अबिबेकी अंध अभिमानी ॥
तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा । बिनु तोरें को कुँअरि बिआहा ॥

१—प्र० : चलत न तारे । [द्वि० : (३) (४) चलत न टारे, (५) (५अ) टरैं न टारे] । [तृ०: टरत न टारे] । च० : प्र० [(८): टरैं न टार] ।

एक बार कालहुँ किन होऊ । सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
येह सुनि अवर महिप[1] मुसुकाने । धरमसील हरिभगत सयाने ॥
सो०—सीय बिआहबि राम गरबु दूरि करि नृपन्ह को[2] ।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे ॥२४५॥
व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदकन्हि कि भूख बताई[3] ॥
सिख हमार सुनि परम पुनीता । जगदंबा जानहु जिअँ सीता ॥
जगतपिता रघुपतिहि बिचारी । भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी । ए दोउ बंधु संभु उर बासी ॥
सुधासमुद्र समीप बिहाई । मृगजलु निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा । हम तौ आजु जनम फलु पावा ॥
अस कहि भले भूप अनुरागे । रूप अनूप बिलोकन लागे ॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना । बरषहिं सुमन करहिं कल गाना ॥
दो०—जानि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ॥२४६॥
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं । प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥
सिय बरनिअ तेइ[4] उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौ पटतरिअ तीअ सम सीया । जग असि जुवति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनुपति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥
जौ छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥

१—प्र० : अवर महिप । द्वि० . प्र० । [तृ०. अपर भू०] । च० : प्र० ।
२—[प्र० . के] । द्वि०, तृ०, च० : को ।
३—प्र० : बताई । द्वि० : प्र० [( ) : बुताइ] । [तृ० : बुताइ] । च० : प्र० [(=) : न जाई] ।
४—प्र० : सिय बरनिअ तेइ । द्वि० : प्र० । [तृ० : सीय बरनि तेइ] । च० : प्र० [(=) : सियहि बरनि जाइ] ।

सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥
दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ॥२४७॥

चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगतजननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारीं । देखि रूप मोहे नर नारीं ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं । बरषि प्रसून अपछरा गाईं ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥
दो०—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि[1] बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें । नरनारिन्ह परिहरीं निमेषें[2] ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमारि[3] असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू । सीय राम कर करै बिबाहू ॥
जगु भल कहिहि भाव सब काहू । हठ कीन्हें अतहुँ उर दाहू ॥
येहिं लालसाँ मगन सबु लोगू । बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बंदीजन जनक बोलाए । बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिअँ हरषु न थोरा ॥

१—प्र० : लागि । द्वि० : प्र० । [तृ० : लगी] । च० : प्र० [(८): लगी] ।
२—प्र० : देखें, निमेषें । द्वि० : प्र० । [तृ० : देखी, निमेखी] । च० : प्र० [(८): देखीं, निमेषीं] ।
३—प्र० : हमारि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६क): हमार] ।

एक बार कालहुँ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
येह सुनि अवर महिप[१] मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने ॥
सो०–सीय बिआहबि राम गरबु दूरि करि नृपन्ह को[२] ।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे ॥२४५॥
व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकन्हि कि भूख बुताई[३] ॥
सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिअँ सीता ॥
जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी ॥
सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा ॥
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे ॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना ॥
दो०–जानि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ॥२४६॥
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥
सिय बरनिअ तेइ[४] उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौ पटतरिअ तीअ सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनुपति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥
जौ छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई ॥

१—प्र० अवर महिप। द्वि० प्र०। [तृ० अपर भू।]। च० प्र०।
२—[प्र० के]। द्वि०, तृ०, च० को।
३—प्र० बताई। द्वि० प्र० [( ) बुताइ]। [तृ० बुताइ]। च० प्र० [( ) न जाइ]।
४—प्र० सिय बरनिय तेइ द्वि० प्र०। [तृ० सीय बरनि तेइ]। च० प्र० [(–) सियहि बरनि जनि]।

सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥
दो०–एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ॥२४७॥
चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगतजननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारीं । देखि रूप मोहे नर नारीं ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं । बरषि प्रसून अपछरा गाईं ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥
दो०–गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि[१] बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥
राम रूपु अरु सिय छबि देखें । नरनारिन्ह परिहरीं निमेषें[२] ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमारि[३] असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू । सीय राम कर करै बिआहू ॥
जगु भल कहिहि भाव सब काहू । हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू ॥
येहिं लालसाँ मगन सबु लोगू । बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बंदीजन जनक बोलाए । बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिअँ हरषु न थोरा ॥

१–प्र० : लागि । द्वि० : प्र० । [तृ० : लगी] । च० : प्र० [(८): लगी] ।
२–प्र० : देखें, निमेषें । द्वि० : प्र० । [तृ० : देखी, निमेखी] । च० : प्र० [(८): देखीं, निमेखी] ।
३–प्र० : हमारि । द्वि०, तृ० : प्र०, । च० : प्र० [(२अ): हमार] ।

दो०—बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल ।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥२४९॥

नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू । गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासन गवँहिं सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा । राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही । बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ॥
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे । भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥
तमकि ताकि१ तकि सिवधनु धरहीं । उठै न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्हकें कछु बिचार मन माहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ॥

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ ॥२५०॥

भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरै न टारा ॥
डगै न संभु सरासनु कैसें । कामी बचन सती मनु जैसें ॥
सब नृप भए जोगु उपहासी । जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी । चले चाप कर बरबस हारी ॥
श्रीहत भए हारि हिअँ राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने । बोले बचन रोष जनु साने ॥
दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

दो०—कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

कहहु काहि येहु लाभु न भावा । काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहौ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छँड़ाई२ ॥

१—प्र० ताकि । द्वि० प्र० । [(?) तमकि] । तृ० प्र० [(८) तमकि] ।
२—प्र० सके छड़ाई । द्वि० प्र० [(४) (५) (५अ) सकेउ छड़ाई] । तृ०, च० प्र० [(६) सके उठाई, (८) काहु छड़ाई] ।

अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृहँ जाहू । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ । कुँअरि कुँआरि रहौ का करऊँ ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई । तौ पन करि होतेउँ न हँसाई ॥
जनक बचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे लषनु कुटिल भइँ भौंहैं । रदपट फरकत नयन रिसौंहैं ॥

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान ॥२५२॥

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई । तेहिं समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी । बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं । कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक जिमि[1] तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । को[2] बापुरो पिनाकु पुराना ॥
नाथ जानि अस आयेसु होऊ । कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं । जोजन सत प्रमान लै धावौं ॥

दो०—तोरौं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ॥२५३॥

लषन सकोप बचन जब[3] बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने । सिय हिअँ हरषु जनकु सकुचाने ॥
गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं ॥
सयनहिं रघुपति लषनु नेवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ॥

१—प्र० : जिमि । [द्वि० : इव] । तृ०, च० : प्र० [(८): इव] ।
२—प्र० : को । द्वि० : प्र० [(८) (९) (१अ) : का] । [तृ० : का] । च० : प्र० [(८): का] ।
३—प्र० : जब । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(३ब) : जे] ।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम • भंजहु भव चापा । मेटहु तात जनक परितापा ॥
सुनि गुर बचन चरन सिर नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ[1] । ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥
दो०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥२५४॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयेसु मागा ॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी ॥
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सुर[2] सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं । तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं ॥
दो०—रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहै बिलखाइ ॥२५५॥
सखि सब कौतुकु देखनिहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ॥
कोउ न बुझाइ कहै नृप पाहीं । ये बालक असि[3] हठ भलि नाहीं ॥
रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुँवर कर देहीं । बाल मराल कि मंदर लेहीं ॥
भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि गति कछु जाति[4] न जानी ॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिअ न रानी ॥

१—प्र० सुभाए। द्वि० प्र०। [तृ० सुभाए] च० प्र०। [(६) सुभाए]।
२—प्र० सुर। द्वि० तृ०, च० प्र० [(६अ) सब]।
३—प्र० असि। [द्वि० अस]। तृ० प्र०। [च० अस]।
४—प्र० कछु जाति। [द्वि० कछु जाइ]। तृ०, च० प्र० [(६अ) कहि जाति]।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा । सोखेउ सुजसु सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा । उदयँ तासु तिभुवन तम भागा ॥
दो०—मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब ।
महा मत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब ॥२५६॥
काम कुसुम धनु सायक लीन्हे । सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी । भंजब धनुषु राम सुनु रानी ॥
सखी बचन सुनि भै परतीती । मिटा बिषादु बढ़ी अति[१] प्रीती ॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही । सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही ॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चाप गरुआई ॥
गननायक बरदायक देवा । आजु लगें कीन्हिउँ[२] तुअ[३] सेवा ॥
बार बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥
दो०—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ॥२५७॥
नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । सिरिस सुमन कन बेधिअ हीरा ॥
सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभुचाप गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
अति परिताप सीय मन माहीं । लव निमेष जुग सय[४] सम जाहीं ॥

१—प्र० : बढ़ी अति । [द्वि० : (३) (४) (५) भई सत्य, (५अ) भई अति] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : कीन्हेउँ । द्वि० : कीन्हिउँ [(५) : कीन्हेउँ] । तृ०, च० : द्वि० [(८) : कीन्ह तव] ।
३—प्र० : तुअ । द्वि० : प्र० [(४) : तव] । तृ०, च० : प्र० [: (८) तव] ।
४—प्र० : सय । [द्वि०, तृ० : सत] । च० : प्र० [(८) : सम]

दो०—प्रभुहि चितै पुनि चितव[१] महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल ॥२५८॥
गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचन जलु रह लोचन कोना । जैसें परम कृपन कर सोना ॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरजु प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मोर पनु साचा । रघुपतिं पद सरोज चितु[२] राचा ॥
तौ भगवानु सकल उर बासी । करिहिं मोहिं रघुबर कै दासी ॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ॥
प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना । कृपानिधान रामु सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें । चितव गरुरु[३] लघु ब्यालहि जैसें ॥
दो०—लषन लखेउ रघुबंस मनि ताकेउ हर कोदंडु ।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मंडु ॥२५९॥
दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयेसु मोरा ॥
चाप समीप रामु जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई । सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई ॥
राम बाहु बल सिंधु अपारू । चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू ॥
दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥२६०॥

१—प्र० : चितइ पुनि चितव । [द्वि० : चितइ पुनि चितव] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : चितु । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : मन] । [तृ० : मन] । च० : प्र० [(८) : मन] ।
३—प्र० : गरुरु । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : गरुड़ । [तृ० गरुड़] । च० : प्र० [(८) : गरुड़] ।

देखी बिपुल बिकल[1] बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तड़ागा॥
का[2] बरषा सब[3] कृषी सुखाने। समय चुकें पुनि का पछिताने॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु[4] मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा॥

छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

सो०—संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहु बलु।
बूड़ सो[4] सकल समाजु चढ़ा[5] जो प्रथमहि मोह बस॥२६१॥

प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाह सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी॥

१—प्र० : बिपुल बिकल। [द्वि० : बिकल अतिहि]। तृ०, च० : प्र०।
२—[प्र० : को]। द्वि०, तृ०, च० : का।
३—प्र० : सब। द्वि० : प्र० [(५): जब]। [तृ० : जब]। च० : प्र० [(८): जौं]।
४—प्र० : बूड़ सो। [द्वि० : (३) (४) बूड़ा, (५) बूड़े, (५अ) बूड़ेउ]। [तृ० : बूड़े]। च० : [(८): बूड़े]।
५—प्र० : चढ़ा। द्वि० : प्र० [(५) चढ़े, (५अ) चढ़ेउ]। [तृ० : चढ़े]। च० : प्र० [(६)(८): चढ़े]।

मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी । भंजेउ राम संभुधनु भारी ॥
दो०—बंदी मागध सूत गन बिरिद बदहिं मतिधीर ।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर ॥२६२॥
झाँझि मृदंग संख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई[१] ॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए । जहँ तहँ जुवतिन्ह मंगल गाए ॥
सखिन्ह सहित हरषीं सब[२] रानीं । सूखत धानु परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई । पैरत थकें थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटें । जैसें दिवस दीप छबि छूटें ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जनु स्वाती ॥
रामहिं लखनु बिलोकत कैसें । ससिहि चकोर किसोरकु जैसें ॥
सतानंद तब आयेसु दीन्हा[३] । सीता गमनु राम पहिं कीन्हा[३] ॥
दो०—संग सखीं सुदरि चतुर गावहिं मंगलचार ।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार ॥२६३॥
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी । छबि गन मध्य महाछबि जैसी ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई । बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई ॥
तन सकोचु मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेमु लखि परै न काहू ॥
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ॥
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेलीं । सिय जयमाल राम उर मेली ॥
सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुद गन ॥२६४॥

१—प्र०: दुंदुभी सुहाई । द्वि० : प्र० । [तृ० : दुंदभी बजाई] । च० : प्र० ।
२—प्र० : अति । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सब ।
३—प्र० : क्रमशः दीन्ही, कीन्ही । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : दीन्हा, कीन्हा] । तृ० : प्र० । च०: दीन्हा, कीन्हा ।

पुर अरु व्योम बाजने बाजे । खल भए मलिन साधु सब राजे[1] ॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं । बार बार कुसुमांजलि[2] छूटीं ॥
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं । बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं ॥
महि पातालु नाकु[3] जसु ब्यापा । राम बरी सिय भंजेउ चापा ॥
करहिं आरती पुर नर नारी । देहिं निछावरि बित्त बिसारी ॥
सोहति[4] सीय राम के जोरी । छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी ॥
सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता । करति न चरन परस अति भीता ॥
दो०-गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥२६५॥
तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माषे ॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरें धनुषु चाँड़ नहिं सरई । जीवत हमहिं कुँअरि को बरई ॥
जौं बिदेहु कछु करै सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥
साधु भूप बोले सुनि बानी । राज समाजहि लाज लजानी ॥
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई । असि बुधि तौ बिधि मुहँ मसि लाई ॥
दो०-देखहु रामहि नयन भरि तजि इरषा मदु कोहु[5] ।
लषन रोषु पावकु प्रबलु जानि सलभ जनि होहु ॥२६६॥
बैनतेय बलि जिमि चह कागू । जिमि ससु[6] चहहि नागअरि भागू ॥

१—प्र० : राजे । द्वि० : प्र० । [तृ० : गाजे] । च० : प्र० [(न) : गाजे] ।
२—प्र० : कुसुमावलि । [द्वि० : कुसुमावालि] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(न): कुसुमावलि]
३—प्र० : नाक । [द्वि०: व्योम] । तृ०, : प्र० च० : प्र० [(न): नभ महँ] ।
४—प्र० : सोहति । द्वि० : प्र० । [तृ० . मोहन] । च० : प्र० ।
५—प्र० : कोहु । [द्वि०, तृ० : मोहु] । च० : प्र० : [(न) मोहु] ।
६—प्र० : ससु [(न), सिसु] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।

जिमि चह कुसल अकारन कोही । सब संपदा चहै सिव द्रोही ॥
लोभलोलुप कल[1] कीरति चहई । अकलंकता कि कामी लहई ॥
हरि पद बिमुख परां गति[2] चाहा । तस तुम्हार लालचु नरनाहा ॥
कोलाहलु सुनि सीय सकानी । सखीं लेवाइ गईं जहँ रानी ॥
राम सुभाय चले गुर पाहीं । सिय सनेहु बरनत मन माहीं ॥
रानिन्ह सहित सोच बस सीया । अब धौं बिधिहि काह करनीया ॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं । लखनु राम डर बोलि न सकहीं ॥
दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप ।
मनहुँ मत्त गज गन निरखि सिंघ किसोरहि[3] चोप ॥२६७॥
खरभर देखि बिकल पुर नारीं[4] । सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं ॥
तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥
देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥
सीस जटा ससि बदनु सुहावा । रिस बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस[5] राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल[6] मृगछाला ॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे । धनु सर कर कुठार कल काँधे ॥
दो०—सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आएउ जहँ सब भूप ॥२६८॥

१—प्र० : लोभलोलुप कल । [द्वि०, तृ० : लोभी लोलुप] । च० : प्र० [(८). लोभी लोलुप] ।
२—प्र०: परा गति । [द्वि० : सुगति जिमि] । [तृ० : परम गति] । [च० : (६अ) परम गति, (८) परम पद] ।
३—प्र०: किसोरहि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ): किसोरहु] ।
४—प्र० : पुर नारीं । [द्वि०, तृ० : नर नारीं] । च० : प्र० [(८) : नर नारी ।
५—प्र० : रिस । [द्वि० : रिमि] । तृ० : प्र० । [च० : रिसि] ।
६—प्र० : जनेउ माल । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): जनेऊ भलि] । तृ०, च० : प्र० ।

देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ॥
जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी । सो जानै जनु आइ[1] खुटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ॥
आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं । निज समाज लै गईं सयानीं ॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥
रामु लषनु दसरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहिं चितै रहे थकि लोचन । रूपु अपार मार मद मोचन ॥
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर ।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥
समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि[2] अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै[3] तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । उलटौं महि जहँ लगि[4] तव राजू ॥
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछिताति सीय महतारी । बिधि अब सवँरी[5] बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कलप सम बीता ॥
दो०—समय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु ।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्री रघुबीरु ॥२७०॥
नाथ संभु धनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥

१—प्र० : आइ । द्वि० : प्र० [( )' आयु] । च० : प्र० ।
२—प्र० : फिरि । द्वि० : प्र० । [तृ०: तब] । च० : प्र० ।
३—प्र० : कै । द्वि० : प्र० [(२अ): के है] । [तृ० : को] । च० : प्र० [(२): कर] ।
४—[प्र० : लगि] । द्वि०, तृ०, च० : लगि ।
५—प्र०: अब सँवरी । द्वि०: प्र० [(३) (४) (५): सँवरी सब] । तृ०, च०: प्र

आयेसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखनु मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥
बहु धनुही तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि[1] रिस कीन्हि गोसाईं॥
येहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥
दो०—रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥२७१॥

लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नए[2] के भोरे॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालकु बालि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि[3] मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही॥
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा॥
दो० मातु पितहि जनि सोच बस करसि[4] महीप[5] किसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर॥२७२॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥

१—प्र० तुम्ह। द्वि० प्र०। तृ० असि। च० तृ०।
२—प्र० नए। द्वि० प्र० [(१अ) नयन]। तृ०, च० प्र० [(६अ) नयन]।
३—प्र० जानहि। द्वि० प्र० [(५) जानेहि]। तृ०, च० प्र० [(८ जानेसि]।
४—प्र० करसि। [द्वि० करहि]। तृ०, च० प्र०।
५—प्र० महीस। द्वि० महीप। तृ०, च० द्वि० [(८ न भूप]।

इहाँ कुम्हड़बतिआ कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पाँ परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महा मुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंस मनि बोले गिरा गँभीर॥२७३॥

कौसिक सुनहु मंद येहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुलघालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुसु अबुधु असंकू॥
काल कवलु होइहि छन माहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लषन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा॥
अपने मुख तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोषु तौ पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

दो०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु[१]॥२७४॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब येहु मरनिहार भा साचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥

कर[1] कुठार मैं अकरुन[2] कोही। आगें अपराधी गुर द्रोही ॥
उतर देत छाड़ौं बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें ॥
दो०—गाधिसूनु[3] कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ[4] सूझ।
अयमय खाँड[5] न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥
कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा ॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें ॥
सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा। दिन चलि गएउ ब्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृप द्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लखनु नेवारे ॥
लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
दो०—बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु ॥२७६॥
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करै अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने ॥

१—प्र० : कर। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ : टर]। तृ० : अकरुन। च० : तृ० [(८)
२—[प्र० : अकारन]। [द्वि० : अकरन]। च० : प्र० [(= . गाधि
अकरन]।
३—प्र० : गाधिसुनु। द्वि० : प्र०। [तृ० गाधिसुवन]। च० द्वि०।
सुवन]।
४—प्र० : हरिअरेइ। द्वि० हरियरइ। तृ०, च० : प्र० [( ). रा ट]।
५—प्र० : खाँड़। द्वि० : प्र० [(४)· रा ट]।

हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूट मुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीचु मीचु सम देख न मोही ॥
दो०–लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहि चरहिं[१] बिस्व प्रतिकूल ॥२७७॥
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पाय पिराने ॥
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥
बोलत लखनहि जनकु डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
थर थर काँपहिं पुर नर नारी । छोट कुमारु खोट अति[२] भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी । रिस तनु जरै होइ बल हानी ॥
बोले रामहि देइ निहोरा । बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुंदर कैसें । बिष रस भरा कनक घटु जैसें ॥
दो०–सुनि लछिमनु बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुर समीप गवने सकुचि[३] परिहरि बानी बाम ॥२७८॥
अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले रामु जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक बचनु करिअ नहिं काना ॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहि न बिदुष बिदूषहिं काऊ ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बधु बंधु[४] गोसाईं । मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहिं बिधि रिस जाई । मुनिनायक सोइ करौं[५] उपाई ॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसें । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें ॥

१–प्र० : चरहिं । [द्वि० : होहिं] । [तृ० : परहिं] । च० : प्र० [(८) : जेन्है] ।
२–प्र० : अति । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ) : बड] ।
३–प्र० : सकुचि] । [द्वि० : बहुरि] । तृ०, च० : प्र० ।
४–[प्र० : बधे] । द्वि० : बंधु । तृ०, च० : द्वि० [(६अ) : बधे] ।
५–प्र० : करौं । [द्वि० : करिअ] । च० : प्र० [(८) : करहु] ।

एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा । तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा ॥
दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर ।
परसु अछत देखौं जिअत बैरी भूप किसोर ॥२७९॥
बहै न हाथु दहै रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥
भएउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ॥
आजु दया[1] दुखु दुसह सहावा । सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा ॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचन झरत जनु फूला ॥
जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता । क्रोध भएँ तनु राखु बिधाता ॥
देखु जनकु हठि बालकु एहू । कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ॥
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा । देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं । मूँदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥
दो०—परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ॥२८०॥
बंधु कहै कटु संमत तोरे । तू छल बिनय करसि कर जोरे ॥
करु परितोषु मोर संग्रामा । नाहिं त छाड़ु कहाउब रामा ॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही । बंधु सहित न त मारौं तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठारु उठाए । मन मुसुकाहिं रामु सिर नाए ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू । कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि सका रुचरे[2] काहू । बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगे यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥
दो०—प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु ।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहूँ[3] नहिं दोसु ॥२८१॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० दया [(६) दैव]।
२—प्र० सका रुचरे। द्वि०, तृ० च० प्र० [(५अ) सब बंदै]।
३—प्र० बालकहूँ। द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६ब) : बालक]

देखि कुठारु बान धनु धारी। भै लरकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहिं तुम्हहिं सरबरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥
दो०—बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम॥२८२॥
निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावौं तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भये पसु आई॥
मैं येहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जग[1] कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र कें भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुवतहिं टूट पिनाकु पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥
दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भयबस नावहिं माथ॥२८३॥
देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना[2]। कुल कलंकु तेहिं पाँवर आना[3]॥

१—प्र० : जग। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६क) : जय]।
२—प्र०: डेराना। द्वि० : सकाना। तृ०, च० : द्वि०।
३—प्र० : आना। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० : जाना]।

कहौं सुभाउ न कुलहि प्रससी। कालहु डरहिं न रन रघुबसी॥
बिप्र बस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर सदेहू॥
देत चापु आपुहि चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
दो०—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात[1] ॥२८४॥
जय रघुबस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अगा। जय सरीर छबि कोटि अनगा॥
करौ काह[2] मुख एक प्रससा। जय महेस मन मानस हसा॥
अनुचित बहुत[3] कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गँवहिं पराने॥
दो०—देवन्ह दीन्ही दुदुभी प्रभु पर बरषहि फूल।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी[4] मोहमय सूल ॥२८५॥
अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिल बयनीं॥
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ[5] सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥

१—प्र० अमात। [द्वि० समात]। तृ०, च० प्र० [(-) समात]।
२—प्र० काह। [द्वि० कहा]। तृ०, च० प्र०।
३—प्र० बहुत। द्वि०, तृ०, च० प्र० [(छअ) बचन]।
४—प्र० मिटी। द्वि० प्र०। [तृ० मिटा]। च० प्र० [(८) मिटा]।
५—प्र० भइ [(२) भय]। [द्वि० भय]। तृ०, च० प्र०।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटत हीं धनु भएउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहूँ॥
दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥२८६॥
दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहिं काला॥
बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सवाँरहु चारिहु पासा॥
हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥
पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥
दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥२८७॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब[१] परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परै सपरन सोहाई॥
तेहि कै रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किए भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुरप्रतिमा खंभन्ह गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिए सब ठाढ़ीं॥
चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनि मय सहज सुहाईं॥

१—प्र० : सपरब। द्वि० : प्र० [(३) (४) : सपरन]। [तृ० : सपरन]। च० : प्र० [(८) : सपत्र]।

भूप भरतु पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
भरत सकल साहनी बोलाए। आयेसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रचि रुचि१ जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥
सुभग सरल सुठि चचल करनीं। अय इव जरत धरत पग धरनीं॥
नाना जाति न जाहि बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उडाने॥
तिन्ह सब छेल भए असवारा। भरत सरिस बयर२ राजकुमारा॥
सब सुदर सबरे३ भूषन धारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥
दो०—छरे छबीले छेल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असि कला प्रबीन॥२९८॥
बाधे बिरिद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पवन निसाना॥
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानुजान सोभा अपहरहीं॥
सँवकरन४ अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुदर सकल अलकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे॥
जे जल चलहिं थलहि की नाई। टाप न बूड बेग अधिकाई॥
अस्त्र सस्त्र सबु साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥
दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुदर सबहि जो जेहि कारज जात॥२९९॥
कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। कहि न जाहिं जेहिं भाँति सँवारी॥

१—प्र० रचि रचि। द्वि० प्र० [(४) रचि रचि]। [तृ० रचि रचि। च० प्र० [( ) रचि रचि]।
२—प्र० बय। द्वि० प्र० [(४) सब]। [तृ० सब]। च० प्र० [(८) सब]।
३—प्र० बहु। द्वि० सब। तृ०, च० द्वि०।
४—प्र० सावकरन। द्वि० प्र० [(५) (५अ) स्यामकरन]। [तृ० स्यामकरन]।
च० प्र० [(८) स्यामकरन]।

चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी ॥
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना ॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र बर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा ॥
मागध सूत बंदि गुननायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक ॥
बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती ॥
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा ॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई ॥
दो०—सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लषनु दोउ बीर ॥२००॥
गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस[1] चहुँ ओरा ॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना ॥
महा भीर भूपति कें द्वारें। रज होइ जाइ पषान पबारें ॥
चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिएँ आरती मंगल थारीं ॥
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना ॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी ॥
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने ॥
राज समाजु एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा ॥
दो०—तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ॥२०१॥
सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुरगुर संग पुरंदर जैसें ॥
करि कुलरीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ॥
सुमिरि रामु गुर आयेसु पाई। चले महीपति संख बजाई ॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता ॥
भएउ कुलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे ॥

१—प्र० : हिंसहिं। द्वि० : हिंस। तृ०, च० : द्वि०।

सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥
घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं[1]। सरीं करहिं पाइक[2] फहराहीं[1]॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥
दो०—तुरग नचावहिं कुँअर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥३०२॥
बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभ दाता॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृग माला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आएउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥
दो०—मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥३०३॥
मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥
आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच बर बासु बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥
असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥

१—प्र० जाहीं, फहराहीं। द्वि० प्र०। [तृ० जाईं, फहराईं]। च० प्र० [(८) जाईं, फहराइ]।
२—प्र० पाइक। द्वि० प्र० [(४) (५) (५अ) पायक]। [तृ० पायक]। च० प्र० [(८) पायक]।

निज नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥
दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥३०४॥
कनक कलस कल[1] कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने॥
फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह[2] हने निसाना॥
दो०—हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥३०५॥
बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥
बस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥
प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई॥
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥
जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥
दो०—सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥३०६॥

१—प्र० : कर। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ) : भरि]।
२—प्र० : बराती। द्वि०, प्र० [(५अ) : बरातिन्ह]। तृ०, बरातिन्ह। च० : तृ०।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥
हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥
दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे[१] हरषि सुख सिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥३०७॥
मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूँछी कुसलाई॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हिअँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥
पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
बिप्र बृंद बंदे[२] दुहुँ भाई। मनभावती असीसैं पाईं॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखनु देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥
दो०—पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपालु बिनीत॥३०८॥
रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनु धारी॥
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥

---

१ प्र० उठे। द्वि० प्र०। [तृ० उठउ]। च० प्र० [(६) (६अ) उठउ]
२—[प्र० बदेहु]। द्वि०, तृ० बंदे। च० द्वि० [(६अ) बंदेहु]।

सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना । नाक नटीं नाचहिं करि गाना ॥
सतानंदु अरु बिप्र सचिव गन । मागध सूत बिदुष बंदीजन ॥
सहित भरत राउ सनमाना । आयेसु माँगि फिरे अगवाना ॥
प्रथम बरात लगन तें आई । ता तें पुर प्रमोदु अधिकाई ॥
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं । बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं ॥

दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज ।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

जनक सुकृत मूरति बैदेही । दसरथ सुकृत रामु धरें देही ॥
इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे । काहुँ न इन समान फल लाधे ॥
इन्ह सम कोउ न भएउ जग माहीं । है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी । भए जग जनमि जनकपुर बासी ॥
जिन्ह जानकी राम छबि देखी । को सुकृती हम सरिस बिसेषी ॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू । लेब भली बिधि लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर कोकिल बयनीं । येहि बिआह बड़ लाभु सुनयनी ॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥

दो०—बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय ।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहि निहारी । होइहहिं सब पुरलोग सुखारी ॥
सखि जस राम लखन कर जोटा । तेसइ भूप संग दुइ ढोटा ॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए । ते सब कहहिं देखि जे आए ॥
कहा एक मैं आजु निहारे । जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे ॥
भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥
लखनु सत्रुसूदनु एक रूपा । नख सिख तें सब अंग अनूपा ॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं । उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥

छंद—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कवि कोबिद कहैं ।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्हसे एइ अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अचल बिधिहि बचन सुनावहीं ।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

सो०—कहहिं परसपर नारि बारि बिलोचन पुलक तन ।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

येहिं बिधि सकल मनोरथ करहीं । आनँद उमगि उमगि उर भरहीं ॥
जे नृप सीय स्वयबर आए । देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए ॥
कहत राम जसु बिसद बिसाला । निज निज गेह[१] गए महिपाला ॥
गएँ बीति कछु दिन येहि भाती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥
मंगल मूल लगन दिनु आवा । हिमरितु अगहनु मासु सुहावा ॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू । लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ॥
पठै दीन्हि नारद सन सोई । गनी जनक के गनकन्ह जोई ॥
सुनी सकल लोगन येह बाता । कहहिं जोतिषी अपर[२] बिधाता ॥

दो०—धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल ।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ॥३१२॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए । मंगल कलस साजि सब ल्याए ॥
संख निसान पनव बहु बाजे । मंगल कलस सगुन सुभ साजे ॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता । करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता ॥
लेन चले सादर येहि भाँती । गए जहा जनवास बराती ॥
कोसलपति कर देखि समाजू । अति लघु लाग तिन्हहिं सुरराजू ॥
भएउ समउ अब धारिअ पाऊ । येह सुनि परा निसानहि घाऊ ॥

१—प्र० गेह । द्वि० प्र० । [तृ० भवन] । च० प्र० [(३) (५अ) भवन] ।
२—प्र० अपर । द्वि० प्र० [(५अ) भग] । [तृ० विप्र] च० प्र० [(५) (६अ) आदि] ।

गुरहि पूँछि करि कुलबिधि राजा । चले संग मुनि साधु समाजा ॥
दो०—भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि ।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि ॥२१३॥
सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना । बरषहिं सुमन बजाइ निसाना ॥
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा । चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ॥
प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू । चले बिलोकन राम बिआहू ॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे । निज निज लोक सबहि लघु लागे ॥
चितवहिं चकित बिचित्र बिताना । रचना सकल अलौकिक नाना ॥
नगर नारि नर रूप निधाना । सुघर सधरम सुसील सुजाना ॥
तिन्हैं देखि सब सुर सुरनारीं । भए नखत जनु बिधु उजिआरीं ॥
बिधिहि भएउ आचरजु बिसेषी । निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥
दो०—सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु ।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु ॥२१४॥
जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं । सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥
करतल होहिं पदारथ चारी । तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥
एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा । पुनि आगें बर बसहु चलावा ॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता । महामोद मन पुलकित गाता ॥
साधु समाजु संग महिदेवा । जनु तनु धरे करहिं सुर[१] सेवा ॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपबरग सकल तनुधारी ॥
मरकत कनक बरन बर[२] जोरी । देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी ॥
पुनि रामहि बिलोकि हिअँ हरषे । नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे ॥
दो०—राम रूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि ।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि ॥२१५॥
केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा ॥

१—प्र० : सुर । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुख] । च० : प्र० (६) (६अ) : सुर] ।
२—[प्र० : बर जोरी] । द्वि० : बरन तन जोरी । तृ० : बरन बर जोरी । च० : तृ० ।

ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगलमय[1] सब भाँति सुहाए॥
सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई॥
बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥
राजकुअँर बर बाजि देखावहिं। बंसप्रसंसक बिरिद सुनावहिं॥
जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा॥

छं०—जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव[2] जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

दो०—प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत चालि[3] छबि पाव।
भूषित उडगन तडित घनु जनु बर बरहि नचाव॥३१६॥

जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठै नयन जानि पछिताने॥
सुरसेनप उर बहुत उछाहू। बिधि तें डेवढ़ सुलोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेसु सुजाना। गौतम स्रापु परम हित माना॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देव गन रामहि देखी। नृप समाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥

छं०—अति हरषु राज समाजु दुहु दिसि दुंदुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥

१—प्र० : मंगल मय सब। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ) मंगल सब सब]।
२—प्र० : जराव। द्वि० प्र०। [तृ० : जराउ] च० : प्र०।
३—प्र० : चालि। द्वि० : प्र० [(५) (५अ) : बाजि]। [तृ० : बाजि]। च० : प्र० [( ) : बाजि]

एहिं भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं ।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं ॥
दो०—साजि आरती अनेक विधि मंगल सकल सँवारि ।
चलीं मुदित परिछनि करन गज गामिनि बर नारि ॥३१७॥
बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि । सब निज तन छबि रति मदु मोचनि ॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा । सकल बिभूषन सजें सरीरा ॥
सकल सुमंगल अंग बनाएँ । करहिं गान कलकंठि लजाएँ ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं । चाल बिलोकि कामगज लाजहिं ॥
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा । नभ अरु नगर सुमंगल चारा ॥
सची सारदा रमा भवानी । जे सुरतिय सुचि सहज सयानी ॥
कपट नारि बर बेष बनाई । मिलीं सकल रनवासहिं जाई ॥
करहिं गान कल मंगल बानी । हरष बिबस सब काहुँ न जानी ॥
छं०—को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछनि चलीं ।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली ॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हिअँ हरषित भईं ।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं ॥
दो०—जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु ।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु ॥३१८॥
नयन नीरु हटि मंगल जानी । परिछनि करहिं मुदित मन रानी ॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू[१] । कीन्ह भली बिधि कुल व्यवहारू[१] ॥
पंच सबद धुनि[२] मंगल गाना । पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना ॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा । राम गवनु मंडप तब कीन्हा ॥
दसरथु सहित समाज बिराजे । बिभव बिलोकि लोकपति लाजे ॥

१—प्र० : क्रमशः आचारू, व्यवहारू । द्वि० : प्र० । [तृ० : व्यवहारू, आचारू] । [च० : (६) (६अ) व्यवहारू, ब्यवहारू, (८) ब्यौहारू, बिस्तारू] ।
२—प्र० : धुनि । द्वि० : प्र० [(-) : सुनि] । तृ०, च० : प्र० ।

समयँ समयँ सुर बरसहिं फूला । सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला ॥
नभ अरु नगर कोलाहल होई । आपनि पर कछु सुनइ न कोई ॥
एहि बिधि रामु मंडपहिं आए । अरघु देइ आसन बैठाए ॥
छं०—बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं ।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुर बर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं ।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं ॥
दो०—नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ ॥३१९॥
मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं । करि बैदिक लौकिक सब रीतीं ॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे । उपमा खोजि खोजि कबि लाजे ॥
लही न कतहुँ हारि हियँ मानी । इन्ह सम एइ उपमा उर आनी ॥
सामध देखि देव अनुरागे । सुमन बरषि जसु गावन लागे ॥
जगु बिरंचि उपजावा जब तें । देखे सुने ब्याह बहु तब तें ॥
सकल भाँति सम साजु समाजू । सम समधी देखे हम आजू ॥
देवगिरा सुनि सुंदरि साँची । प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची ॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए । सादर जनकु मंडपहिं ल्याए ॥
छं०—मंडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे ।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे ॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिष लही ।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥
दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस ।
दिए दिव्य आसन सबहिं सब सन लही असीस ॥३२०॥
बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा । जानि ईस सम भाउ न दूजा ॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई । कहि निज भाग्य बिभव बहुताई ॥
पूजे भूपति सकल बराती । समधी सम सादर सब भाँती ॥

आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥
कपट बिप्र बर बेषु बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥
पूजे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने॥
छं०—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥
दो०—रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥३२१॥
समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयेसु पाई॥
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्रबधू कुल बृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं॥
नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारीं। बिनु पहिचानि[1] प्रान[2] तें प्यारीं॥
बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहि चलीं लेवाई॥
छं०—चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसत्त[3] साजे सुंदरी सब मत्त कुंजरगामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं कामकोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

१—प्र०: पहिचानि। द्वि०: प्र० [(२) (४): पहिचान]। [तृ०: पहिचान]।
२—प्र०: प्रान। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(३) (६अ): प्रानहु]।
३—प्र०: सत्त। [द्वि०: सप्त]। [तृ०: मत्त] च०: प्र० [(८): सप्त]।

दो०—सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥
सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता ॥
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरन कामा ॥
हरषे दसरथु सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥
सुर प्रनामु करि बरसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगलमूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥
येहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू ॥
छं०—आचारु करि गुर गौर गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं ॥
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिए[१] परिचारक रहैं ॥
कुलरीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर किए।
येहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दिए ॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै ॥
दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं ॥३२३॥
जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥

१—प्र० : लिए। द्वि०, तृ०, च० [(६) (६अ) : लिएहिं]।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे ॥
निज कर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगें आनी ॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी ॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥

छं०-लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं ॥
जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं ॥
बर कुँअरि करतल जोरि साखोच्चारु दोउ कुल गुरु करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं ॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृप भूषन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति साँवरी।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भाँवरी ॥

दो०—जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगलगान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान ॥३२४॥

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
जाइ न बरनि मनोहरि जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी ॥
राम सीय सुंदर परिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ॥
मनहुँ मदनु रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा ॥

दो०—सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय ।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥
सिय सुंदरता बरनि न जाई । लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता । रूप रासि सब भाँति पुनीता ॥
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा । देखि राम भए पूरन कामा ॥
हरषे दसरथु सुतन्ह समेता । कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥
सुर प्रनामु करि बरसहिं फूला । मुनि असीस धुनि मंगलमूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी । प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥
येहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू । दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू ॥
छं०—आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं ॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं ।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिए[१] परिचारक रहैं ॥
कुलरीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर किए ।
येहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दिए ॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै ।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै ॥
दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं ॥३२३॥
जनक पाटमहिषी जग जानी । सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बुलाई । सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥

---

१ – प्र० : लिए । द्वि०, तृ०, च० [(६) (६अ) : लिएँ] ।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥
निज कर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥

छं०-लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥
जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥
बर कुँअरि करतल जोरि साखोच्चारु दोउ कुल गुरु करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृप भूषन कियो॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो- बिदेहु मूरति साँवरी।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भांवरी॥

दो०—जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगलगान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥३२४॥

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरिं देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहरि जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥
राम सीय सुंदर परिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदनु रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाहु अनूपा॥

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥
प्रमुदित मुनिन्ह भावरीं फेरीं। नेग सहित सब रीति निबेरीं॥
रामु सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥

छं०—बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एकु येहु मंगलु महा॥
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयेसु ब्याह साजु सँवारि के।
माडवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँअरि लईं हँकारि के॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुदरि सिरोमनि जानि के।
सो जनक[१] दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि के॥
जेहि नामु श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूप सील उजागरी॥
अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिअ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं॥

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥३२५॥

१—प्र० जनक। द्वि०, तृ०, च०, पं० [( ). तात]।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहिं करनी॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥
कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरग दास अरु दासीं। धेनु अलंकृत कामदुहा सीं॥
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुखु माने॥
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥

छं०—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किए।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ॥
कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहिं राज साज समेत सेवकु जानिबी बिनु गथ लए॥
ये दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई[१]।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो दई[२]॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिए॥
बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयेसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

१—प्र० करुनामई। द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६)(६अ) करुनानई]।
२—प्र० दई। द्वि० प्र०। [तृ० कई]। च० प्र० [(५)(५अ) कई]

येहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥

दो०—देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥३२९॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुनगन गावन लागे॥
देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुर पाहीं। महा प्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥
करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरनकाजा॥
अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥

दो०—बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥३३०॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मँगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥
पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुल नंदन॥
चले पढ़त गावत गुनगाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहिं बिधि राम बिबाह उछाहू। सकै न बरनि सहसमुख जाहू॥

दो०—बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
येहु सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥३३१॥

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब राति सराह बिभूती[1]॥

१—प्र० : राति सराह बिभूती। [द्वि० : राति सराहत बीती]। तृ० : प्र०। [च० : (६) (६अ) : भाँति सराह बिभूती, (८) राति सराहत बीती]।

दिन उठि बिदा अवधपति माँगा । राखहिं जनकु सहित अनुरागा ॥
नित नूतन आदरु अधिकाई । दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई ॥
नित नव नगर अनंदु उछाहू । दसरथ गवनु सोहाइ न काहू ॥
बहुत दिवस बीते एहिं भाँती । जनु सनेह रजु बँधे बराती ॥
कौसिक सतानंद तब जाई । कहा बिदेह नृपहि समुझाई ॥
अब दसरथ कहुँ आयेसु देहू । जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू ॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए । कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ॥
दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ ।
मए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ ॥३३२॥
पुरबासी सुनि चलिहि बराता । पूँछत[1] बिकल परसपर बाता ॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने । मनहु साँझ सरसिज सकुचाने ॥
जहँ जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ॥
बिबिधि भाँति मेवा पकवाना । भोजन साजु न जाइ बखाना ॥
भरि भरि बसह अपार कहारा । पठईं[2] जनक अनेक सुसारा[2] ॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा । सकल सँवारे नख अरु सीसा ॥
मत्त सहस दस सिंधुर साजे । जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे ॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना । महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना ॥
दो०—दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेह बहोरि ।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि ॥३३३॥
सबु समाजु येहि भाँति बनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलिहि बरात सुनत सब रानी । बिकल मीनगन जनु लघु पानी ॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं । देइ असीस सिखावनु देहीं ॥
होएहु सतत पिअहि पिआरी । चिर अहिवातु असीस हमारी ॥

१—प्र० : बूझत । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : पूछत ।
२—प्र० : क्रमशः पठई सुसारा । [द्वि०, तृ० : पठए, सुआरा] । च० : प्र० [(च) : पठए, सुआरा] ।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयेसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखीं सयानीं। नारि धरमु सिखवहिं मृदु बानीं॥
सादर सकल कुँअरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रची कत नारीं॥

दो०—तेहिं अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥३३४॥

चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥
कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥
लेहु नयन भरि रूपु निहारी। प्रिय पाहुने भूपसुत चारी॥
को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥
मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहुँ तैसें॥
निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥
येहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुँअर सब राजनिकेता॥

दो०—रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा[1] रनिवासु।
करहिं निछावर आरती महा मुदित मन सासु॥३३५॥

देखि राम छबि अति अनुरागीं। प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेंवाए॥
बोले रामु सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥
राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ[2] पठाए॥
मातु मुदित मन आयेसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेम बस सासू॥

१—प्र० उठेउ। द्वि० प्र०। तृ० उठो। च० तृ०।
२—प्र० इहाँ। द्वि० प्र० [छ (४) (५) बिदा हमहिं]। तृ०, च० प्र०।

हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं ॥
छं०—करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सबकी अहै ॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीसु सील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी ॥
सो०—तुम परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन ॥३३६॥
अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी ॥
सुनि सनेह सानी बर बानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी ॥
राम बिदा मागा[१] कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥
मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी ॥
पहुँचावहि फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी ॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई ॥
दो०- प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुना बिरह निवासु ॥३३७॥
सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए ॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती ॥
बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की ॥
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसरु जाने ॥

१—प्र० : माँगा। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(५) : (६क) मागत, (-) : मागे]।

बारहिं बार सुता उर लाईं । सजि सुंदर पालकीं मँगाईं ॥
दो०—प्रेम बिबस परिवार सबु जानि सुलगन नरेस ।
कुँअरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥
बहु बिधि भूप सुता समुझाईं । नारि धरमु कुलरीति सिखाईं ॥
दासीं दास दिए बहुतेरे । सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥
सीय चलत ब्याकुल पुरबासी । होहिं सगुन सुभ मंगलरासी ॥
भूसुर सचिव समेत समाजा । संग चले पहुँचावन राजा ॥
समय बिलोकि बाजने बाजे । रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे । दान मान परिपूरन कीन्हे ॥
चरन सरोज धूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना । मंगल मूल सगुन भए नाना ॥
दो०—सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान ।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ॥३३९॥
नृप करि बिनय महाजन फेरे । सादर सकल माँगने टेरे ॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे । प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ॥
बार बार बिरिदावलि भाषी । फिरे सकल रामहि उर राखी ॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं । जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं ॥
पुनि कह भूपति बचन सुहाए । फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए ॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े । प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े ॥
तब बिदेहु बोले कर जोरी । बचन सनेह सुधा जनु बोरी ॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई । महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
दो०—कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति ।
मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति ॥३४०॥
मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा । आसिरबादु सबहि सन पावा ॥
सादर पुनि भेंटे जामाता । रूप सील गुननिधि सब भ्राता ॥
जोरि पंकरुह पानि सुहाए । बोले बचन प्रेम जनु जाए ॥

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
व्यापकु ब्रह्मु अलखु अविनासी । चिदानंदु निरगुनु गुनरासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई । जो तिहुँकाल एकरस अहई ॥

दो०—नयन विषय मो कहुँ भएउ सो समस्त सुख मूल ।
सवुइ सुलभ[1] जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल ॥३४१॥

सबहिं भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई । निज जनु जानि लीन्ह अपनाई ॥
होहिं सहस दस सारद सेषा । करहिं[2] कलप कोटिक भरि लेखा ॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा । कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा ॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे । तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे ॥
बार बार माँगौं कर जोरे । मनु परिहरै चरन जनि मोरें ॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे । पूरन कामु रामु परितोषे ॥
करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ॥
बिनती बहुत[3] भरत सन कीन्ही[4] । मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही[4] ॥

दो०—मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस ।
भए परसपर प्रेम बस फिरि फिरि नावहिं सीस ॥३४२॥

बार बार करि बिनय बड़ाई । रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई । चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥
सुनु मुनीस बर दरसन तोरें । अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें ॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं । करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥

१—प्र० : सवुइ सुलभ । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (६अ): सबइ लाभ] ।
२—प्र० : करहिं । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६अ): करिहिं] ।
३—[प्र० : बहु] । द्वि० : बहुत । तृ० : द्वि० । च० : द्वि० [(६) (६अ): बहुरि] ।
४—प्र० : क्रमशः कीन्ही, दीन्ही । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) (६अ) कीन्हा, दीन्हा; (८) कीन्हे, दीन्हे] ।

सो सुखु सुजसु सुलभु मोहि स्वामी । सब सिधि[1] तव दरसन अनुगामी ॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई । फिरे महीसु आसिषा पाई ॥
चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी । पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥
दो०—बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुखु देत ।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत ॥३४३॥
हने निसान पनव बर बाजे । भेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥
झाँझि भेरि[2] डिंडिमी सुहाई । सरस राग बाजहिं सहनाई ॥
पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥
गलीं सकल अरगजा सिंचाई । जहँ तहँ चौकें चारु पुराई ॥
बना बजारु न जाइ बखाना । तोरन केतु पताक बिताना ॥
सफल पूगफल कदलि रसाला । रोपे बकुल कदंब तमाला ॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी । मनिमय आलबाल कल करनी ॥
दो०—बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि ।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि ॥३४४॥
भूप भवनु तेहिं अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा ॥
मंगल सगुन मनोहरताई । रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥
जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथ गृह आए[3] ॥
देखन हेतु राम बैदेही । कहहु लालसा होइ न केही ॥
जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि । निज छबि निदरहिं मदनबिलासिनि ॥
सकल सुमंगल सजे आरती । गावहिं जनु बहु बेष भारती ॥

१—प्र० सिधि । द्वि० प्र० [(३) (४) बिधि] । [तृ० बिधि] । च० प्र० [(८) बिधि] ।
२—प्र० भेरि । [द्वि० (३) (४) (५) बीन, (५अ) बारि] । तृ० प्र० । च० [(६) बीर, (६अ) बीरि] ।
३—प्र० छाए । द्वि० आए । तृ०, च० द्वि० ।

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तन दसा बिसारी॥
दो०–दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥३४५॥
मोद[1] प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥
बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥
अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुर[2] मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन[3] जनु नीड़ बनाए॥
सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥
दो०–कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिए मातु।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गातु॥३४६॥
धूप धूम नभु मेचकु भएऊ। सावन घन घमंडु जनु ठएऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहु बलाक अवलि मनु करषहिं॥
मंजुल मनिमय बंदनवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्हि पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥
दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥
समय जानि गुर आयेसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुल मनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥

१—प्र० : मोद। द्वि० : प्र० [(४) (५): प्रेम]। [तृ० : प्रेम]। च० : प्र०।
२—[प्र० : मंगल]। [द्वि० : मंगल]। तृ० : मंजरि। च० : तृ०।
३—[प्र० : मद्दुच]। द्वि० : सकुन [(५अ): सकुच]। तृ० : द्वि०। च० : द्वि० [(६) (६अ) : सकुच]।

दो०—होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ ।
बिबुधबधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ ॥३४७॥
मागध सूत बंदि नट नागर । गावहिं जसु तिहुं लोक उजागर ॥
जयधुनि बिमल बेद बर बानी । दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी ॥
बिपुल बाजने बाजन लागे । नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि न जाहीं । महा मुदित मन सुख न समाहीं ॥
पुरबासिन्ह तब राउ जोहारे । देखत रामहि भए सुखारे ॥
करहिं निछावरि मनि गन चीरा । बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥
आरति करहि मुदित पुर नारी । हरषहिं निरखि कुँअर बर चारी ॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥
दो०—येहि बिधि सबही देत सुखु आए राज दुआर ।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार ॥३४८॥
करहिं आरती बारहिं बारा । प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा ॥
भूषन मनि पट नाना जाती । करहिं निछावरि अगनित भाँती ॥
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी । मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥
सखी सीय मुखु पुनि पुनि चाही । गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा । नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥
देखि मनोहर चारिउ जोरीं । सारद उपमा सकल ढँढोरीं ॥
देत न बनहिं निपट लघु लागीं । एकटक रहीं रूप अनुरागीं ॥
दो०—निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत ।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत ॥३४९॥
चारि सिंघासन सहज सुहाए । जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे । सादर पाय पुनीत पखारे ॥
धूप दीप नैबेद बेद बिधि । पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि ॥
बारहिं बार आरती करहीं । ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ॥

वस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं ॥
पावा परम तत्त्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥
जनम रंकु जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा ॥
मूक बदन जनु[1] सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई ॥
दो०—येहि सुख तें सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुल चंदु ॥
लोक रीति जननी करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं ॥२५०॥
देव पितर पूजे बिधि नीकीं। पूजीं सकल बासना जी कीं ॥
सबहि बंदि मागहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥
अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे ॥
आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि ॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए ॥
जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देइ सोइ सोई ॥
सेवक सकल बजनिआँ नाना। पूरन किए दान सनमाना ॥
दो०—देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ ॥२५१॥
जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥
पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भलीं बिधि भूप जेंवाए ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस सकल[2] मन तोषे[3] ॥
बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥

१—प्र० : जनु। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): जिमि]। [तृ० : जस] च० : प्र०।
२—प्र० : सकल। द्वि० : प्र० [तृ० : चले] च० : प्र० [(६) (६अ): चले]।
३—प्र० : मन तोषे। द्वि० : प्र० [(४) : परितोषे]। तृ०, च० : प्र०।

कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ॥
भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मनु जोगवत रह नृपु रनिवासू ॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥

दो०—बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु ॥३५२॥

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत संपदा राखि सब आगे ॥
नेगु माँगि मुनिनायकु लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा ॥
उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता ॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल[१] चारु भूषन पहिराईं ॥
बहुरि बुलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं ॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू ॥

दो०—चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेमु न हृदयँ समाइ ॥३५३॥

सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू ॥
जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन्ह कुँअर निहारे ॥
लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भएउ सुखु जेता ॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियँ हरषि दुलारीं ॥
देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब के उर अनंदु कियो बासू ॥
कहेउ भूप जिमि भएउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होइ सब काहू ॥
जनकराज गुन सीलु बडाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥
बहु बिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ॥

---

[१] [प्र० चीर]। [द्वि०, तृ० चीर]। च०: चैल [(च) चीर]।

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुरु ग्याति ।
भोजनु कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति ॥३५४॥

मंगल गान करहिं बर भामिनि । भै सुख मूल मनोहर जामिनि ॥
अँचै पान सब काहूँ पाए । स्रग सुगंध भूषित छवि छाए ॥
रामहिं देखि रजायेसु पाई । निज निज भवन चले सिर नाई ॥
प्रेमु प्रमोदु बिनोदु बड़ाई । समउ समाजु मनोहरताई ॥
कहि न सकहिं सत सारदसेसू । बेद बिरंचि महेसु गनेसू ॥
सो मै कहौं कवन बिधि बरनी । भूमिनागु सिर धरै कि धरनी ॥
नृप सब भाँति सबहि सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाईं रानी ॥
बधू लरिकिनीं पर घर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ॥

दो०—लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ ।
अस कहि गे बिश्राम गृह राम चरन चितु लाइ ॥३५५॥

भूप बचन सुनि सहज सुहाए । जटित[१] कनक मनि पलँग डसाये ॥
सुभग सुरभि पय फेनु समाना । कोमल कलित सुपेती नाना ॥
उपबरहन बर बरनि[२] न जाहीं । स्रग सुगंध मनि मंदिर माहीं ॥
रतन दीप सुठि चारु चँदोवा । कहत न बनै जान जेहिं जोवा ॥
सेज रुचिर रचि रामु उठाए । प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए ॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्हीं । निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्हीं ॥
देखि स्याम मृदु मंजुल गाता । कहहिं सप्रेम बचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी । केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥

दो०—घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु ।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी । ईस अनेक करवरें टारीं ॥

१—प्र० : जग्नि । द्वि० प्र० [(४) (५) (५अ) जडित] । [तृ०: जरित]। [च० : (६) (६अ) जरित, (८) जग्नित] ।
२—[प्र० : बरनि] । द्वि० तृ०, च० : बर बरनि ।

मख रखवारी करि दुहुँ भाई । गुर प्रसाद सब बिद्या पाई ॥
मुनि तिय तरी लगत पग धूरी । कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा । नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा ॥
बिस्व बिजय जसु जानकि पाई । आए भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे । केवल कौसिक कृपा सुधारे ॥
आजु सुफल जग जनमु हमारा । देखि तात बिधु बदनु तुम्हारा ॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें । ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें ॥

दो०—राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बयन ।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नींद बस नयन ॥३५७॥

निंदउहँ बदन सोह सुठि लोना । मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥
घर घर करहिं जागरन नारी । देहिं परसपर मंगल गारी ॥
पुरी बिराजति राजति रजनी । रानी कहहिं बिलोकहु सजनी ॥
सुंदरि बधू[१] सासु लै सोई । फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई ॥
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे । अरुनचूड़ बर बोलन लागे ॥
बंदि मागधन्हि[२] गुन गन गाए । पुरजन द्वार जोहारन आए ॥
बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता । पाइ असीस मुदित सब भ्राता ॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे । भूपति संग द्वार पगु धारे ॥

दो०—कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ ।
प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ ॥ ३५८॥

भूप बिलोकि लिए उर लाई । बैठे हरषि रजायसु पाई ॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी । लोचन लाभु अवधि अनुमानी ॥
पुनि बसिष्ठ मुनि कौसिकु आए । सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए ॥
सुतन्ह समेत पूजि पग लागे । निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे ॥

१—प्र० : बधू । द्वि० : प्र० । [तृ० : बधुन्ह] । च० : प्र० ।
२—प्र० : बंदि मागधन्हि । [द्वि०, तृ० : बंदी मागध] । च० : प्र० [(२): बंदी मागध]।

कहहिं बसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची॥
सुनि आनंद भएउ सब काहू। राम लखन उर अतिहि[१] उछाहू॥
दो०–मंगल मोद उछाहु नित जाहिं दिवस येहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥३५९॥
सुदिन सोधि[२] कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम जाचहिं बिधि पाहीं॥
बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महा मुनिराऊ॥
माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगें॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥
करबि सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयेसु पाइ फिरे पहुँचाई॥
दो०–राम रूप भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु॥३६०॥
बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥
बहुरे लोग रजायेसु भएऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएउ॥
जहँ तहँ रामु ब्याहु सबु गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा॥
आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसे अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाह जस भएउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥
कबि कुल जीवनु पावन जानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

१—प्र० : अनिहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : अधिक]। च० : प्र०।
२—प्र० : साधि। द्वि० : प्र०। तृ० : सोधि। च० : तृ०।

तेहि तें मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

छं०-निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो॥
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं॥
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥

सो०-सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥३६१॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
प्रथमः सोपानः समाप्तः॥

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री रामचरित मानस

द्वितीय सोपान

अयोध्या कांड

श्लो०—वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ॥
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥
नीलांबुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

दो०—श्री गुर चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि ।
बरनौं रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी । सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥
रिधि सिधि संपति नदीं सुहाईं । उमगि अवध अंबुधि कहुँ आईं ॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती । सुचि अमोल सुंदर सब भाँती ॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुरलोग सुखारी । रामचंद मुख चंदु निहारी ॥
मुदित मातु सब सखीं सहेलीं । फलित[1] बिलोकि मनोरथ बेलीं ॥

१—प्र० : फलित । द्वि० : प्र० । [तृ० : फुलित] । च० : प्र० ।

राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥
दो०–सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु ।
आपु अछत जुबराज पदु रामहि देउ नरेसु ॥१॥
एक समयँ सब सहित समाजा । राजसभा रघुराजु बिराजा ॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू । राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू ॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें । लोकप करहिं प्रीति रुख राखें ॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं । भूरिभाग दसरथ सम नाहीं ॥
मंगल मूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा । बदन बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू । जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥
दो०–येह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनाएउ जाइ ॥२॥
कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक । भए रामु सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥
सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं ॥
जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सबु पाएउँ रज पावनि पूजें ॥
अब अभिलाषु एकु मन मोरें । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू । कहेउ नरेस रजायेसु देहू ॥
दो०–राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥३॥
सब बिधि गुर प्रसन्न जिअँ जानी । बोलेउ राउ रहँसि मृदुबानी ॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥
मोहि अछत येहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। येह लालसा एक मन माहीं॥
पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भएउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥४॥

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुर आजू। रामहि राय देहु जुबराजू॥
जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगपति बरिस करोरी॥
जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयेसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥५॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥
चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥
बेद बिहित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मंजु मनि चौकइँ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

दो०-ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग ॥६॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥

दो०-एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥७॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मनु अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरीं। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरीं॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥
पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहे बहोरि देन बलि भागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू[१]॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधु बदनी मृग सावक नयनी॥

दो०-राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

तब नरनाह बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नाएउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥

१—[तृ० में यहाँ निम्नलिखित अर्द्धाली और भी आई है —
बार बार गनपतिहि निहोरा। कीजे सफल मनोरथ मोरा।]

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भएउ पुनीत आजु येहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई॥

दो०—सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥९॥

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू॥
राम करहु सब संजम आजू। जौ बिधि कुसल निबाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गएऊ। राम हृदय अस बिसमउ भएऊ॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस येहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

दो०—तेहि अवसर आए लखनु मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥१०॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहु[१] बेगि नयन फलु पावहिं॥
हाट बाट घर गली अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥
कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन बनावहिं[२] देव कुचाली॥

१—प्र० : आवहुं। द्वि० : प्र० [(५) (५अ) : आवहिं]। तृ०, च० : प्र०।
२—प्र० : बनावहिं। [द्वि०, तृ० : मनावहिं]। च० : प्र० [(८) : मनावहिं]

तिन्हहिं सोहाइ न अवध बधावा । चोरहिं चंदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लइ परहीं ॥
दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु[१] ।
राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु ॥११॥
सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछताती । भइउँ सरोज बिपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥
बिसमय हरष रहित रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइअ अवध देव हित लागी ॥
बार बार गहि चरन सँकोची । चली बिचारि बिबुध[२] मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती । देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी । करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥
हरषि हृदयँ दसरथपुर आई । जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥
दो०—नामु मथरा मंदमति चेरी कैकै केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥१२॥
दीख मंथरा नगरु बनावा । मंजुल मगल बाज बधावा ॥
पूँछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥
करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवनि बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँति ॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
उतरु देइ नहिं लेइ उसाँसू । नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें । दीन्हि लखन सिख अस मन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥
दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु ।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥१३॥

१—[प्र० : काजु] । द्वि०, तृ०, च० : आजु [(६) : काजु] ।
२—[प्र० : त्रिबिध] । द्वि० : बिबुध । तृ० : द्वि० । [च० : बिबिध] ।

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाडि कुसल केहि आजू । जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू ॥
भएउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें । जानित हहु बस नाहु हमारें ॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी ॥

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिअ बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥१४॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगलदायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साँचेहु काली । देउँ माँगु मनभावत आली ॥
कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहि सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥१५॥

एकहि बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥
कहहि झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती । नाहि त मौन रहब दिनु राती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी॥
दो०-गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥१६॥
सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरीं गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥
तुम्ह पूँछहु मै कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल[१] जारि करै सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी॥
दो०-तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥१७॥
चतुर गभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रौरें॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥
येहु कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥
दो०-रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥१८॥

१—प्र० : जल। द्वि० : प्र०। [तृ० : जर]। च० : प्र० [(६) : जर]।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥
भयउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई॥
रामहि तिलकु कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहु बिपति बीजु बिधि बयऊ॥
रेख खँचाइ कहौं बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥
दो०—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं लषनु राम के नेब॥१९॥
कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
कीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठ कुकाठू॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मथरा बात फुरि[१] तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहौं न तोहि मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानौं काऊ॥
दो०—अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥२०॥
नेहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही॥
दीन बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरीं तिअ माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥

१—प्र० फुरि। [द्वि० फुर]। तृ०, प्र०। च०, प्र०। [(६) फुर]।

जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका॥
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥
पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह[१] खाँची। भरत भुआल होहिं येहु साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ॥
दो०—परौं कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥२१॥
कुबरी करि कबुली कैकेयी। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥
दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु॥२२॥
कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥
जौं बिधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहि चखपूतरि आली॥
बहु बिधि चेरिहि आदर देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥
बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकेई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥
कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहल होई। येहु कुचालि कछु जान न कोई॥

१—[प्र० तें]। द्वि० नि ह। तृ०, च०: द्वि०।

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार ।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार ॥२३॥

बालसखा सुनि हिय हरषाहीं । मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी । पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर सरिस संसारा । सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देउ येह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात येहु ओर निबाहू ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू । कैकयसुता हृदयँ अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहै न नीच मतें चतुराई ॥

दो०—साँझ समय सानंद नृपु गएउ कैकई गेह ।
गवनु निठुरता निकट किए जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयबस अगहुड़ परै न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बाँह बल जाकें । नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥
सो सुनि तिय रिस गएउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ॥
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी । अनअहिवातु सूच जनु भावी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई ।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि विषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ।
तुलसी नृपति भवितव्यतावस काम कौतुक लेखई ॥

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि ।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करौ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥
सकौ तोर अरि अमरौ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू ॥
प्रिया प्रान सुत सरबस मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोहीं। भामिनि राम सपथ सत मोहीं ॥
बिहँसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जिअँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि[1] कुबेषू ॥
दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥२६॥
पुनि कह राउ सुहृद जिअँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भएउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥
रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय[2] कठोरू। जनु छुइ गएउ पाक बरतोरू ॥
अइसिउ पीर बिहँसि तेहिं[3] गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि[4] गुरूँ पढ़ाई ॥
जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी ॥
दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥२७॥
जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गएउ मोहि भोर सुभाऊ ॥

१—प्र० परिहरहु। द्वि० परिहरहि। तृ०, च० द्वि०।
२—प्र० हृ उ। द्वि० हृदय। तृ०, च० द्वि०।
३—प्र० तेहिं। द्वि० प्र० [(३) (४) (५) तेइ]। [तृ० नव]। च० प्र०।
४—[प्र० : मति]। द्वि० मनि [(५अ) मति]। [तृ०, मति]। च०, द्वि०।

झूठेहु[1] हमहि दोसु जनि देहू । दुइ कै चारि माँगि बरु[2] लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मुनि[3] गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली ॥
दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहग समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु ॥२८॥
सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
माँगौ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनबासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
गएउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा[4] ॥
बिबरन भएउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेईं । दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं ॥
दो०—कवने अवसर का भएउ गएउँ नारि बिस्वास ।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥
एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा ॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥
जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारें । काहे न बोलहु बचनु सँभारें ॥

१—[प्र० झूठहु]। द्वि०, तृ०, च० झूठेहु।
२—प्र० बरु। [द्वि० (३) मकु, (४) (५) (५अ) किन]। [तृ०, च० मकु]।
३—प्र० मुनि। द्वि० प्र०। [तृ० मनु]। च० प्र० [( ) मनु]।
४—[(६) में यह अर्द्धाली नहीं है]

देहु उतरु अरु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥
दो०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राय।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय॥२०॥
आगें दीखि जरति[1] रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान[2] बनाई॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाती। भीर[3] प्रतीति प्रीति करि हाती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहौं करि संकरु साखी॥
अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। अइहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहु राजु बजाई॥
दो०—लोभु न रामहि राज कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिअँ करत रहेउँ नृपनीति॥२१॥
राम सपथ सत कहौं सुभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछें। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बरु दूसर असमंजस मागा॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

१—[प्र०, द्वि०, तृ० जरत]। च० जरति [(८) जरत]।
२—प्र० कुबरि सर सान। द्वि०, तृ० च० कूबरी सान।
३—प्र० भीर। द्वि० प्र० [(३) (४) (५) भीर]। [तृ० भीरु]। च० प्र०।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भएउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥
दो०–प्रिया हास रिस परिहरहि माँगु बिचारि बिबेकु ।
जेहि देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥३२॥
जिअइ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥
कहौं सुभाउ न छल मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जिअँ[१] प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहिं न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥
दो०–होत प्रातु मुनि बेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं ॥३३॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब साँची । तिअ मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । राम बिरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥
दो०–देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥३४॥

१–[प्र० : प्रिय] । द्वि० : जिय । तृ०, च० : द्वि० [(६) : प्रिय] ।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहु निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोरु कैकेई। मनहुँ घाय महु माहुरु देई॥
जौ अंतहु अस करतबु रहेऊ। मांगु मांगु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥
दुइ कि होहिं एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥
छाँड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिअ तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहु तृन सम बरनी॥
दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥३५॥
चहत न भरत भूपतहि[१] भोरें। बिधिबस कुमति बसी जिअँ तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भएउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥
जब लगि जिऔं कहौं कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू[२] लागी॥
दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥३६॥
राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई॥
उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥

१—प्र० : भूप हि। [द्वि०, तृ० : भूपतहि]। च० : प्र०।
२—प्र० : नहारू। [द्वि० : नहारुहि]। [तृ० : नाहरु]। च० : प्र०।

मूप प्रीति कैकइ कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥
बिलपत नृपहि भएउ भिनुसारा । बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥
मंगल सकल सोहाहिं न कैसें । सहगामिनिहि बिभूषन जैसें ॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू ॥
दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि ।
जागेउ[1] अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ॥३७॥
पछिलें पहर भूपु नित जागा । आजु हमहि बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई । कीजिअ काजु रजायेसु पाई ॥
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा ॥
पूँछे कोउ न उतरु देई । गए जेहिं भवन भूप कैकेई ॥
कहि जय जीव बैठ सिर नाई । देखि भूप गति गएउ सुखाई ॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ । मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूछी । बोली असुभभरी सुभ छूछी ॥
दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ॥३८॥
आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ॥
चलेउ[2] सुमंत्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥
सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहहिं का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गएउ दुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ॥
समाधानु करि सो सब ही का । गएउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
रामु सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥

१—प्र० : जागेउ । द्वि० : प्र० [(४) (५) : जागे] । [तृ० : जागे] । च० : प्र० ।
२—[प्र० : चलेत] । द्वि०, तृ०, च० : चलेउ ।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥
दो०—जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥
सूखहिं अधर जरइ सबु अगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअगू ॥
सरुष समीप दीखि कैकेई । मानहु मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर बचन महतारी ॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारनु । करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भएउ भूप उर सोचू । छाडि न सकहि तुम्हार सँकोचू ॥
दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत सकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयेसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥४०॥
निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिपु मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू । सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । रामु सहज आनद निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बडभागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥
दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि पर[१] पितु आयेसु बहुरि समत जननी तोर ॥४१॥

१—प्र० पर। द्वि० प्र०। [तृ० मह]। च० प्र० [(-) मह]।

भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू । बिधि सबबिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौ न जाउँ बन अइसेहुँ काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृतु लेहिं बिषु माँगी ॥
तेउ न पाइअ[1] समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥
अब एकु दुखु मोहि बिसेषी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होत प्रतीति न मोहि महतारी ॥
राउ धीरु गुन उदधि अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जातें[2] मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथु तोहि कहु सति भाउ ॥
दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जल[3] बक्र गति जद्यपि सलिलु समान ॥४२॥
रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता । जननी जनक बंधु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे । उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥
दो०—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्हि ।
सचिव राम आगमनु कहि बिनय समय सम कीन्हि ॥ ४३ ॥
अवनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उघारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥
लिए सनेह बिकल उर लाई । गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥

१—प्र० : तेउ न पाइअ । [द्वि०, तृ० : तेउ न पाइ अस] । च० : प्र० ।
२—प्र० : जातें । द्वि० : प्र० [(४) (५) : तातें] । [तृ० : तातें] । च० : प्र० ।
३—प्र० : जल । द्वि० : प्र० [(५) : जिमि] तृ०, च० : प्र० ।

रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥
सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सबकें हृदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥४४॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं॥
अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहिं मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

दो०—मंगल समय सनेह बस सोचु परिहरिअ तात।
आयेसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात॥४५॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥
आयेसु पालि जनम फलु पाई। अइहौं बेगिहि होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी॥
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ ।
मनहुँ करुन रस कटकई[1] उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

मिलेहि माँझ बिधि बात बेगारी । जहँ तहँ देहिं कैकइहिं गारी ॥
येहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहति चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥
पालव बैठि पेड़ु येहि काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु येहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥
सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगमु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारिगति भाई ॥

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥४७॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
जो हठि भएउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ॥
सिबि दधीचि हरिचंद कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥
कान मूँदि कर रद गहि जीहा । एक कहहिं येह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे । राम भरत कहुँ परम[2] पिआरे ॥

दो०—चदु चवइ[3] बरु अनल कन सुधा होइ बिष तूल ।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु भरत राम प्रतिकूल ॥४८॥

एक बिधातहि दूषन देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥

१—[प्र० : कटक लेइ] । [द्वि० : कटक] । तृ०, च० : कटकई ।
२—प्र० : परम । [द्वि०, तृ० : प्रान] । च० : प्र० [(८) : प्रान] ।
३—प्र० : चुवइ । द्वि० : प्र० [(४) (५अ) : चुवइ] [तृ० : चुवइ] । च० : प्र० ।

खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बान सम लागहिं ताही॥
भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु येहु सबु जगु जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू॥
कबहुँ न किएहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥
दो०—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहि धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥४९॥
अस बिचारि उर छाडहु कोहू। सोक कलंक कोठि[१] जनि होहू॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥
नाहिंन रामु राज कें भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥
गुर गृहँ बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारें। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जो परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहु लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥
छं०—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाइ करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी॥
सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५०॥
उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥

१—[प्र० कोप]। द्वि० कोटि [(३) कोठि]। तृ०, च० द्वि०।

ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥
राजु करत येहि दैअँ बिगोई । कीन्हेसि अस जस करइ न कोई ॥
येहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी । देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी ॥
जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा । कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जलचर गन सूखत पानी ॥
अति बिषाद बस लोग लोगाईं । गए मातु पहिं रामु गोसाईं ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा[१] सोचु जनि राखइ राऊ ॥
दो०—नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान ।
छूट जानि बनगवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ॥५१॥
रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नाएउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे । भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥
बारबार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए । स्रवत प्रेम रस पयद सुहाए ॥
प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई । रंक धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
कहहु तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई । जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥
दो०—जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत येहि भाँति ।
जिमि चातक चातकि त्रिषित बृष्टि सरद रितु स्वाति ॥५२॥
तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जाएहु भैया । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया ॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भवँरु न भूला ॥
धरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥

१—प्र० : मिटा । [द्वि०, तृ० : इटै] । च० : प्र० ।

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयेसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें[१]। आनँद अंब अनुग्रह तोरें॥
दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं मनु जनि करसि मलान॥५३॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदयँ बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु मापी॥
धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राज देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥
दो०—निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥५४॥
राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखौं सुतहि करौं अनरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥
बहुरि समुझि तिअ धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयेसु सब धरम क टीका॥
दो०—राज देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि[२] प्रजहि प्रचंड कलेसु॥५५॥

१—प्र० : भोरें। द्वि० : प्र० [(२) (४) : भोरें]। तृ०, च० : प्र०।
२—[प्र० : भूपति]। द्वि०, तृ०, च० : भूपतिहि।

जौं केवल पितु आयेसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥
बड़भागी बनु अवध अभागी। जौ रघुबंसतिलकु तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥
पूत परम प्रिय तुम्ह सबही कें। प्रान प्रान के जीवन जी कें॥
ते तुम्ह कहहु मातु बनु जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥

दो०—एहि बिचारि नहिं करौं हठ झूँठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥५६॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥
अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जनपरिजन गाऊँ॥
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ करालु कालु बिपरीता॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी[1]॥
दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहि बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू[1]॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥

१—प्र० —ना। द्वि० : प्र०। [तृ० : कानी]। च० • प्र० [(६) में अर्द्धाली नहीं है]।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहि पिआरी॥
दो०—पिता जनक भूपालमनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥५८॥
मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान-जानकिहि लाई॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भएउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयेसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥
दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥५९॥
बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयेसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥
दो०—कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥६०॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयेसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
येहि तें अधिकु धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखौं तोही॥
दो०—गुरु श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥६१॥
मैं पुनि करि प्रवान[1] पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥
दो०—भूमि सयन बलकल बसन असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥६२॥
नरअहार रजनीचर करहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

---

१ [प्र० प्रवान। द्वि० प्र०। [तृ० प्रमान]। च० प्र०।

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरन सीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥
दो०—सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥ ६३ ॥
सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी । धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहिं बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं । पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥
दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥ ६४ ॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई । सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तिअहि तरनिहुँ तें ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें । सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥

१—तृ० में निम्नलिखित अर्द्धाली अधिक है —
[अस कहि सिय रघुपति पद लागी । बोली बचन प्रेम रस पागी]।
२—प्र० : मिटि । द्वि० : प्र० । [तृ० : मिट]। च० : प्र० ।

दो०—खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल ॥६५॥
बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
कंद मूल फल अमिअँ अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
अस जिअँ जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अंतरजामी ॥
दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान ॥६६॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहौं बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा । सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहिं उचित तपु मो कहुँ भोगू ॥
दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान ॥६७॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोगु न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिअँ जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू । बेगि करहु बन गवन समाजू ॥

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि[१]॥

दो० बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहौं गात॥६८॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥
तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल[२] न कीन्हा॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥६९॥

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सब सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥
मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब सन तृनु तोरे॥
बोले बचनु राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥

१—प्र० में यह अर्धाली नहीं है]।
२—प्र० सफल। [छ०, पु० सुफल]। च० प्र०।

दो०–मातु पिता गुर स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥७०॥
अस जिअँ जानि सुनहुँ सिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं । राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुर पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी । सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गए कैसें । परसत तुहिन तामरस जैसें ॥
दो०–उतरु न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥७१॥
दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर बर धीर धरम धुर धारी । निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुर पितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरनरत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥
दो०–करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत ।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत ॥७२॥
माँगहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी । भएउ लाभ बड गइ बड़ हानी ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि पग नाएउ माथा । मनु रघुनंदन जानकि साथा ॥

पूँछे[१] मातु मलिन मनु देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथु आजू। येहिं सनेहबस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥
दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥७३॥
धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जो पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबहीं के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
दो०—भूरि भागभाजनु भएहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥७४॥
पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी[२]॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर फल सुत[३] येहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहु इन्हकें बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

१—प्र० पूँछ। द्वि० प्र० [(५) पूँछेउ]। [तृ० पूँछा]। च० प्र०।
२—प्र० हानी। द्वि० प्र० [(५) (५अ) जानी]। तृ० प्र०। [च० (६) नीं, () मानी]।
३—प्र० फल सुत। द्वि० प्र०। [तृ० बरफल]। च० प्र०।

तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू[1] । सँग पितु मातु राम सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥
छं०–उपदेसु येहु जेहिं तात[2] तुम्हरे रामु सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि[3] सिख देइ आयेसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥
सो०–मातु चरन सिरु नाइ चले तुरित संकित हृदय ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागबस ॥७५॥
गए लखनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥
कहहिं परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥
कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥
दो०–सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेहबस राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥
सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयेसु मोहि दीजे । हरष समय बिसमउ कत कीजे ॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू । जसु जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहाँ । बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥

१–प्र० सुवासू । द्वि० प्र० । [तृ० सुपासू] । प्र० ।
२–प्र० तात । द्वि० प्र० [(४) चात] । [तृ० चात] । च० प्र० ।
३–प्र० प्रभुहि । द्वि० प्र० । [तृ० सुतहि] । च० प्र० ।

सुनहु तात तुम्ह कहु मुनि कहहीं। रामु चराचर नायकु अहहीं॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करमु पाव फलु सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥
दो०—औरु करइ अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु॥७७॥
राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी[1] राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरौ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥
सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥
दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥७८॥
सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥
लोग बिकल मुरछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी[2] सिरु नाई॥

१—प्र० लखी। द्वि० प्र० [(५) लखा]। तृ०, च० • प्र०।
२—प्र० जननी। द्वि० • प्र० [(४) (५) जननिहि]। तृ०, च० • प्र०।

दो०—सजि बन साजु समाजु सब बनिता बंधु समेत ।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥७९॥
निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े । देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्र बृन्द रघुबीर बुलाए ॥
गुर सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान बिनय बस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे[१] ॥
दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब के सार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नाईं ॥
बारहिं बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सबसन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहइ भुआल सुखारी ॥
दो०—मातु सकल मोरें बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥
येहि बिधि राम सबहि समुझावा । गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥
रामु चलत अति भएउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू । हरष बिषाद बिबस सुरलोकू ॥
गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं । केहिं सुख लागि रहत तन माहीं ॥
येहि तें कवन ब्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू । लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥
सो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि ॥८१॥
जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥

१—प्र० : परितोषे । द्वि० : प्र० [(४) (५) : परिपोषे] । [तृ० : परिपोषे] । च० : प्र० ।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥
पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥
नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥८२॥

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥
लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

दो०—हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥८३॥

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सफल[1] बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥
बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
सबहिं बिचारु कीन्ह मनमाहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥

१—प्र० : सफल। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ) : सरल]। तृ०, च० : प्र०।

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥
दो०—बालक वृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥८४॥
रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भएउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराईं॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥
सील सनेहु छाँडि नहिं जाई। असमंजसबस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रमबस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई॥
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं[१] बाता॥
दो०—राम लखनु सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलाएउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥८५॥
जागे सकल लोग भए भोरू। गे रघुनाथ भएउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहु दिसि धावहिं॥
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भएउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहि उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥
निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा॥
एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥
दो०—राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥८६॥

१—[प्र० में 'नहिं' नहीं है]।

सीता सचिव सहित दोउ भाई । सृङ्गबेरपुर पहुचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु निसेखी ॥
लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा । सबहिं सहित सुखु पाएउ रामा ॥
गग सकल मुद मंगल मूला । सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा । रामु बिलोकहिं गग तरगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । बिबुधनदी महिमा अधिकाई ॥
मज्जनु कीन्ह पथ स्रमु गएऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मनु भएऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमु भारू । तेहि स्रमु येह लौकिक ब्यवहारू ॥
दो०–सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु ।
चरित करत नर अनुहरत सस्रुति सागर सेतु ॥८७॥
येह सुधि गुह निषाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥
करि दडवत भेंट धरि आगें । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पद पंकज देखें । भएउँ भाग भाजन जनु लेखें ॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मै जनु नीचु सहित परिवारा ॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥
दो०–बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु ।
ग्रामु बास नहिं उचित सुनि गुहहि भएउ दुख भारु ॥८८॥
राम लखन सिय रूपु निहारी । कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसें । जिन्ह पठए बन बालक ऐसें ॥
एक कहहि भल भूपति कीन्हा । लोयन लाहु हमहिं बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
लै रघुनाथहि ठाँव देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आए । रघुबर सध्या करन सिधाए ॥

गुहँ सवाँरि साथरी डसाई। कुस किसलय मय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी[१] ॥
दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ ॥८९॥
उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन ॥
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी[२] सर चाप चढाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भएउ प्रेमबस हृदयँ बिषादू ॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥
भूपति भवनु सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर आवा[३] ॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥
दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास ॥९०॥
बिबिध बसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं ॥
ते सिय रामु साथरी सोए। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी ॥
जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं ॥
पिता जनकु जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवति[४] महि बिधि बाम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ० : आनी। [च० : (६) पानी, (८) आना]।
२—प्र० : माथी। [द्वि०, तृ० : माथा]। च० : प्र०।
३—प्र०, द्वि०, तृ०: पावा। च० : आवा।
४—प्र० : सोवति। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : सोवत]।

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।
जेहिं रघुनंदन जानकिहिं सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी । कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी ॥
भएउ बिषादु निषादहि भारी । रामु सीय महि सयन निहारी ॥
बोले लखनु मधुर मृदु बानी । ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
जोग बियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू । संपति बिपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

दो०—सपने होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जिअँ जोइ ॥९२॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू । काहुहि बादि न देइअ दोसू ॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
येहि जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥
रामु ब्रह्म परमारथरूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गत भेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥९३॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल दातारा[1] ॥

१—प्र०, द्वि० : दातारा । [तृ०, च० : सुखदारा] ।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बटछीर मँगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥
हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम के साथा॥
बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥
दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥९४॥
तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥
सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥
धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा॥
संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥
दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥९५॥
तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करौं तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुखु न पाव पितु सोच हमारें॥
सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भएउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

दो०—मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान ॥९६॥
बिनती भूप कीन्हि जेहिं भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्हि सिख कोटि बिधाना॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सबकर मिटइ खभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहुँ प्रानपति परम सनेही॥
प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥
पतिहि प्रेम मय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥
दो०—आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥
पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलत[१] पदपीठा॥
सुख निधान अस माइक[२] मोरें। पिय बिहीन मन भाव न मोरें॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥
ससुर एतादस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि कोउ[३] सपनेहुँ सुखद न लागा॥
अगम पंथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सरि सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥
दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोर[४] सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ॥९८॥

१—प्र० : मिलत। द्वि० : प्र० [(२) : मिलित]। तृ०, च० : प्र० [(८) : मिलित]।
२—प्र०: माइक। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : पितुगृह]। तृ०, च० : प्र० [(८): पितुगृह]
३—प्र० : कोउ। [द्वि० : मन]। तृ०, च० : प्र०।
४—प्र० : मोर। द्वि० : प्र० [(४) (५) : मोरि]। तृ०, च० : प्र० [(८) : मोरि]।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग स्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें॥
सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भएउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइँ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतरु रघुनंदन दीन्हे॥
मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जनु मूरु गवाँई॥
दो०—रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥९९॥
जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जीवहिं[१] कैसें॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आए॥
माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
येहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानौं कछु और कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥
छं०—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥
सो०—सुनि केवट के बयन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन चितइ जानकी लखन तन॥१००॥

१—प्र० : जीवहिं। [द्वि० : जिइहहिं]। तृ० : प्र०। [च०: (६) जीवहिं, (८) जिइहहिं]।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जलु पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु तें थोरा॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी॥
केवट राम रजायेसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। येहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥१०१॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखनु समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच येहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुंदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मइँ कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेवा॥
दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखनु सिय नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बर देइ॥१०२॥
तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नाएउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउ जेहिं पूजा तोरी॥
सुनि सिय बिनय प्रेमरस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥

तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ॥

दो०—प्रान नाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।
पूजिहि सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ ॥१०३॥

गंग बचन सुनि मंगल मूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी । बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥
जेहिं बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देबि रजाई । सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई ॥
सहज सनेहु राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हें । करि परितोषु बिदा सब[१] कीन्हें ॥

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू । लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी । माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू । पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा । सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुष अनीक दलन रन धीरा ॥
संगमु सिंघासनु सुठि सोहा । छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा । देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुनग्राम ॥१०५॥

१—प्र० : सब । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : तब] ।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा॥
कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥
येहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥
दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि॥१०६॥
कुसल प्रस्न करि आसनु दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥
सीय लखन जन सहित सुहाये। अतिरुचि राम मूल फल खाये॥
भए बिगत स्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जपु जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥
दो०—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥१०७॥
सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥
येह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आस्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥
दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥१०८॥
राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयेसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट निकसहिं जब जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥
दो०—बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥१०९॥
सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहि चले पितु आयेसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
तेहि अवसरु एकु तापसु आवा। तेज पुंज लघु बयसु सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥
दो०—सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि॥११०॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंकु जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तनु कह सबु कोऊ॥

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा । मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी । सोच सनेह बिकल नर नारी ॥
दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह ।
राम रजायेसु सीस धरि भवन गवनु तेहिं कीन्ह ॥१११॥
पुनि सिय राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा कै करत बड़ाई ॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राजलखन सब अंग तुम्हारें । देखि सोचु अति हृदयँ हमारें ॥
मारगु चलहु पयादेहिं पाएँ । जोतिषु झूठ हमारें[१] भाएँ ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥
करि केहरि बन जाइ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयेसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ॥
दो०—येहि बिधि पूँछहिं प्रेमबस पुलक गात जल नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन ॥११२॥
जे पुर गावँ बसहिं मग माहीं । तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं ॥
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ॥
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्य पुंज मग निकट निवासी । तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर बासी ॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि । सीता लखन सहित घनस्यामहि ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं । तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं ॥

१– प्र०: हमारें । द्वि०: प्र० । [तृ०: हमारेहिं] । च०: प्र० [(८): हमारेहिं] ।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि रामु पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥
दो०—छाहँ करहिं घन बिबुध गन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥११३॥
सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥
दो०—एक देखि बट छाहँ भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनुकु स्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥११४॥
एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
एक टक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥
दामिनि बरन लखनु सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥
दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन पर लसत स्वेदकन जाल॥११५॥
बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥

थके नारि नर प्रेम पिआसे । मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्राम तिअ जाहीं । पूँछत अति सनेह सकुचाहीं ॥
बार बार सब लागहिं पाएँ । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ ॥
राजकुमारि बिनय हम[१] करहीं । तिअ सुभाय कछु पूँछत डरहीं ॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानबि जानि गँवारी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लही दुति मरकत सोने ॥

दो०—स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा अयन ।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी । बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निजपतिकहेउतिन्हहिसियसयननि ॥
भईं मुदित सब ग्राम बधूटीं । रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं ॥

दो०—अति सप्रेम सिय पाय परि बहु बिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहिसीस ॥११७॥

पारबती सम पति प्रिय होहू । देबि न हम पर छाड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं येहि मारग फिरिअ बहोरी ॥
दरसनु देब जानि निज दासीं । लखीं सीय सब प्रेम पिआसीं ॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं । जनु कुमुदिनीं कौमुदी पोषीं ॥
तबहिं लखन रघुबर रुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि नर भए दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ॥

१—[प्र० : सब] । द्वि० : हम । तृ०, च० : द्वि० [(६): सब] ।

मिटा मोदु मन भए मलीने । विधि निधि दीन्हि[१] लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥

दो०—लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ ॥११८॥

फिरत नारि नर अति पछिताहीं । दैअहि दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित विषाद परसपर कहहीं । बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू । जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूखु कलपतरु सागरु खारा । तेहिं पठए बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनवासू । कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ये बिचरहिं मग बिनु पदत्राना । रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥
ये महि परहिं डासि कुस पाता । सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुबर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा । धवल धाम रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥

दो०—जौं ये मुनिपट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार ।
बिबिधि भाँति भूषन बसन बादि किए करतार ॥११९॥

जौं ये कंद मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ये सहज सुहाए । आपु प्रगट भए बिधि न बनाए ॥
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी । स्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी । कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा । पटतर जोगु बनावइ लागा ॥
कीन्ह बहुत स्रम एक न आए । तेहिं इरिषा बन आनि दुराए ॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं । आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्य पुंज हम लेखे । जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥

१—प्र० : दीन्हि । द्वि० : प्र० [(४) (५) : दीन्ह] । [तृ० : दीन्ह] । च० : प्र० [(८): दीन्ह]

तुम्ह तें अधिक गुरहि जिअँ जानी । सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥
दो०—सबु करि मागहिं एकु फलु राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥
काम कोह[१] मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह कें हृदयँ बसहु रघुराया ॥
सब कें प्रिय सब कें हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह कें मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी । धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्ह कें मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह कें सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥
अवगुन तजि सब कें गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ लउ[२] लाई । तेहि कें हृदय रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥
दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥१३१॥

१—प्र० . कोह । द्वि० . प्र० [(४) (५) : क्रोध] । [तृ० : क्रोध] । च० प्र० ।
२—प्र० . लउ । द्वि० . प्र० [(५) : लै] । [तृ० : लय] । च० : प्र० [(८) . उर] ।

येहि बिधि मुनिबर भवन देखाए । बचन सप्रेम राम मन भाए ।।
कह मुनि सुनहु, भानुकुल नायकु । आस्रमु कहौं समय सुखदायकु ।।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।।
सैलु सुहावन कानन चारू । करि केहरि मृग बिहँग बिहारू ।।
नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रि प्रिया निज तप बल आनी ।।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि ।।
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं । करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।।
चलहु सफल स्रम सब कर करहू । राम देहु गौरव गिरिबरहू ।।

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महा मुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ।।१३२।।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू । करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ।।
लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ।।
नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ।।
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी ।।
अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ।।
रमेउ राम मन देवन्ह जाना । चले सहित सुरथपति[1] प्रधाना ।।
कोल किरात बेष सब आए । रचे परन तृन सदन सुहाए ।।
बरनि न जाइ मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक बिसाला ।।

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत ।।१३३।।

अमर नाग किंनर दिसिपाला[2] । चित्रकूट आए तेहि काला ।।
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू । मुदित देव लहि लोचन लाहू ।।
बरषि सुमन कह देव समाजू । नाथ सनाथ भए हम आजू ।।
करि बिनती दुख दुसह सुनाए । हरषित निज निज सदन सिधाए ।।

१—प्र० : सुर थपति प्रधाना । [द्वि० : सुरपति परधाना] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : दिगपाला । द्वि० : प्र० । तृ० : दिसिपाला । च० : तृ० ।

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥
मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥
दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनि बृंद।
करहिं जोग जप जाग[१] तप निज आस्रमन्हि सुछंद॥१३४॥
येह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मग जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥१३५॥
धन्य भूमि - बन पथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भलर[२] ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ[३] तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाउँ देखाउब॥

१—[प्र० : जाग]। द्वि०, तृ०, च० : जाग।
२—[प्र० : भलि। [द्वि० : भलि]। तृ० : भल। च० : तृ०।
३—प्र० : तहँ। द्वि० : प्र० [(+) : जहँ]। [तृ० : जहँ]। च० : प्र० [( ) : तहँ]।

हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचब आयेसु देता ॥
दो०–बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुनाअयन ।
बचन किरातन्ह कें सुनत जिमि पितु बालक बयन ॥१३६॥
रामहि केवल प्रेमु पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम सकल बनचर तब तोषे । कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥
बिदा किए सिर नाइ सिधाए । प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई । बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥
जब तें आइ रहे रघुनायकु । तब तें भएउ बनु मंगलदायकु ॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना । मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥
सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए । मनहुँ बिबुध बन[1] परिहरि आए ॥
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी । त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी ॥
दो०–नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर ।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग स्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥
करि केहरि कपि कोल कुरंगा । बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी । होहिं मुदित मृग बृन्द बिसेषी ॥
बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं । देखि राम बनु सकल सिहाहीं ॥
सुरसरि सरसइ दिनकरकन्या । मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू । मंदर मेरु सकल सुरबासू ॥
सैल हिमाचल आदिक जेते । चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई । स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥
दो०–चित्रकूट कें बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥
नयनवंत रघुबरहि बिलोकी । पाइ जनम फल होहिं बिसोकी ॥

१—प्र० । बिबुध । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० । बिबिध] ।

परसि चरन रज अचर सुखारी । भए परमपद कें अधिकारी ॥
सो बनु सैलु सुभाय सुहावन । मंगलमय अतिपावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवन बिधि तासू । सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥
पयपयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुषमा[१] जसि कानन । जौं सत सहस होहिं सहसानन ॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं । डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी । जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥
दो०—छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु ।
करत न सपनेहु लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु ॥१३९॥
राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥
नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिअ मुनिबर । असनु अमिअ सम कंद मूल फल[२] ॥
नाथ साथ साथरी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥
दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु ।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु ॥१४०॥
सीय लखनु जेहि बिधि सुखु लहहीं । सोइ रघुनाथु करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी ॥
जब जब रामु अवध सुधि करहीं । तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥

१—[प्र० : सुखमा]। द्वि० : सुषमा [(४) : सुखमा]। [तृ० : सुखमा]। च०, द्वि०।
२—प्र० : फर। द्वि० : प्र० [(१) फल]। तृ०, च० : प्र०।

कृपा सिंधु प्रभु होहिं दुखारी । धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं । जिमि पुरुषहि अनुसर परछाहीं ॥
प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु । धीर कृपाल भगत उर चंदनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ॥
दो०—रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयत समेत ॥१४१॥
जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें । पलक बिलोचन गोलक जैसें ॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि । जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि ॥
येहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा । सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥
फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई । सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू । कहि न जाइ जस भएउ बिषादू ॥
राम राम सिय लखनु पुकारी । परेउ धरनि तल व्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पख बिहँग अकुलाहीं ॥
दो०—नहिं तनु चरहिं न पियहिं जलु मोचहिं लोचन बारि ।
ब्याकुल भएउ[1] निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥१४२॥
धरि धीरजु तब कहइ निषादू । अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथ ज्ञाता । धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी । रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे । बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढुकि[2] परहिं फिरि हेरहिं पीछे । राम बियोग बिकल दुख तीछें ॥
जो कह रामु लखनु बैदेही । हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती । बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥

१—प्र० : भयेउ । [द्वि० : भये] । तृ० : प्र० । [च० : भए] ।

दो०—भएउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग ।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग ॥१४३॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई । बिरहु निषादु बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा । होहिं छनहि छन मगन बिषादा ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना । धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहिहि[2] न अंतहु अधमु सरीरू । जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भए अजस अघ भाजन प्राना । कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहु न हृदय होत दुइ टूका ॥[1]
मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई । मनहु कृपन[3] धन रासि गवाँई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०—बिप्र बिबेकी बेद बिद संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखें मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४४॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पतिदेवता करम मन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू । सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी । सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी । जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥
बिबरन भएउ न जाइ निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी । जमपुर पथ सोच जिमि पापी ॥
बचन न आउ हृदयँ पछिताई । अवध काह मैं देखब जाई ॥
राम रहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहिं जब बिकल नगर नर नारि ।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता ॥

१—प्र० : ऊढुकि । द्वि० : प्र० [(४) (५) : अरि] । [तृ० : उढुकि] । च० : प्र० ।
२—प्र० : रहिहि । द्वि० : प्र० [(२) : रही] । तृ० : प्र० ।
३—प्र० : कृपन । [द्वि०, तृ० : कृपनि] । तृ०, च० : प्र० [(८) : कृपनि] ।

पूँछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी ॥
राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही ॥
जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब येहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥
देहौं उतरु कौनु मुँहु लाई। आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥
दो०—हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि येहु जातना सरीरु ॥१४६॥
येहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवसु गँवावा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥
अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए ॥
रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसे। निघटत नीर मीन गन जैसे ॥
दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवन भयंकर लाग तेहि मानहु प्रेत निवासु ॥१४७॥
अति आरति सब पूँछहि रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी ॥
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि[1] तेहिं बूझा ॥
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गइँ लवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा ॥
आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमि तल[2] निपट मलीना ॥

१—प्र० : तेहि। [द्वि०, तृ० : जेहि]। च० : प्र०।
२—प्र० : तल। द्वि० : तन। तृ०, च० : द्वि०।

लेहिं उसास सोच येहि भाँती । सुरपुर तें जनु खसेउ जजाती ॥
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती । जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥
राम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लखन बैदेही ॥
दो०—देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु ।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥१४८॥
भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत राउ नयन भरि बारी ॥
राम कुसल कहु सखा सनेही । कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए । सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥
सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू । कहु सिय राम लखनु संदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरष हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥
दो०—सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहौं सति भाउ ॥१४९॥
पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥
सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी । महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥
जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरजु धरहु बिबेकु बिचारी । छाड़िय सोचु सकल हितकारी ॥
दो०—प्रथम बास तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर ।
न्हाइ रहे जल पानु करि सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥
केवट कीन्ह बहुत सेवकाई । सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥

होत प्रात बटछीरु मँगावा । जटामुकुट निज सीस बनावा ॥
राम सखा तब नाव मँगाई । प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥
लखन बान धनु धरे बनाई । आपु चढ़े प्रभु आयेसु पाई ॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा । बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू । बार बार पद पंकज गहेहू ॥
करबि पाय परि बिनय बहोरी । तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
बन मग मंगल कुसल हमारें । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें ॥
छं०—तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं ।
प्रतिपालि आयेसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी ।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी ॥
सो०—गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ॥१५१॥
पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनाएहु[१] बिनती मोरी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जा तें रह नरनाहु सुखारी ॥
कहब सँदेसु भरत के आएँ । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेएहु मातु सकल सम जानी ॥
ओर[२] निबाहेहु भायप भाई । करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ । सोच मोर जेहिं करइ न काऊ ॥
लखन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई । कहबि न तात लखन लरिकाई ॥
दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥
तेहि अवसर रघुबर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥

१—प्र० : सुनाएहु । द्वि० : प्र० [(३) : सुनाएउ] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : ओर । द्वि० : प्र० । [तृ० : और] । च० : प्र० ।

रघुकुल तिलक चले येहि भाँती । देखेउँ[1] ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥
मैं आयसु किमि कहौं कलेसू । जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ । हानि गलानि सोच बस भयऊ ॥
सूत बचन सुनतहिं नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा । माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा ॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी । महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा । धीरजहू कर धीरजु भागा ॥
दो०—भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु ।
बिपुल बिहँग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु ॥१५३॥
प्रान कठगत भयउ भुआलू । मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इद्रीं सकल बिकल भईं भारी । जनु सर सरसिज बन बिनु बारी ॥
कौसल्याँ नृपु दीख मलाना । रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिअ मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥
दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु सींचेउ सीतल बारि ॥१५४॥
धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू । कहु सुमंत्र कहँ रामु कृपालू ॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अंध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा । राम रहित धिग जीवन आसा ॥

१—[प्र० देखउ] । द्वि०, तृ०, च० देखेउ ।

सो तनु राखि करबि मैं काहा । जेहि न प्रेमपनु मोर निबाहा ॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबीर बिरह राउ गएउ सुरधाम ॥१५५॥

जिअन मरन फलु दसरथ पावा । अंड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा । राम बिरह करि[१] मरनु सँवारा ॥
सोक बिकल सब रोवहिं रानी । रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा । परहिं भूमि तल बारहिं बारा ॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी । घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ॥
अँथएउ आजु भानुकुल भानू । धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥
गारी सकल कैकइहि देहीं । नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥
येहि बिधि बिलपत रइनि बिहानी । आए सकल महामुनि ज्ञानी ॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास ।
सोक निवारेउ सबहि कर निज बिज्ञान प्रकास ॥१५६॥

तेल नाव भरि नृपु तनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू । नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई । गुर बोलाइ पठए दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयेसु धावन धाए । चले बेगि बर बाजि लजाए ॥
अनरथु अवध अरंभेउ जब ते । कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना । जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥
बिप्र जेँवाइ देहिं दिन दाना । सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ॥
माँगहिं हृदयँ महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥

१—प्र० : करि । [द्वि० : भरि] । तृ०, च० : प्र० ।

दो०—येहिं बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ ।
गुर अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥
चले समीर बेग हय हाँके । नाघत सरित सैल बन बाँके ॥
हृदउ सोचु बड़ कछु न सोहाई । अस जानहिं जिय़ँ जाउँ उड़ाई ॥
एक निमेष बरष सम जाई । येहि बिधि भरत नगरु निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा । रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला । सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा । नगरु बिसेषि भयावन लागा ॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए । राम बियोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी । मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी ॥
दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गँवहि जोहारहिं जाहिं ।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषादु मन माहिं ॥१५८॥
हाट बाट नहिं जाइ निहारी । जनु पुर दह दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि । हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ॥
सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहिं भेटि भवन लेइ आई ॥
भरत दुखित परिवारु निहारा । मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा ॥
कैकेई हरषित येहि भाँती । मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें । पूँछति नैहर कुसल हमारें ॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई । पूँछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता । कहँ सिय रामु लखन प्रिय भ्राता ॥
दो०- सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नयन ।
भरत स्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन ॥१५९॥
तात बात मैं सकल सँवारी । भइ मंथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ । भूपति सुरपतिपुर पगु धारेउ ॥
सुनत भरतु भए बिबस बिषादा । जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी । परे भूमि तल ब्याकुल भारी ॥

चलत न देखन पाएउँ तोही । तात न रामहिं सौंपेहु मोही ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥
सुनि सुत बचन कहति कैकेई । मरमु पाँछि जनु माहुर देई ॥
आदिहु तें सबु आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥
दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन ।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ थकित रहे धरि मौन ॥१६०॥
बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहिं सोचइ[१] जोगू । बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥
जीवत सकल जनम फल पाए । अंत अमरपति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि सोचु परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहू ॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छत जनु लाग अँगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा । पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥
जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥
दो०—हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥
जब तैं कुमति कुमत जिअँ ठयऊ । खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा । गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥
सरल सुसील धरमरत राऊ । सो किमि जानइ तीअ सुभाऊ ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं ॥
भे अति अहित रामु तेउ[२] तोही । को तूँ अहसि सत्य कहु मोही ॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

१—प्र० : सोचइ । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५ग) : सोचन] । [तृ० : मोचन] । च० : प्र० ।
२—प्र० : तेउ । द्वि० : प्र० [(४) : प्रिय] । [पं० : तैं] । च० : प्र० ।

दो०—राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
मो समान को पातकी बादि कहौं कछु तोहि ॥१६२॥
सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई । जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई । बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई । बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुँह भर महि करत पुकारा ॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू । दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ॥
आह दइअ मैं काह नसावा । करत नीक फलु अनइस पावा ॥
सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई । कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥
दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भारु ।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसारु ॥१६३॥
भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरछित अवनि परी झईं आई ॥
देखत भरतु बिकल भए भारी । परे चरन तन दसा बिसारी ॥
मातु तातु कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कइकइ कत जनमी जग माँझा । जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही ॥
को त्रिभुअन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥
पितु सुरपुर बन रघुबर[1] केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी । दुसह दाहु दुख दूषन भागी ॥
दो०—मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि ।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥१६४॥
सरल सुभाय माय हिय लाए । अति हित मनहु रामफिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥
देखि सुभाउ कहत सबु कोई । राम मातु अस काहे न होई ॥

१—प्र० : रघुबर । [द्वि०, तृ० : रघुकुल] । च० : प्र० ।

माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरजु धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी । काल करम गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥

दो०—पितु आयेसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

मुख प्रसन्न मन रंगु[१] न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए । गइउँ न संग न प्रान पठाए ॥
येहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें । तउ न तजा तनु जीव अभागें ॥
मोहिं न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मैं महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।
ब्याकुल बिलपत राजगृहु मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्याँ लिए हृदय लगाई ॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए । कहि बिबेकमय बचन सुहाए ॥
भरतहुँ मातु सकल समुझाईं । कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं ॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु पिता सुत मारें । गाइगोठ महिसुर पुर जारें ॥
जे अघ तिअ बालक बध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥
जे पातक उपपातक अहहीं । करम बचन मन भव कबि कहहीं ॥

१—प्र० : रंग । [द्वि० : (३) (५अ) राग, (४) (५) हरष] । [तृ० : राग]

ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं येहु होइ मोर मत माता॥
दो०—जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूत गन[1] घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥१६७॥

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर दारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी येहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥
तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं येहु जानौं भेऊ॥
दो०—मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥१६८॥

राम प्रानहुँ[2] तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहुँ तें प्यारे॥
बिधु बिष चवइ[3] स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ज्ञानु बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार येहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत येहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती॥
बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥

१—प्र० : गन। द्वि० : प्र० [(३) : घन]। तृ०, च० : प्र०।
२—प्र० : प्रानहुँ। द्वि० : प्र० [(१) (२) : प्रान]। [तृ० : प्रान]। च० : प्र०।
३—प्र० : चवइ। [द्वि० : (३) (४) (५) चवइ, (४ अ) चुवइ]। [तृ० : चुवइ]। च० : प्र० [(८) : चवइ]।

दो०–तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरतु गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु[1] ॥१६९॥
नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा॥
गहि पग भरत मातु सब राखीं। रहीं रानि दरसन अभिलाषीं॥
चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
येहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥
जहँ जस मुनिबर आयेसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सबु दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
दो०–सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम ॥१७०॥
पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरम ब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥
कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥
दो०–सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥१७१॥
अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथ नृपु नाहीं॥

१–प्र० : साजु। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : बाजु]। [तृ० : बाजु]। च० : प्र०।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना । तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी[1] । मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥
सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयेसु अनुसरई ॥
दो०—सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करमपथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥
बैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरि जनु होई ॥
सोचनीय नहिं कोसल राऊ । भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
बिधि हरि हरु सुरपति दिसि नाथा । बरनहिं सब दसरथ गुनगाथा[2] ॥
दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७३॥
सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि बिषाद करिअ तेहि लागी ॥
येहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज रजायेसु करहू ॥
राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहि बचनहि[3] लागी । तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥

१—प्र० अवमानी । द्वि० प्र० [(४) (५) अपमानी] । [तृ० अपमानी]। च० प्र० ।
२—[तृ० में इसके आगे निम्नलिखित अर्द्धाली और है
हानि काल त्रिभुवन जग माहीं । भूरि भाग दसरथ सम नाहीं ।
३—[प्र० बचनेहि] । द्वि०, तृ०, च० बचनहि ।

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रवाना[१] ॥
करहु सीस धरि भूप रजाई । हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥
परसुराम पितु आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी ॥
तनय जजातिहि जौबनु दएऊ । पितु अज्ञा अघ अजसु न भएऊ ॥

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बयन ।
ते भाजन सुख सुजसु के बसहिं अमरपति अयन ॥१७४॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू । तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ॥
वेद बिदित[२] संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
सुनि सुखु लहब राम बैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही ॥
कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥
मरम[३] तुम्हार राम कर जानिहि । सो सबबिधि तुम्हसन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम कें आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

दो०—कीजिअ गुर आयेसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु काल गति जानी ॥
बन रघुपति सुरपति[४] नरनाहू । तुम्ह येहि भाँति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलंबा ॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥

१—प्र० : प्रवाना । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : प्रमाना] । [तृ० : प्रमाना] । च० : प्र० ।
२—प्र० : बिदित । द्वि : प्र० [(३) : बिदित] । तृ०, च० : प्र० [(८) : बिदित] ।
३—प्र० : मरम । द्वि० : प्र० [(३) (४) : प्रेम] तृ०, च० : प्र० [(६) : परम] ।
४—प्र० : सुरपति । [द्वि०, तृ० : सुरपुर] । च० : प्र० ।

सिर धरि गुर आयेसु अनुसरहू । प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू ॥
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी । सील सनेह सरल रस सानी ॥
छं०—सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए ॥
सो दसा देखत समय तेहिं बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की ॥
सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ।
बचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥१७६॥
मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका । प्रजा सचिव संमत सबही का ॥
मातु उचित धरि[1] आयेसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी[2] ॥
उचित कि अनुचित किए बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥
तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई । जो आचरत मोर भल होई ॥
जद्यपि येह समुझत हउँ नीकें । तदपि होत परितोषु न जी कें ॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
उत्तर देउँ छमब अपराधू । दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥
दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु ।
येहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥
हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीखि[3] मन माहीं । आन उपाय मोर हित नाहीं ॥
सोक समाजु राजु केहि लेखें । लखन राम सिय पद बिनु देखें ॥

१—प्र० : धरि । द्वि० : प्र० । [तृ० : पुनि] : च० : प्र० ।
२—प्र० में इसके स्थान पर निम्नलिखित अर्द्धाली है :
मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी । बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ।
३—प्र० : दाखि । [द्वि०, तृ० : दीख] । च० : प्र० [(६) : दीख] ।

बादि बसन बिनु भूषन भारू । बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा ॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥
जाउँ राम पहिं आयेसु देहू । एकहि आँक मोर हित येहू ॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू । सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥
दो०–कइकइ सुअन कुटिल मति राम बिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधमु के राज ॥१७८॥
कहौं साँचु सब सुनि पतिआहू । चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पाप निवासू । जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥
राय राम कहुँ काननु दीन्हा । बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा ॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू । बैठ बात सब सुनौं सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू । रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥
राम पुनीत बिषय रस रूखे । लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहौ हृदय कठिनाई । निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई ॥
दो०–कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥१७९॥
कैकेईभव तनु[1] अनुरागे । पाँवर[2] प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगें ॥
लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा । पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कइकई सब कर काजू ॥
येहि तें मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥
कइकइ जठर जनमि जग माहीं । येह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥

१—प्र० कैकेईभव तनु । द्वि० : प्र० । [तृ० : कैकइभव तनु ते] । च० : प्र० ।
२—[प्र० : पावन] । द्वि०, तृ० : पाँवर । [च० : पावन] ।

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहइ जग जीवनु लाहू[१] ॥

दो०—जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृदु मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज[२] सहाइ ॥१८५॥

घर घर साजहिं बाहन नाना । हरषु हृदयँ परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू । नगरु बाजि गज भवन भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कै आही । जौं बिनु जतनु चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई । पाप सिरोमनि साइँ दोहाई ॥
करइ स्वामि हित सेवकु सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले ॥
कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा । जो जेहि लायक सो तेहिं[३] राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे । राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥

दो० आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान ।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान ॥१८६॥

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी । चहत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भएउ बिहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहिं देब मुनि रामहिं राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥
अरुंधती अरु अगिनि समाऊ[४] । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ[४] ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना । चले सकल तप तेज निधाना ॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥

१—[तृ० में इसके अनंतर निम्नलिखित अर्द्धाली और है — बैठि न सकत सिय लछिमन राम्‌ । मन बई प्रिय हिय मग्न मरामू ॥ [च० • सहम]। तृ० प्र० । [च० : तेहि]।
२—प्र सहज । द्वि० प्र० [(२) सहम] । तृ० • प० ।
३—प्र० • नई । द्वि० प्र० [(३ तेहि] । तृ० • प० । [च० : तेहि] ।
४—प्र० • प्रथम० म ऊ, राऊ । द्वि० • प्र० [( ) (२) .माजू, राजू] । [तृ० समाजू राजू] । च० : प्र० ।

दो०—सौंपि नगरु सुचि सेवकन्हि सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरतु दोउ भाइ ॥१८७॥

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली ॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू ॥
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू ॥

दो०—पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ॥१८८॥

सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार[१] करइ सबिषादा ॥
कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं ॥
जौं पै जिअँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥
जानहिं सानुज रामहि मारी। करौं अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवनु हानी ॥
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं ॥

दो०—अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

१—[प्र० : बिषाद]। द्वि०, तृ०, च०, बिचार।

समरु मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू॥
स्वामि काज करिहउँ[१] रन रारी। जस धवलिहउँ[१] भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥
साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जोबन बिटप कुठारू॥

दो०—बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥१९०॥

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहि एक बढ़ावइ करषा॥
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथी[२] बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं[३]॥
अगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥
निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लइ लइ नाम सकल सनमाने॥

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥१९१॥

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरें॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं॥
दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ॥

१—प्र०: क्रमशः करिहउँ, धवलिहउँ। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(१): करिहहुँ, धवलिहहुँ।
२—प्र०: भाथी। द्वि०: प्र० [(४) (५अ): भाथा]। [तृ०: भाथा]। च०: प्र०।
३—प्र०: धनुही। द्वि०, तृ०: प्र०। [च०: धनहीं]।

बूढ़ु एक कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं । सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं ॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें । बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तबु तसु[1] करिहौं आइ ॥१९२॥

लखब सनेह सुभायँ सुहाएँ । बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाए ॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ ॥१९३॥

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला । सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला ॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता । मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥
राम राम कहि जे जँवुहाहीं[2] । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं ॥
येहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥

१—प्र० : तबु तसु । द्वि, तृ० : प्र० । [च० : तस तव] ।
२—प्र० : जमुहाहीं । द्वि० : प्र [(४) (५) (५अ) : जमुनाहीं] । [तृ०: जमुहाहीं] च० : प्र० : [(८) : जमुहाहीं] ।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥

दो०—स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ॥१९४॥

नहिं आचरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई ॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥
रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीं तें। भएउँ भुवन भूषन तबहीं तें ॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानीं ॥
जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥
कहहिं लहेउ येहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र[1] भरि बाहू ॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लवाई ॥

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

१—प्र० : रा भद्र। छ० : प्र०। [तृ० : रा चंद्र]। च० : प्र०।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह सब[1] अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिएँ निषादहि लागू । जनु धनु[2] धरें बिषय[3] अनुरागू ॥
येहि बिधि भरत सेनु सब संगा । दीख जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥
करहिं प्रनाम नगर नर नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु माँगहि कर जोरी । रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर माँगौ येहू । सीय राम पद सहज सनेहू ॥
दो०—येहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ ॥१९७॥
जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सबहीं कर लीन्हा ॥
गुर सेवा करि आयेसु पाई । राममातु पहिं गे दोउ भाई ॥
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननीं सकल भरत सनमानी ॥
भइहि सौंपि मातु सेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥
चले सखा कर सों कर जोरे । सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन-कोए ॥
भरत बचन सुनि भएउ बिषादू । तुरत तहाँ लेइ गएउ निषादू ॥
दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किए बिश्रामु ।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ[4] दंड प्रनामु ॥१९८॥
कुस साथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥

१—प्र० सव । द्वि० : प्र० [(४) (५) : सब] । [तृ० : सम] । च० : प्र० [(६) : स] ।
२—प्र० : तनु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : धनु ।
३—प्र० : विषय । [द्वि०, तृ० : विनय] । च० : प्र० [(८) : विनय] ।
४—[प्र० : कीन्हे] । द्वि०, तृ०, च० : कीन्हेउ [(६) : कीन्हे]] ।

कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥
श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि मलीना[1]॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥
ससुर भानु कुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाईं॥
दो०—पतिदेवता सुतीयमनि सीय साथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥१९९॥
लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ ऐसे[2] अहहि न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रान पिआरे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस येहिं छाती॥
राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद[3] कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥
दो०—सुख सरूप रघुबंस मनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान॥२००॥
राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥

१—प्र० : मलीना। द्वि० तृ० : प्र०। [च० : बिलीना]।
२—प्र० : ऐसे। [द्वि०, तृ० : अस]। च० : प्र०।
३—प्र० : सारद। द्वि० : प्र० [(?) : [illegible]]। तृ०, च० : प्र० [illegible]।

कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता । साइँदोह[1] मोहि कीन्ह कुमाता ॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं । येह निरजोसु[2] दोसु बिधि बामहिं ॥
छं०—बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्हीं बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ॥
तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतमु कहतु हौं सौहैं किए ।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिए धीरजु हियें ॥
सो०—अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिस्रामु येह बिचार दृढ़ आनि मन ॥२०१॥
सखा बचन सुनि उर धरि धीरा । बास चले सुमिरत रघुबीरा ॥
येह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले बिलोकन आरत भारी ॥
परदखिना करि करहिं प्रनामा । देहिं कइकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥
एक सराहहिं भरत सनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि । को कहि सकइ बिमोह बिषादहि[3] ॥
येहि बिधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसारु गुदारा लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई । नईं नाव सब मातु चढ़ाईं ॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा । उतरि भरत तब सबहिं सँभारा ॥
दो०—प्रात क्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥
किएउ निषादनाथु अगुआईं । मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा ॥
आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥

१—प्र० : साइँदोह । द्वि० : प्र० [(४) (५) साइँद्रोहि, (५अ) साइँद्रोह] । [तृ० : साइँद्रोह] । च० : प्र० ।
२—प्र० : निरजोसु । द्वि० : प्र० । [तृ० : निरदोस] । च० : प्र० ।
३—[तृ० में यह अर्द्धाली नहीं है] ।

गवने भरत पयादेहिं पाएँ । कोतल संग जाहिं डोरिआएँ ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
रामु पयादेहि पाउ सिधाए । हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी । सब सेवक गन गरहिं[1] गलानी ॥

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओस कन जैसें ॥
भरत पयादेहिं आए आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए ॥
सबिधि सितासित नीर नहाने । दिए दान महिसुर सनमाने ॥
देखत स्यामल धवल हिलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल कामप्रद तीरथराऊ । बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जिअँ जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ॥

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद येह बरदानु न आन ॥२०४॥

जानहुँ[2] रामु कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥

१—प्र० : करहिं । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : गरहिं] ।
२—प्र० : हुँ । द्वि० : प्र० [(५) : जानहि] । [तृ० : जानहि] । च० : प्र० ।

बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥
दो०—तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥२०५॥
प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिवंत[1] भाग्य निज लेखे॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥
मुनि पूँछब किछु येह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥
दो०—तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कइकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥२०६॥
यहउ कहत भल कहिह न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकहु बेदु बड़ाई॥
लोक बेद संमत सब कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहिं बोलाई[2]। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥
राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछितानी॥
तहँउ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू॥
करतेहु राजु तौ[3] तुम्हहिं न दोसू। रामहि होत सुनत संतोषू॥
दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥२०७॥

१—प्र० : मूरतिवंत। द्वि० : प्र० [(३) : मूरतिवंत]। तृ० : प्र०। [च० : मूरतिमंत]।
२—प्र० : बोलाई। द्वि० : प्र० [(३): बलाई]। तृ०, च० : प्र०।
३—[प्र० : तो]। [द्वि० : तौ]। [तृ० : तो]। च० : त।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना । भूरि भाग को तुम्हहि समाना ॥
येह तुम्हार आचरजु न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं । पेमपात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सबु तुम्हहि सराहत बीती ॥
जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें । सुजसु[1] जीवन जग जस जड़ नर कें ॥
येह न अधिक रघुबीर बड़ाई । प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत येहू । धरे देह जनु राम सनेहू ॥
दो०—तुम्ह कहँ भरत कलंक येह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा येह समउ गनेसु ॥२०८॥
नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥
कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कइकइ करतबु राहू ॥
पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान[2] दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअ अघाहूँ । कीन्हिहु[3] सुलभ सुधा बसुधाहूँ ॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी । सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं । अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥
दो०—जासु सनेह सकोच बस रामु प्रगट भए आइ ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥२०९॥
कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि[4] अनूपा । जहँ बस राम पेम मृग रूपा ॥

१—[प्र० : सुजसु]। द्वि०, तृ०, च० : सुखु।
२—प्र० : अवमान। द्वि० : प्र० [(४)(५)(५अ) : अपमान]। [तृ० : अपमान]। च० : प्र० [(८) : अपमान]।
३—प्र० : कीन्हिहु। द्वि० : प्र० [(४)(५)(५अ) : कीन्हेहु]। [तृ० : कीन्हेहु]। च० : प्र० [(८) : कीन्हेहु]।
४—प्र० : कीन्हि। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): कीन्ह]। [तृ० : कीन्ह]। च०: प्र०।

तात गलानि करहु जिय़ँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम जग जसु[1] जयेऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भएऊ ॥
सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥
दो०—पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बयन ॥२१०॥
मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
येहि थल जौं कछु कहिअ बनाई। येहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥
तुम्ह सर्बग्य कहौं सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुख जियँ जगजानिहि[2] पोचू ॥
नाहिंन डरु बिगरहि परलोकू। पितहुँ मरन कर नाहिंन[3] सोकू ॥
सुकृत सुजसु भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥
राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥
दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥२११॥
येहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती ॥
येहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥
मातु कुमत बढ़ई अघमूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला ॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥

१—प्र० : जग जसु। द्वि० : प्र० [(३): जस जग]। तृ०, च० : प्र० [(८) : जस जग]।
२—[प्र० : जानिहि]। द्वि०, तृ०, च० : जानहि।
३—प्र० : नाहिंन। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): मोहि न]। तृ० : प्र०। [च०: मोहि न]।

मोहि लगि येहु कुठाटु तेहिं ठाटा । घैलेसि सबु जगु बारह बाटा ॥
मिटइ कुजोगु[1] राम फिरि आएँ । बसइ अवध नहिं आन उपाएँ ॥
भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी । सब दुखु मिटिहि राम पग देखी ॥
दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेम प्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१२॥
सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू । भयउ कुअवसरु कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा । परम धरम येहु नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए । सुचि सेवक सिष निकट बुलाए ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥
मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं । आयेसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥
दो०—राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रमु कहा मुदित मुनिराज ॥२१३॥
रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी । बड़ भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥
मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू । होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ[2] रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे । जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे ॥
सबु समाजु सजि सिधि पल माहीं । जे सुख सपनेहुँ सुरपुर नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही । सुंदर सुखद जथा रुचि जेही ॥

१—प्र० : कुजोगु । द्वि० : प्र० [(३) (४) : कुरोग] । [तृ० : कुरोग] । च० : प्र० ।
२—प्र० : रचेउ । द्वि० : प्र० । [तृ० : रचे] । च० : प्र० ।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयेसु दीन्ह । -
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिवर तप बल कीन्ह ॥२१४॥
मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबिधि बिधाना ॥
असन पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुरसुरभी सुरतरु सबही कें । लखि अभिलाषु सुरेस सची कें ॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरष बिसमय बस लोगा ॥

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयेसु खेलवार ।
तेहि निसि आस्रम पिंजरा राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा । नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयेसु असीस सिर राखी । करि दंडवत बिनय बहु भाखी ॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे । चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे ॥
रामसखा कर दीन्हे लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया । पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया ॥
लखन राम सिय पंथ कहानी । पूँछत सखहि कहत मृदु बानी ॥
राम बास थल बिटप बिलोकें । उर अनुराग रहत नहिं रोकें ॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला । भइ मृदु महि मगु मंगल मूला ॥

दो०—किए जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात ॥२१६॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भए परम पद जोगू । भरत दरस मेटा भव रोगू ॥
येह बड़ि बात भरत कइ नाहीं । सुमिरत जिन्हहिं रामु मन माहीं ॥
बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ॥

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता । कस न होइ मगु मंगलदाता ॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं । भरतहिं निरखि हरषु हिय लहहीं ॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू । जगु भल भलेहि पोच कहुं पोचू ॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई ॥
दो०—रामु सँकोची प्रेमबस भरतु सुप्रेम[१] पयोधि ।
बनी बात बेगरन[२] चहति करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥
बचन सुनत सुरगुर मुसकाने । सहसनयनु बिनु लोचन जाने ॥
कह गुर बादि छोभु छलु छाँड़ू । इहाँ कपट करि होइअ भाँड़ू ॥
मायापति सेवक सन माया । करिअ त उलटि परइ सुरराया ॥
तब किछु कीन्ह रामरुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानी ॥
सुनि सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । येह महिमा जानहिं दुरबासा ॥
भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ॥
दो०—मनहु न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु ।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥
सुनु सुरेस उपदेसु हमारा । रामहिं सेवकु परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई । सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू । गहहिं न पाप पुन्नु[३] गुन दोषू ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा । भगत अभगत[४] हृदय अनुसारा ॥

१—प्र० : सुप्रेम । द्वि० : प्र० [(५अ): सप्रेम] । तृ० : प्र० । च० प्र० [(८) : सप्रेम] ।
२—प्र० : बेगरन । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : बिगरन] । [तृ० : बिगरन] । च० : प्र० [(८) : बिगरन] ।
३—प्र० : पुन्नु । द्वि० : प्र० [(४),(५) (५अ) : पुन्य] । [तृ० : पुन्य] । च० : प्र० ।
४—[प्र० : भरत भगत] । [द्वि० : रघुपति भगत] । तृ० : भगत अभगत । च० : तृ० । [(८): रघुपति भगत]

अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

दो०—रामभगत परहित निरत परदुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयेसु अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥
सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी ग्लानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥
येहि बिधि भरतु चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेम मनहु चहुं पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥

दो०—रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥२२०॥

जमुन तीर तेहिं दिन करि बासू। भएउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनीं। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥
प्रात पार भए एकहिं खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई॥
आगें मुनिबर बाहन आछें। राज समाजु जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥

दो०—मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब[1] मुदित जनम फलु पाइ॥२२१॥

१—प्र० : सब। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : बस]।

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ येहि भेदा॥
तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥
कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभायँ सुभागी॥
दो०—चलत पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु॥२२२॥
भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। रामबंधु अस काहे न होई॥
हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कइकइ जननि जोगु सुत नाहीं॥
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ येह दरसु पुन्य परिनामा॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरु भूमि कलपतरु जामा॥
दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥२२३॥
निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आस्रम सुर धामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥
मनहीं मन माँगहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥
करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। रहि बन लखनु राम बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥
येहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बन बास कहानी॥
दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥२२४॥
मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू[१]॥
करत मनोरथ जस जियँ जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहि। बिहबल बचन पेम बस बोलहिं॥
राम सखा तेहिं समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकिजीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥
दो०—भरत पेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेपु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अहमम मलिन जनेपु॥२२५॥
सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीतें॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥
सकल मलिन मन दीन दुखारीं। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोचबिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥
छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आसम गए॥

१—[प्र० तथा (२) में यह अर्द्धाली नहीं है]।

तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित[1] रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥
सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥२२६॥
बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच उत बंधु सँकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥
बिनु पूँछें कछु कहौं गोसाईं। सेवकु समय न ढीठ ढिठाईं॥
तुम्ह सर्बज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहइ[2] अनुगामी॥
दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिअँ जानिअ आपु समान॥२२७॥
बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥
तेऊ आजु राजपदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि रामु बन बास एकाकी॥
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करइ अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटलाई। आए दलु बटोरि दोउ भाई॥
जौं जिअँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राजपदु पाएँ॥
दो०—ससि गुर तिअ गामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥२२८॥

१—प्र० : सचकित। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) चकित]। [तृ० : चकित]। च० : प्र०।
२—प्र० : कहइ। द्वि० : प्र०। [तृ० : कहौं]। च० प्र० [(८): कहौं]।

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह येह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा[१] न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥
दो०—छत्र[२] जाति रघुकुल जनमु राम अनुज[३] जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥२२९॥
उठि कर जोरि रजायेसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करौं रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारौं रन राम दोहाई॥
दो०—अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥२३०॥
जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काजु कछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥

१—प्र० : उपचरा। [द्वि०, तृ० : उपचार]। च० : प्र० [(८): उपचार]।
२—प्र० : छत्र। द्वि० : प्र० [(१) (५अ): छत्रि]। [तृ० : छत्रि] । च० : प्र०[(८): छत्रि]।
३—प्र० : अनुज। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : अनुग]।

सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥
जो अँचवत नृप मातहिं[1] तेई। नाहिंन साधु सभा जेहिं[2] सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ की काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥२३१॥
तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाडइ छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबि बंस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥
दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥२३२॥
जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
लखनु राम सिय सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ[3] न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ। मंदाकिनीं पुनीत नहाएँ॥
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा॥

१—प्र० : नृप मातहि। द्वि० : प्र० [(८) (५ मातहि नृप]। तृ०, च० : प्र० [(८), मातहि नृप]।
२—प्र० : जेहिं। द्वि० : प्र० [(८) ५ : जइ]। तृ०, च० : प्र०।
३—प्र० : मधु। द्वि० : प्र०। [तृ० : बर]। च० : प्र०।

चले भरतु जहँ सिय रघुराई । साथ निषादनाथु लघु भाई ॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
राम लखनु सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥
दो०—मातु मतें महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२३३॥
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरे सरन राम[1] की पनहीं । रामु सुस्वामि दोसु सब जनहीं ॥
जग जस भाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिं मातृकृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रबाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि[2] कहत निषादु ।
मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥
सेवक बचन सत्य सब जाने । आस्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी[3] ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी । होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम बास बन संपति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू । बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी । सांति सुमति सुचि सुँदर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ । रामचरन आस्रित चित चाऊ ॥

१—प्र० : राम । द्वि० : प्र० [(३) : रामहिं] । तृ० : प्र० । [च० : रामहिं] ।
२—[प्र० : गुन] । द्वि०, तृ०, च० : गुनि ।
३—[प्र०, द्वि०, तृ० : मारी] । च० : कारी [(८) : मारी] ।

दो०—जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राज्य पुर सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँगन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना । प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष वृष[1] साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदितमन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

दो०—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला । पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा । मंजु बिसाल देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला । अबिचल[2] छाँह सुखद सब काला ॥
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी । बिरची बिधि सकेलि सुषमा सी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई । सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय रामु सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥२३७॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥

१—प्र० : नृप । द्वि० : प्र० । तृ० : नृप । च० : द्वि० ।
२—प्र० : अबिचल । द्वि० : प्र० [(०): अबिरल] । तृ० : प्र० । [च० : अबिरल] ।

करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहि निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पाएउ रंका ॥
रज सिर धरि हिय नयननिह लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहि फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥
दो०—पेमु अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु , रघुबीर ॥२३८॥
सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आस्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगें। पूँछे बचन कहत अनुरागें ॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसें कर सर धनु काँधे ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनि बेषु कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय[१] की जरनि मनहुं[२] हँसि हेरत ॥
दो०—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु ॥२३९॥
सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥
बचन सपेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जिअँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस[३] येहि ओरा। उत साहिब सेवा बस[४] जोरा ॥

१—प्र० : निय। द्वि० : प्र० [(४) (नअ): हिय]। तृ०, च० : प्र०।
२—प्र० : मनहुँ। [द्वि०, तृ० : हरत।]। च० : प्र० [(८) : हरत]
३—प्र० : सरस। द्वि० : प्र०। [तृ० : सरिस]। च० : प्र०।
४—प्र० : बस। [द्वि०, तृ० : बर]। च० : प्र०।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे[३] सबहि अपान ॥२४०॥
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबि कुल अगम करम मन बानी ॥
परम पेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥
कहहु सुपेमु प्रगट को करई । केहि छायाँ कबि मति अनुसरई[४] ॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ॥
अगम सनेहु भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥
दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ[५] भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥
भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर कर कमल परसि बैठाए ॥
सीय असीस दीन्हि मन माहीं । मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ॥
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥

३– प्र० : बिसरे । द्वि० : प्र० [(३) : बिसरा] । [तृ० : बिसरा] । च० : प्र० ।
४– [प्र० : कबि द अनुसरई] । द्वि०, तृ०, च० : मति अनुसरइ ।
५– प्र० : भायँ । द्वि० : प्र० । [तृ० : भाउ] । च० : प्र०

तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥
दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥२४२॥
सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम धुर दीन दयाला॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत[1] सनेह समेटा॥
रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहिं सुर बरषहिं[2] फूला॥
येहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
दो०—जेहि लखि लखनहुँ तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥२४३॥
आरत लोगु राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
येह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
दो०—भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥२४४॥

१—प्र० लुटत। द्वि०, तृ० प्र०। [च० लुठत]।
२—प्र० बरषहिं। द्वि०, तृ० प्र०। [च० बरिसहिं]।

गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाईं । सहित बिप्रतिय जे सँग आईं ॥
गंग गौरि सम सब सनमानीं । देहिं असीस मुदित मृदु बानीं ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेंटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता । परे पेम ब्याकुल सब गाता ॥
अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू । किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू ॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ । गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू ॥
दो०—महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ ।
पावन आस्रमु गवनु किए भरत लखन रघुनाथ ॥२४५॥
सीय आइ मुनिबर पग लागी । उचित असीस लही मन माँगी ॥
गुरपतिनिहि मुनितिअन्ह समेता । मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के । आसिरबचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय[1] निहारीं । मूँदे नयन सहमि सुकुमारीं ॥
परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं । काह कीन्ह करतार कुचालीं ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा । सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा ॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥
दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग ।
हृदयँ असीसहिं पेमबस रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥
बिकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सबहिं कहेउ गुर ज्ञानी ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा । कहे कछुक परमारथ गाथा ॥
नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी । भे अति बिकल धीर धुर धारी ॥

१—[प्र० . दीन]। द्वि०, तृ०, च० सीय ।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी । बिलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राजु अकाजेउ आजू ॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाए । सहित समाज सुसरित नहाए ॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहुँ कहें जलु काहु न लीन्हा ॥
दो०—भोरु भएँ रघुनंदनहिं जो मुनि आयेसु दीन्ह ।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह ॥२४७॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघ तूला । सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥
सुद्ध सो भएउ साधु संमत अस । तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते । बोले गुर सन मातु[1] पिरीते ॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी । कंद मूल फल अंबु अहारी ॥
सानुज भरतु सचिव सब माता । देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुतु कहेउँ सब[2] किएउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥
दो०—धरम-सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरसु देखि लहहुँ बिस्राम ॥२४८॥

राम बचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला । भएउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं । जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगल मूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥
राम सैल बन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधा सम बारी । त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी ॥
बिटप बेलि तृन अगनित जाती । फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥

१—प्र० : मातु । [द्वि० : (१) (४) (५) राम ; (५अ) पेम] । [तृ० : राम] । च० : प्र० [(८) : राम] ।
२—प्र० : सब । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : बस] ।

सुदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥
दो०—सरनि सरोरुह जल बिहँग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहग बहु रंग॥२४९॥
कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वाद सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। कंद मूल फल अंकुर जूरीं॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवसरि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥
दो०—यह जिअँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥२५०॥
तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाईं। ईंधनु पात किरात मिताईं॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहि पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। येह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे॥
छं०—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै नौका[१] तिरा॥

१—प्र० : नौका। द्वि०, प्र० [( ) : लौका]। तृ० : प्र०। [च०, लौका]

सो०—विहरहिं बन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम ॥२५१॥
पुर नर नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्हलहिसुख सिखआसिष दीन्ही ॥
लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥
लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यहु संसउ सबकें मन माहीं । राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं ॥
दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुठि[१] सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच ॥२५२॥
कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥
अवसि फिरहिं गुर आयेसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौं हठ करौ त निपट कुकरमू । हर[२] गिरि तें गुरु सेवक धरमू ॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रैनि बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई । बैठत पठए रिषयँ बोलाई ॥
दो०—गुरु पद कमल प्रनामु करि बैठे आयेसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ॥२५३॥
बोले मुनिबरु समय समाना । सुनहुँ सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस भगवानू ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ० : सुठि । [च०: सुचि] ।
२—[प्र० : धर] । द्वि० : हर [(३): हर] । तृ०, च० :

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि[1] निगमागम गाई॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें॥
दो०—राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥२५४॥
सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥
दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु॥२५५॥
तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचौं तात कहत एक बाता[1]। अरध तजहिं बुध सरबसु जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखनु सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभु लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥

१—[प्र० : सिद्ध]। द्वि०, तृ, च० : सिद्धि [(६): सिद्ध]।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू । येहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥
दो०—अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सर्बग्य सुजान ।
जौ फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥
भरत बचन सुनि देखि सनेहू । सभा सहित मुनि भएउ बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥
गा चह पार जतनु हियँ हेरा । पावत नाव न बोहितु बेरा ॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई । सरसीं सीपि कि[१] सिंधु समाई ॥
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए । सहित समाज राम पहिं आए ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु ॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी । देस काल अवसर अनुहारी ॥
सुनहु राम सर्बग्य सुजाना । धरम नीति गुन ग्यान निधाना ॥
दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ॥२५७॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहिं हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें । आयेसु किएँ मुदित फुर भाखें ॥
प्रथम जो आयेसु मो कहँ होई । माथे मानि करउँ सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेह बिचारु न राखा ॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥
दो०—भरत बिनय सादर सुनिअँ करिअँ बिचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

१—प्र० : सरसी सीपि कि । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : सरसीपी किमि] । [तृ० : सरसीपी किमि] । च० : प्र० ।

गुर अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदयँ आनंदु बिसेषी ॥
भरतहि धरमधुरधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ॥
बोले गुर आयेसु अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥
लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई । अस कहि रामु रहे अरगाई ॥
दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात ।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कइ बात ॥२५९॥
सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरुभारू । कहि न सकहिं किछु करहिं बिचारू ॥
पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । येहि तें अधिक कहौं मैं काहा ॥
मइँ जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी । खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मइँ प्रभु कृपा रीति जिअ जोही । हारेहु खेल जितावहिं मोही ॥
दो०—महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहे न बयन ।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पियासे नयन ॥२६०॥
बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीचु जननी मिस पारा ॥
येहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनी समुझि साधु सुचि को भा ॥
मातु मंदि मइँ साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली[१] ॥

१—प्र० : बाली । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : ।ना] । [तृ० : ताना] । च० : प्र० ।

सपनेहुँ दोस कलेसु न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समझें निज अघ परिपाकू । जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ॥
हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा । एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू । लागत मोहि नीक परिनामू ॥
दो०–साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥
भूपति मरन प्रेम पनु राखी । जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं । जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥
महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा । करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । संकरु साखि रहेउँ येहि घाएँ ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू । कुलिस कठिन उर भएउ न बेहू ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जिअत जीव जड सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं बिषम बिष तामस[१] तीछी ॥
दो०–तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥
सुनि अति बिकल भरत बर बानी । आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभा खभारू । मनहुँ कमल बन परउ तुषारू ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
तात जायँ जिअँ करहु गलानी । ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥

१–[प्र० तापस]। द्वि० तामस [(अ) तापस]। तृ० द्वि०। च० द्वि० [(६) तापस]।

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥
दो०–मिटिहहिं पापप्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुख सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेमु नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥
तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें । करउँ काह असमंजस जी कें ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
तापर गुर मोहि आयेसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥
दो०–मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२६४॥
सुरगन सहित सभय सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
करत उपाउ बनत कछु नाहीं । राम सरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत भगति बस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुर काज भरत कें हाथा ॥
आन उपाउ न देखिअ देवा । मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि । निज गुन सील राम बस करतहि ॥
दो०–सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु ।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥
सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई । तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥
देखु देवपति भरत प्रभाऊ । सहज सुभाय बिबस रघुराऊ ॥

मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥
सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सँकोचू॥
निज सिर भारु भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायेसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥२६६॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥
अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥
पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥
जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँहँ समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जगु राउ रंकु भल पोच॥२६७॥

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मै साथ ॥२६८॥

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहिं बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥
देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू१। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत कें चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मै अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सतिभाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयेसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब ॥२६९॥

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥
चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥
करि प्रनामु तिन्ह राम निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भएउ गोसाईं॥

दो०—नाहिं त कोसलनाथ के साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भएउ अनाथ ॥२७०॥

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहि देखे तेहिं समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥

१—प्र० : अभारू। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): सिरभरू। [तृ०: सिरभारू]। च०: प्र०।

रानि कुचालि सुनत नरपालहि । सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ॥
भरत राजु रघुबर बनबासू । भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ॥
नृप बूझे बुध सचिव समाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥
नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी । पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाव कुभाऊ । आएहु बेगि न होइ लखाऊ ॥
दो०—गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति ।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति ॥२७१॥
दूतन्ह आइ भरत कइ करनी । जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥
धरि धीरजु करि भरत बड़ाई । लिए सुभट साहनी बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥
दुघरी साधि चले ततकाला । किये बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ॥
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस महि नाएउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥
दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु ।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥
गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहइ केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी । भएउ बहोरि रहब दिन चारी ॥
येहि प्रकार गत बासर सोऊ । प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मज्जनु पूजहि नर नारी । गनप गौरि तिपुरारि[१] तमारी ॥
रमारमन पद बंदि बहोरी । बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी । आनँद अवधि अवध रजधानी ॥

१—प्र० : गनय गौरि तिपुरारि । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : गनपति गौरि पुरारि] । [तृ० : गनपति गौरि पुरारि] । च० : प्र० ।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
येहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥
दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥२७३॥
सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ज्ञानी॥
येहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥
ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥
लरिकाइहिं तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे॥
दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥२७४॥
भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥
राम दरसु लालसा उछाहू। पथ स्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥
आवत जनकु चले येहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥
लगे जनकु मुनि जन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥
दो०—आस्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जात रघुनाथु॥२७५॥
बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा[१] ॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे ॥
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ॥

छं०—अवगाहि सोक[२] समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥

सो०—किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहिं कि मोह ममता निअराई। येह सिय राम सनेह बड़ाई ॥
बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू ॥
सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥
मुनि बहु बिधि बिदेहु समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए ॥
सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी ॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौनु बिचारू ॥

दो०—दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात ॥२७७॥

जे महिसुर दसरथपुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी ॥

१—[प्र० पावा]। द्वि० : आवा। तृ०, च० : द्वि० [(६) : पावा]।
२—प्र०, द्वि०, तृ० : सोक। [च० : सोच]।

हसनस गुर[१] जनक पुरोधा । जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥
लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू । इहाँ उचित नहिं असन अनाजू ॥
कहा भूप भल सबहि सोहाना । पाइ रजायेसु चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार ।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार ॥२७८॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहिं अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि आयेसु पाई ॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन सुंदर सुधा समाना ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फलहार ॥२७९॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं ॥
सीता राम संग बनबासू । कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन रामु बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥
दाहिन दइउ होइ जब सबहीं । राम समीप बसिअ बन तबहीं ॥

१—[प्र० । पुर] । द्वि०, तृ०, च० । गुर [(६) । पुर] ।

मंदाकिनि मज्जनु तिहुँ काला । राम दरसु मुद मंगल माला ॥
अटनु रामगिरि बन तापस थल । असनु अमिअ सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

दो०—येहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु ।
सहज सुभाय समाज दुहुँ राम चरन अनुरागु ॥२८०॥

येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समयँ पठाईं । दासीं देखि सुअवसरु आईं ॥
सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनकराज रानिवासू ॥
कौसल्याँ सादर सनमानी । आसन दिए समय सम आनी ॥
सीलु सनेहु सकल[1] दुहुँ ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥
सब सिय राम प्रीति कि सी मूरति । जनु करुना बहु बेष बिसूरति ॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी । जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥२८१॥

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा । बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥
कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता । जो[2] सुभ असुभ सकल फलदाता ॥
ईस रजाइ सीस सबही कें । उतपति थिति लय बिषहु अमी कें ॥
देबि मोहबस सोचिअ बादी । बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥
भूपति जिअब मरब उर आनी । सोचिअ सखि लखि निज हितहानी ॥
सीयमातु कह सत्य सुबानी । सुकृती अवधि[3] अवधपति रानी ॥

१—प्र० : सकल । द्वि० : प्र० [(५) : सरस] । [तृ० : सरस] । च० : प्र० ।
२—प्र० जो । द्वि० : प्र० । [तृ० : सो] । च० : प्र० ।
३—[प्र० : अवध] द्वि०, तृ०, च० : अवधि [(६) : अवध] ।

दो०—लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हिय कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥२८२॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू बिबुध[1]सरि बारी॥
रामसपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहौं सखी सतिभाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीने। सागर सीपि कि जाहिं उलीचे॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समय सुभाएँ॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥२८३॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं येह मत मानइ महीप मन॥
तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भईं मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥
सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राममातु सुनि उठी सप्रीती॥

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेह सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस[2] गति कै मिथिलेसु सहाय॥२८४॥

लखि सनेहु सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गहे पायं पुनीता॥

१—प्र० : बिबुध। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : देव]। [तृ० : देव]। च० : प्र० [(८) : देव]।

२—[प्र० : भूप]। द्वि०, तृ०, च० : ईस [(६) : भूप]।

देवि उचित असि विनय तुम्हारी । दसरथ घरिनि राम महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तिन धरहीं ॥
सेवक राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ॥
रौरे अंग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू । अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥
अमर नाग नर राम बाहु बल । सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा । देबि न होइ मुधा मुनि भाखा ॥
दो०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयेसु पाइ ॥२८५॥
प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही । जो जेहिं जोगु भाँति तेहिं तेही ॥
तापस बेष जानकी देखी । भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी ॥
जनक रामगुर आयेसु पाई । चले थलहिं सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन पेम प्रान की ॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू । भएउ भूप मनु मनहुँ पयागू ॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा । ता पर राम पेम सिसु सोहा ॥
चिरजीवी मुनि ग्यानु बिकल जनु । बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु ॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की । महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥
दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि ।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि ॥२८६॥
तापस बेष जनक सिय देखी । भएउ पेमु परितोषु बिसेषी ॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥
जिमि सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे । येहि कियें साधु समाज घनेरे ॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी । सीय सकुच महुँ[१] मनहुँ समानी ॥

१—प्र० : महुँ । [द्वि० : महि] । तृ०,च० : प्र० ।

पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई । सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं । इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ । हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥
दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि ।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि ॥२८७॥
सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव बंध बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोरि[१] भरत महिमा ही । कहइ काह छलि छुअति न छाँही ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥
भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू ॥
दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि ।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबि कुल मति सकुचानि ॥२८८॥
अगम सबहि बरनत बर बरनी । जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ । तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं । सब कर भल सब कें मन माहीं ॥
देवि परंतु भरत रघुबर की । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की । जद्यपि रामु सींव[२] समता की ॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥

१—[प्र० : मोर] । द्वि०, तृ० : मोरि । [च० : मोर] ।
२—प्र० : सींव । द्वि० : प्र० [(?) : सीय] । तृ० : प्र० । [च० : सीय] ।

दो०-मोरेहुं भरत न पेलिहहिं मनसहुं राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ ॥२८९॥
राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरतु पुरजन महतारीं। सोक बिकल बनबास दुखारीं ॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू ॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सब ही कर रौरें हाथा ॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ ॥
तुम्ह बिन राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा ॥

दो०-प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम ॥२९०॥
सो सुख करम धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू ॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्हते हीं। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केहीं ॥
राउर आयेसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें ॥
आपु आस्रमहिं धारिअ पाऊ। भएउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए[१]। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए ॥
राम बचन गुर नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए ॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरमसहित हित होई ॥

दो०-ज्ञाननिधान सुजान सुचि धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ येहि काल ॥२९१॥
सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्हि भलि नाहीं ॥
रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेमु प्रवाना ॥

हम अब बन तें बनहि पठाई । प्रमुदित फिरत बिबेक बड़ाई[१] ॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी । भए प्रेमबस बिकल बिसेषी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा । चले भरत पहिं सहित समाजा ॥
भरत आइ आगें भइ लीन्हे । अवसर सरिस सुआसन दीन्हे ॥
तात भरत कह तेरहुतिराऊ । तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥

दो०—राम सत्यब्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु ।
संकट सहत सकोचबस कहिअ जो आयसु देहु ॥२९२॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी । बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू । कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू । ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयेसु अनुगामी । जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥
येहिं समाज थल बूझब राउर । मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता । छमब तात लखि बाम बिधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवाधरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू । बैरु अंधु प्रेमहि न प्रबोधू ॥

दो०—राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि ।
सब कें समत सर्ब हित करिअ प्रेमु पहिचानि ॥२९३॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ॥
ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी । गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूपु भरतु मुनि साधु समाजू । गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा । मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥
देव प्रथम कुलगुर गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ॥
राम भगतिमय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥

१—प्र० । बड़ाई । द्वि० प्र० [(ख) (ग) (ग अ) : बड़ाई] । [तृ० । बड़ाइ] । च० : प्र० ।

सब कोउ राम पेममय पेखा। भए अलेख सोचबस लेखा॥
दो०—रागु सनेह सँकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भएउ अकाजु॥२९४॥
सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥
बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मोसन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर[१] चोरी॥
भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥
दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥२९५॥
करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा[२]॥
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥
तात राम जस आयेसु देहू। सो सबु करइ मोर मत येहू॥
सुनि रघुनाथु जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥
बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायेसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥
दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख बनइ न उत्तरु देत॥२९६॥

१—प्र०: चंडकर। [द्वि०, तृ०: चंदु कर]। च०: प्र०।
२—[प्र० तथा (६) में यह अर्द्धाली नहीं है]।

सभा सकुचबस भरत निहारी । राम बंधु धरि धीरजु भारी ॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ॥
सोक कनकलोचन मति छोनी । हरी बिमल गुनगन जग जोनी ॥
भरत बिबेक बराहँ बिसाला । अनायास उधरी तेहिं काला ॥
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । रामु राउ गुर साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा । कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥
हियँ सुमिरी सारदा सुहाई । मानस तें मुखपंकज आई ॥
बिमल बिबेक धरम नय साली । भरत भारती मंजु मराली ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु ।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित अंतरजामी ॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू । प्रनत पालु सर्बग्य सुजानू ॥
समरथु सरनागत हितकारी । गुन गाहकु अवगुन अघ हारी ॥
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मैं साइँ दोहाईं ॥
प्रभु पितु बचन मोहबस पेली । आएउँ इहाँ समाजु सँकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुरु मीचू ॥
राम रजाइ मेटि मन माहीं । देखा सुना कतहु कोउ नाहीं ॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥

दो०—कृपाँ भलाईं आपनी नाथ कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई । जगत बिदित निगमागम गाई ॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील निरीस निसंकी ॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए । सकृत प्रनामु किहें अपनाए ॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी । आपु समाज[1] साज सब साजी ॥

१—प्र०: समाज । द्वि०: प्र० [(४) (५) समान] । [तृ०: समान] । च०: प्र० ।

निज करतूति न समुझिअ सपने । सेवक सकुच सोच उर अपने ॥
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहौं पन रोपी ॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना । गुन गति नट पाठक आधीना ॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमौर ।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर ॥२९९॥

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ । आएउँ लाइ रजायेसु बाएँ ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा । सबहिं भाँति भल मानेउ मोरा ॥
देखेउँ पाय सुमंगल मूला । जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू । बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥
कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई । कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं । अपने सील सुभायँ भलाईं ॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोचु बिहाई ॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी । छमिहि देउ अति आरत जानी ॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि ।
आयेसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥३००॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख सींव सुहाई ॥
सो करि कहौं हिये अपने की । रुचि जागत सोवत सपने की ॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा । सो प्रसादु जनु पावइ देवा ॥
अस कहि प्रेम बिबस भए भारी । पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥

छं०—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाजु मुनि मिथिलाधनी ।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी ॥

भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ॥
सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नर नारि सब ।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत ॥३०१॥
कपट कुचालि सींव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काक समान पाकरिपु रीती । छली मलिन कतहूँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला । सो उचाटु सब कें सिर मेला ॥
सुर माया सब लोग बिमोहे । राम प्रेम अतिसय न बिछोहे ॥
भय उचाट बस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं ॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी । सरित सिंधु संगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवा निजु[१] जानू ॥
दो०—भरतु जनकु मुनिजन[२] सचिव साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देवमाया सबहिं जथाजोगु जनु पाइ ॥३०२॥
कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निज सनेह सुरपति छल भारे ॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री । भरत भगति सब कै मति जंत्री ॥
रामहि चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू । प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी ॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी । कबि कुल कानि मानि सकुचानी ॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई । मति गति बाल बचन की नाईं ॥
दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि ।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि ॥३०३॥

१—प्र० : मघवा निजु जानू । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : मघवान जुबानू] ।
२—प्र० : मुनिगन । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : मुनिजन ।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघु मति चापलता कवि छमहू ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबहीं की । राम सुजान जानि जन जी की ॥
धरम धुरीन धीर नय नागर । सत्य सनेह सील सुखसागर ॥
देसु कालु लखि समौ समाजू । नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥
बोले बचन बानि सरबसु से । हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ॥
दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥२०४॥

जानहु तात तरनि कुल रीती । सत्यसंध पितु कीरति प्रीती ॥
समौ समाजु लाज गुरजन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥
तुम्हहि बिदित सबही कर करमू[१] । आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥
तात तात बिनु बात हमारी । केवल गुर कुल कृपाँ सँभारी ॥
नतरु प्रजा पुरजन[२] परिवारू । हमहि सहित सबु होत खुआरू ॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू । जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा । मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥
दो०—राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम ।

गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥२०५॥

सहित समाज तुम्हार हमारा । घर बन गुर प्रसाद रखवारा ॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनीधर सेसू ॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक[३] एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥

१—प्र० करमू । द्वि० प्र० [तृ० मरमू] । तृ०, च० प्र० ।
२—प्र० पुरजन । द्वि० प्र० । [तृ० परिजन] । च० प्र० [( ) परिजन] ।
३—प्र० साधक । द्वि० प्र० [(२)(४)(५) साधन] । [तृ० साधन] । च० प्र० ।

सो बिचारि सहि संकटु भारी । करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बाटी बिपति सबहिं मोहि भाई । तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा । कुसमयँ तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाये । ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाये ॥
दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०६॥
सभा सकल सुनि रघुबर बानी । प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी ॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ॥
भरतहि भएउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू ॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू । भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी । बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भएउ सुखु साथ गए को । लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥
अब कृपाल जस आयेसु होई । करउँ सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देउ[1] मोहि देई । अवधि पारु पावउँ जेहि सेई ॥
दो०—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥
एकु मनोरथु बड़ मन माहीं । सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयेसु पाई । बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट मुनिथल तीरथ बन । खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी । आयेसु होइ त आवउँ देखी ॥
अवसि अत्रि आयेसु सिर धरहू । तात बिगत भय कानन चरहू ॥
मुनि प्रसादु बनु मंगलदाता । पावन परम सुहावन भ्राता ॥
रिषिनायकु जहँ आयेसु देहीं । राखेहु तीरथजलु थल तेहीं ॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा । मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥

१—प्र० देउ । द्वि० प्र० [(२) (३) (५अ). देइ] । [तृ० . देइ] । च० : प्र० [(८)· देइ] ।

दो०—भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल ॥३०८॥
धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं ॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भएउ उछाहू ॥
भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन ॥
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहुँ समाज हियँ हरषु बिषादू ॥
राममातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई ॥
दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥
भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा ॥
बिधि बस भएउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥
दो०—कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनाएउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥
कहत धरम इतिहास सप्रीती। भएउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयेसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादें। चले रामबन अटन पयादें ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥

कुस कटक काँकरी कुराईं । कटु[१] कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे । बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं । बिटप फूलि फलि तृन मृदुता हीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल राम प्रिय जानी ॥
दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात ।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ येह न होइ बड़ि बात ॥३११॥
येहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं । नेम प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा । खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेषी । बूझत भरतु दिव्य सबु देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ । हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा । कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा ॥
कतहुँ बैठि मुनि आयेसु पाई । सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा । देहिं असीस मुदित बनदेवा ॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई । प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥
दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माँझ ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ ॥३१२॥
भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तेरहुतिराजू ॥
भल दिनु आजु जानि मन माहीं । रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
गुर नृप भरत सभा अवलोकी । सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सीलु सराहि सभा सब सोची । कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥
भरत सुजान राम रुख देखी । उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी ॥
करि[१] दंडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहि लगि सबहिं सहेउ[२] संतापू । बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥

१—प्र० : कटु । [द्वि०, तृ० कटुक] । च० प्र० ।
२—प्र० : सबहि सहेउ । द्वि० : प्र० । [तृ० : सहेउ सबन्ह] । च०: प्र० [(८) सहेउ सबहिं] ।

अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥
दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जनु देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥३१३॥
पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि[१] सरस सनेह सगाईं॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू॥
स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपाल पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोच खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहूँ। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहूँ॥
येह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोचु सिखइअ अनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर-बिबरन गति हंसी॥
दो०—दीनबंधु पुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसरु सरिस बोले रामु प्रबीन॥३१४॥
तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयेसु पालिअ दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहि न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भर जाई॥
देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुर पद रजहि लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
दो०—मुखिआ मुखु सों चाहिअइ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक॥३१५॥
राजधरम सरबसु एतनोईं। जिमि मन माँह मनोरथ गोईं॥

१—प्र० : सुचि। द्वि० : प्र [(३) (४) (५) : रुचि]। [तृ० : रुचि]। च० : प्र०।

बधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सीलु गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक[१] प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥
दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ॥३१६॥
सो कुचालि सब कहँ भै नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा[२]। हहरि मरत सब लोग कुरोगा[२]॥
राम कृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। रामप्रेम रसु कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥
मुनिगन गुर धुरधीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुमपत्र जिमि जग जल जाए॥
दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥३१७॥
जहाँ जनक गुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥
सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥

१—प्र० : जामिक। द्वि०, तृ, च० : प्र० [(६) · जामनि]।
२—प्र० : क्रमश बियोगी, कुरोगी। द्वि : बियोगा, कुरोगा। तृ०, च० . द्वि०।

मुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥
दो०—लखनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥३१८॥
सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयावस बड़ दुखु पाएउ। सहित समाज काननहिं आएउ॥
पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥
सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥
दो०—भरतमातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥३१९॥
परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकीं मँगाईं। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥
हृदयँ रामु सिय लखनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥
दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परननिकेत॥३२०॥
बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥

कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेमबस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो ॥

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर।
भगति ज्ञानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ॥३२१॥

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू ॥
प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुप चाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पारु सब भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू ॥
सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी ॥

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बर बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयेसु देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए ॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
आयेसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा ॥

समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥
दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥३२३॥
राममातु गुर पद सिरु नाई। प्रभुपद पीठ रजायेसु पाई॥
नंदिगाँव करि परनकुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥
जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सपेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिनु तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमाबिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥
दो०—राम पेम भाजन भरतु बड़े न येहि करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति॥३२४॥
देह दिनहु दिन दूबरि होई। घटइ[१] तेजु बलु मुख छबि सोई॥
नित नव राम पेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥
जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ बिमल अकासा॥
ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती[२]॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥
दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
माँगि माँगि आयेसु करत राज काज चहुँ[३] भाँति॥३२५॥

१—प्र० : घटत न। [द्वि० : (३) (५अ) घटत, (४) (५) घट न]। [तृ०: घट न]। च० : घटइ।
२—प्र० तथा (६) में यह अर्द्धाली नहीं है]।
३—प्र० : चहुँ। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ) : बहु]। [तृ० : बहु]।। च० : प्र०।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीहँ नाम जपु लोचन नीरू॥
लखनु रामु सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरतु सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महा मोह निसि दलन दिनेसू॥
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

छं०—सिय राम पेम पिऊष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

सो०—भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भवरस बिरति॥३२६॥

इति श्री मद्रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने
द्वितीय: सोपान: समाप्त:॥

श्रीगणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री राम चरित मानस

तृ ती य सो पा न

अरण्य कांड

श्लो०—मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहं।
मोहांभोधरपूग[1] पाटनविधौ स्वःसंभवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियं ॥
सांद्रानंदपयोदसौभगतनुं पीतांबरं सुंदरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्मरति ॥

पुर नर[2] भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥
एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥
सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥

१—प्र० : पूग। द्वि० : प्र०। [तृ० : पुञ्ज]। च० : प्र।
२—प्र० : पुर नर। द्वि० : प्र०। [तृ० : पुर जन]। च० : प्र [(८): पूरन]।

सीता चरन चोंच हति भागा । मूढ़ मंद मति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक संधाना ॥
दो०--अतिकृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह ।
ता सनु आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह ॥ १ ॥
प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा । चला भाजि[१] बाइसभय पावा ॥
धरि निज रूप गएउ पितु पाहीं । राम बिमुख राखा तेहि नाहीं ॥
भा निरास उपजी मन त्रासा । जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका । फिरा स्रमित ब्याकुल भय सोका ॥
काहूँ बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना । सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥
मित्र करै सत रिपु कै करनी । ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी ॥
सब जगु ताहि[२] अनलहुँ[३] तें ताता । जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥
नारद देखा बिकल जयन्ता । लागि दया कोमल चित संता ॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही । कहेसि पुकारि प्रनतहित पाहीं ॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥
निजकृत कर्म[४] जनित फल पाएउँ । अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउँ ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी । एक नयन करि तजा भवानी ॥
सो०--कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥ २ ॥
रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति[५] सुधा समाना ॥

१—प्र० : भाजि । द्वि० : प्र० । [तृ० : भाजि] । च० : प्र० ।
२—प्र० : ताहि । द्वि० : प्र० [(१) : तेहि] । तृ०, च० : प्र० ।
३—प्र० : अनलहु । द्वि० : प्र० । [तृ० : अनल] । च० : प्र० ।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : कर्म [(६) : धर्म] ।
५—प्र० : श्रुति । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) श्रति, (८) मद] ।

बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गएऊ । सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए । देखि रामु आतुर चलि आए ॥
करत दंडवत मुनि उर लाए । प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने । सादर निज आस्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए । दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ।
मुनिबर परमप्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

छ०—नमामि भक्तवत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।
भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ॥
निकाम श्याम सुंदरं । भवांबुनाथ मंदरं ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ॥
प्रलंब बाहु विक्रमं । प्रभो ऽप्रमेय वैभवं ।
निषंग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ॥
दिनेश वंश मंडनं । महेश चाप खंडनं ।
मुनींद्र संत रंजनं । सुरारि वृंद भंजनं ॥
मनोज वैरि वंदितं । अजादि देव सेवितं ।
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहं ॥
नमामि इंदिरापतिं । सुखाकरं सतां गतिं ।
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपति प्रियानुजं ॥
त्वदंघ्रिमूल ये नराः[१] । भजंति हीनमत्सराः[१] ।
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥
विविक्तवासिनस्सदा । भजंति मुक्तये मुदा ।

१—प्र० : कमश : नरा :, मत्सरा : [(२) नरा मत्मरा] । द्वि० : प्र० [(३) (५अ), नरा, मत्सरा] । [तृ० : नरा, मत्सरा] । च० : प्र० [(६) : नरा, मत्सरा] ।

निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ॥
त्वमेकमद्भुतं प्रभु। निरीहमीश्वरं विभुं।
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥
भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं।
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं ॥
अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजापतिं।
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्जभक्ति देहि मे ॥
पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं।
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीयभक्तिसंयुता[1] ॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥ ४ ॥

अनसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ[2] निकट बैठाई ॥
दिव्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस[3] मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥
मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब[4] सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं[5] चारी ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥

१—प्र० सयुना [(२) संयुना]। द्वि० प्र० [(५) सुना, (५ अ) सयुन]। तृ० सुन]। [च० (६) संयुना, (८) संयुन]।
२—प्र० देइ। द्वि० प्र०। [तृ० दीन्हि]। च० प्र०।
३—प्र० सरस। द्वि० प्र०[(३) (५ अ) सरल]। [तृ० सरल]। च० प्र०[(८) सरल]।
४—प्र० मितप्रद सब। द्वि० प्र०। [तृ० मित सुखप्रद]। च० प्र०।
५—प्र०, द्वि०, तृ०, च० परखिअहिं [(६) परखिहिं]।

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखै कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो[1] निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पतिबंचक परपति रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जन्म[2] जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय[3]॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम कहेउँ कथा संसार हित॥ ५॥

सुनि जानकीं परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयेसु होइ[4] जाउँ बन आना॥
संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥
जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथबादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पियारे। दीनबंधु मृदु बचन उचारे॥
अब जानी मैं श्रीचतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥
केहि बिधि कहौं जाहु अब[5] स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥

१—प्र० : सो। द्वि० : प्र०। [तृ० : तै]। च० : प्र०।
२—[प्र० : -न्मि]। द्वि०,तृ०, च० : जन्म।
३—प्र० : हरिहि प्रिय। [द्वि०: हरिप्रिया]। तृ०, च०: प्र० [(८): हरिप्रिया]।
४—प्र० : होइ। द्वि० : प्र०। [तृ० : होउ]। च० : प्र०।
५—प्र० : अब। [द्वि०, तृ०: बन]। च० : प्र०।

अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥
छं०—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ज्ञान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई॥
दो०—कलिमल समन दमन दुख राम सुजस सुख मूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥
सो०—कठिन काल मल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥ ६॥
मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगे रामु अनुज[१] पुनि पाछे। मुनिबर बेष बने अति काछे[२]॥
उभय बीच श्री सोहइ[३] कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर[४] बाटा॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥
दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जनम सरभंग॥ ७॥
कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राज मराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन अइहहिं रामा॥
चितवत पंथ रहेउँ दिनु राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥

१—प्र० : अनुज। द्वि० : प्र०। [तृ० : लखन]। च० : प्र०।
२—प्र० : काछे। द्वि० : प्र० [(५): आछे]। [तृ० : आछे]। च० : प्र०।
३—प्र० : सोहइ। द्वि० : प्र० [(५अ): सोहति]। [तृ० : सोहनि]। च० : प्र०।
४—प्र० : बर। द्वि० : प्र०। [तृ० : सब]। च० : प्र०।

नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥
सो कछु देव न मोहि निहोरा । निज पन राखेहु जन मन चोरा ॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी । जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी ॥
जोग जग्य जप तप जन कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ॥
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा ॥
दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ॥ ८ ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरिलीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥
रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी ॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा । जयति प्रनतहित करुनाकंदा ॥
पुनि रघुनाथ चले बन आगें । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूँछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
जानत हूँ पूँछिअ कस स्वामी । सबदरसी[१] तुम्ह[२] अंतरजामी ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥
दो०- निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आस्रमहि[३] जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ९ ॥
मुनि अगस्ति[४] कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीछन रति भगवाना ॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥
प्रभु आगवनु स्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
हे[५] बिधि दीनबंधु रघुराया । मो से सठ पर करिहिं दाया ॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं । मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥

१—प्र० : सबदरसी । द्वि० : प्र० [(५): समदरसी] । तृ०,च० : प्र० ।
२—प्र० : तुम्ह । द्वि०: प्र० [(५अ): सब] । तृ० : उर] । च०: प्र० ।
३—प्र० : आस्रमहि । [द्वि० : आस्रमन्हि] । [तृ०: आस्रम] । च० : प्र० ।
४—[प्र०: अगस्त्य] । द्वि०, तृ०,च० : अगस्ति [(८): अगस्त्य] ।
५—प्र० : हे । द्वि० : प्र० [(३)(४): हे] । [तृ० : हे] । च० : प्र० [(८):हे] ।

मोरें जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ज्ञान मन माहीं॥
नहि सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की॥
होइहहिं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि[१] जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा॥
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनसफल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥
मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग[२] न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीनमनि फनिबर जैसें॥
आगे देखि रामु तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥

दो०—तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आस्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥१०॥

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवनि बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥
स्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरं॥

१—प्र० : पुनि। [द्वि०, तृ० : पुनि]। च० : प्र०।
२—[प्र० : जाग]। द्वि०, तृ०, च०: जाग [(६): जाग]।

पाणि चाप शर कटि तूणीरं । नौमि निरंतर, श्री रघुवीरं ॥
मोह विपिन घन दहन कृसानु[१] । संत सरोरुह कानन भानु[१]॥
निशिचर करि बरूथ मृगराज[२] । त्रातु सदा नो भव खग बाज[२] ॥
अरुण नयन राजीव सुवेशं । सीता नयन चकोर निशेशं ॥
हर हृदि मानस बाल[३] मरालं । नौमि राम उर बाहु विशालं ॥
संशय सर्प ग्रसन उरगादः[४] । शमन सु कर्कश तर्क विषाद[४] ॥
भव भंजन रंजन सुर यूथ[५] । त्रातु सदा नो कृपा बरूथ[५] ॥
निर्गुण सगुण विषम सम रूपं । ज्ञान गिरा गोऽनीतमनूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महिभारं ॥
भक्त कल्प पादप आराम[६] । तर्जन क्रोध लोभ मद काम[६] ॥
अतिनागर भवसागर सेतु[७] । त्रातु सदा दिनकर कुल केतु[७] ॥
अतुलित भुज प्रताप बल धाम[८] । कलि मलविपुल विभंजन नाम[८] ॥
धर्मवर्म नर्मद गुनग्राम[९] । सतत शं तनोतु मम राम[९] ॥
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सबके हृदय निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु[१०] मनसि मम काननचारी ॥
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी । सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसलपति राजिव नयना । करहु सो रामु हृदय मन अयना ॥
अस अभिमान जाइ जनि भोरें । मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥

१—प्र० . क्रमश कृशानु, भानु । [द्वि०, तृ० कृशानु, भानु] । च० प्र० ।
२—प्र० मृगराज बाज । [द्वि०, तृ० मृगराज, बाज] । च० प्र० ।
३—प्र० बाल । द्वि०, तृ०, च० प्र० [(६) राज] ।
४—प्र० उरगाद, विषाद । [द्वि०, तृ० उरगादं, विषादं] । च० प्र० ।
५—प्र० यूथ, बरूथ । [द्वि०, तृ० यूथं, बरूथं] । च० प्र० ।
६—प्र० क्रमश आराम, काम । [द्वि०, तृ० आरामं, कामं] । च० प्र० [(६) आरामं, कामं] ।
७—प्र० सेतु केतु । द्वि०, तृ० सेतुं, केतुं] । च० प्र० ।
८—प्र० धाम, नाम । [द्वि०, तृ० धाम नामं] । च० प्र० [(.)धाम, नाम]
९—प्र० ग्राम, राम । [द्वि०, तृ० ग्रामं] रामं] । च० प्र० ।
१०—प्र० . बसतु । द्वि० प्र० [(४) बसहु] । [तृ० बसहु] । च० प्र० ।

सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परै मूठ[1] का साँचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिज्ञाना। होहु सकल गुन ज्ञान निधाना॥
प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥
दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा नेहकाम॥ ११॥
एवमस्तु कहि[2] रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाए। भए मोहि येहि आश्रम आए॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिये संग बिहँसे द्वौ भाई॥
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आसन पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाये[3]। हरि बिलोकि लोचन जल छाये[3]॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई॥
सादर कुसल पूँछि मुनि ज्ञानी। आसन पर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥
जहँ लगि रहे अमर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुख कंदा॥
दो०—मुनि समूह महँ[4] बैठे सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥ १२॥

१—प्र०: मूठ। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६) झूठ]।
२—प्र०: करि। द्वि०: कहि। तृ०, च०: द्वि०।
३—प्र०: क्रमशः: धाये, छाये। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६) धाए छाए]।
४—प्र०: महँ। द्वि०, तृ० च०: प्र० [(६) मों]।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आएउँ । तातें तात न कहि समुझाएउँ ॥
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारौं मुनि[१] द्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहिं का जानी ॥
तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी । जानौं महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि[२] तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जंतु समाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला । तव भय डरत सदा सोउ काला[३] ॥
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं । पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं ॥
यह बर मागौं कृपानिकेता । बसहु हृदय श्री[४] अनुज समेता ॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा । चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता । अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ॥
अस तव रूप बखानौं जानौं । फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई । ताते मोहि पूछेहु रघुराई ॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पञ्चबटी तेहि नाऊँ ॥
दंडक बनु पुनीत प्रभु करहू । उग्र स्राप मुनिबर कै हरहू ॥
बास करहु तहँ रघुकुल राया । कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयेसु पाई । तुरतहि पञ्चबटी नियराई ॥

दो०—गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ[५] ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ ॥ १३ ॥

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥

१—प्र० : मुनि । द्वि० : प्र० [(४अ) सुर] । [तृ० : सुर] च० : प्र० ।
२—प्र० ऊमरी । द्वि० : प्र० । [तृ० : ऊमरी] । च० : प्र० ।
३—[यह अर्धाली तृ० में नहीं है]
४—प्र० : श्री । द्वि० : प्र० [(५ अ) सिय] । [तृ० : सिय] । च० : प्र० ।
५—प्र० बढ़ाइ । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बढ़ाइ ।

गिरि बन नदी ताल छबि छाए । दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥
खग मृग बृंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुँजत छबि लहहीं ॥
सो बनु बरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥
एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छल हीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं । मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं ॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

दो०-ईस्वर जीव[1] भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ ।
जा तें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ १४ ॥

थोरेह महु सबु कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मन चितु लाई ॥
मै अरु मोर तोर तैं माया । जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । बिद्या अपर[2] अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा । जा बस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचै जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं । देखि ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी । त्रिन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥

दो०-माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छप्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव ॥ १५ ॥

धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना । ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जा तें बेगि द्रवउँ मै भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होइ अनुकूला ॥

---

१ – प्र० : जीव । [द्वि०, तृ० : जीवहि] । च० प्र० [(६) जीवहि] ।
२—प्र० : अप । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) अपार] ।

भगति के[१] साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अतिप्रीती। निज निज कर्म[२] निरत स्रुति रीती ॥
येहि कर फल पुनि[३] बिषय बिरागा। तब मम धर्म[४] उपज अनुरागा ॥
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अतिप्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके ॥

दो०—बचन करम मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम[५]।
तिनके हृदय कमल महुँ करौं सदा बिश्राम ॥ १६ ॥

भगतिजोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥
सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ॥
पचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥
भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक[६] मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी ॥
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम सम पुरुष न मो सम नारी। येह[७] सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ॥

१—[प्र० : कि]। द्वि०, तृ०, च० : के।
२—प्र० : कर्म। द्वि० : प्र०। [तृ० : धरम]। च० : प्र० [(६) धर्म]।
३—प्र० : मन। द्वि० : पुनि। तृ०, च० : द्वि०।
४—प्र० : धर्म। द्वि : प्र० [(५ अ) चरन]। [तृ० : चरन]। च० : प्र० [(८)चरन]।
५—[प्र० : निष्काम]। द्वि० : निःकाम। तृ०, च० : द्वि० [(६) निष्काम]।
६—प्र० : सक। द्वि० : प्र० [(४) (५) सकि]। तृ०, च० ; प्र०।
७—प्र० : येह। द्वि० : प्र०। [तृ० : अस]। च० ; प्र०।

ता तें अब लगि रहिउँ कुमारी[१] । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहै कुमार[२] मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समथ[३] कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी । ब्यसनी धन सुभगति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुमानी[४] । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥
पुनि फिरि रामु निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥
तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥

दो०—लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्हि ।
ता के कर रावन कहुँ मनौ[५] चुनौती दीन्हि ॥ १७ ॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता[६] । धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहि पूंछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाए निसिचर निकर[७] बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥
नाना बाहन नानाकारा । नानायुध धर घोर अपारा ॥
सूपनखा आगे करि लीन्ही । असुभ रूप स्रुति नासा हीनी ॥

१—प्र० : कुमारी । द्वि० : प्र० । [तृ० : कुँआरी] । च० : प्र० ।
•२—प्र० : कुँआर । द्वि० : प्र० [(५) (५ अ) कुमार] । तृ० : कुमार । च० : प्र० ।
३—प्र० : समथ । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) समर्थ] । तृ० : प्र० । [च० : (६) समथ (८) समर्थ]
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : गुमानी [(६) गुनानी]
५—प्र० : द्वि० : मनौ । [तृ० : मनहुँ] । च० : प्र० [(६) मनहु]
६—[प्र० : बिलपाता] । द्वि०: बिलपाता [(४) बिलपाता] । [तृ० बिलपाता] । च०: प्र० ।
७—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : निकर [(६) बरन] ।

असगुन अमित होहिं भयकारी । गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥
कोउ कह जिअत धरहु द्वौ[1] भाई । धरि मारहु त्रिय लेहु छड़ाई ॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥
देखि राम रिपु दल चलि आवा । बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों ।
मरकत सयल पर लरत[2] दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों ॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत[3] सुभट ।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज ॥ १८ ॥

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी । थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खरदूषन । येह कोउ नृप बालक नर भूषन ॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते[4] हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु[5] तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु[5] द्वौ भाई ॥
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥

१—प्र० : द्वौ [(२) दोउ] । [द्वि०, तृ० : दोउ] । च० : प्र० ।
२—प्र० : लरत । द्वि० : प्र० [(४) (५अ) लसत] । [तृ० : लसत] च० : प्र० ।
३—प्र० : धावत । द्वि० : प्र० । [तृ० : धावत] । च० : प्र० ।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : हते [(६) हने] ।
५—प्र० : क्रमशः देहु, जाहु । [द्वि० : देहि, जाहु] । तृ०, च० : प्र० [(६) देहि, जाहि] ।

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर[1] फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू॥
रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेउ। सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ॥
छं०—उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए[2] बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा[3]।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥
सो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति॥
तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन स्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥१९॥
तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु[4] ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन तें जाइ॥
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार[5]। सनमुख तें करहिं प्रहार॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥

१—प्र० : घर [(?) पर]। द्वि०, तृ, च : प्र० [(६) गृह]।
२—प्र० : धाए। द्वि० : प्र०। [तृ० : धावहु]। च० : प्र०।
३—प्र० : भयावहा। द्वि० : प्र०। [तृ० : भयामहा]। च० : प्र०।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : बहु [(६) निज]।
५—[प्र० : अपार]। द्वि : प्रकार। तृ०, च० : द्वि० [(६) अपार]।

छांड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥
भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥
खग कंक काक सृगाल[1]। कटकटहिं कठिन कराल॥

छं०—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्प्पर[2] संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥
अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुडी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खरदूषन फिरे॥
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप स्रीरघुबीर पर अगिनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥
महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवधधनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाइ रिपु मारे छनमहुँ कृपानिधान॥

१—प्र० : सृगाल। [द्वि० : सकाल]। तृ० : प्र०। च० : प्र० [(६) सगाल]।
२—प्र० खप्पर। [द्वि०, तृ० : खप्पर]। च० प्र०।

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान ।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान ॥ २० ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सबके भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आए । प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
पंचवटी बसि श्रीरघुनायक । करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥
धुआँ देखि खरदूषन केरा । जाइ सुपनखा रावनु प्रेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिनुराती । सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राजु नीति बिनु धनु बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ ॥
संग तें जती कुमंत्र तें राजा । मान तें ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि बिबिधि बिलाप करि लागी रोदन करन ॥

दो०—सभा माँझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ॥ २१ ॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । केइँ तव नासा कान निपाता ॥
अवध नृपति दसरथ के जाए । पुरुषसिंघ बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहिं उन्ह कै करनी । रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुख दाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥

रूप रासि बिधि नारि[१] सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं[२] परिहासा ॥
खरदूषन सुनि लगे पुकारा । छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खरदूषन तिसिरा कर घाता । सुनि दससीस जरे सब गाता ॥
दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।
गएउ भवन अति सोचबस नींद परइ नहिं राति ॥२२॥
सुर नर असुर नाग खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥
खरदूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥
सुर रंजन भंजन महिभारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ येहा ॥
जौं नर रूप भूप सुत कोऊ । हरिहौं नारि जीति रन दोऊ ॥
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई । सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥
दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल[३] फल कंद ।
जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा सुखबृंद ॥ २३ ॥
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥
जबहिं राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥
लछिमनहूँ येह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा[४] भगवाना ॥
दसमुख गएउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथरत नीचा ॥

१—प्र० : नारि । द्वि० : प्र० । [तृ० : रची] । च० : प्र० ।
२—प्र० : भगिनि करहिं । द्वि० : प्र० । [तृ० : भगिनि करी] । च० : प्र० [(=) : भगिनी करि] ।
३—प्र० : मूल । द्वि० : प्र० । [तृ० : फूल] । च० : प्र० ।
४—प्र० : रचा । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(६) : रचेउ] ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥
दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूँछी बात ।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आएहु तात ॥ २४ ॥
दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी ॥
तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नर रूप चराचर ईसा ॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारे मरिअ जिआए जीजै ॥
मुनि मख राखन गएउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥
सत योजन आएउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ॥
भइ मम[1] कीट भृंग कै नाईं । जहँ तहँ मैं देखौ दोउ भाई ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा ॥
दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड ।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ॥ २५ ॥
जाहु भवन कुलकुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को जोधा ॥
तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि बिरोधे नहिं कल्याना ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि मानसगुनी[2] ॥
उभय भाँति देखा[3] निज मरना । तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें । कस न मरौं रघुपति सर लागे ॥
अस जिअँ जानि दसानन संगा । चला राम पद प्रेमु अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही । आजु देखिहौं परम सनेही ॥
छं०—निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं ।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥

१—प्र० : मम । द्वि० : प्र० [(५): मति] । तृ० च०, : प्र० ।
२—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : मानसगुनी [(२): मानमगुनी] ।
३—प्र० : देखा [(२): देखी] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(८): देखेसि] ।

निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहिं बधिहिं सुखसागर हरी॥

दो०—मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं धन्य न मो सम आन॥ २६॥

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपटमृग भएऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला॥
सत्यसंध प्रभु बधि करि येही। आनहु चर्म कहित बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सो[१] धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि बिधि प्रभुहि गएउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ[२] करि घोर पुकारा॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनिदुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥ २७॥

१—प्र० : सोइ। द्वि० : सो। तृ०, च० : द्वि०।
२—प्र० : परेउ। द्वि० : प्र०। [तृ० : परा]। च० : प्र०।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा । सोह चाप कर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता । कह लछिमन सन परम सभीता ॥
जाहु बेगि संकट[१] अति भ्राता । लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥
मरम बचन जब[२] सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥
सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती कें बेषा ॥
जा के डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दससीस स्वान की नाईं । इत उत चितइ चला भड़िहाईं[३] ॥
इमि कुपथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल[४] लेसा ॥
नाना बिधि करि कथा सुहाईं[५] । राजनीति भय प्रीति दिखाईं ॥
कह सीता सुनु जती गुसाईं । बोलेहु[६] बचन दुष्ट की नाईं ॥
तब रावन निज रूप देखावा । भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥
जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि काल बस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना[७] । मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥
दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ ॥२८॥
हा जगदेक[८] बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : सकट [(६): कष्ट] ।
२—प्र० : जब । द्वि० : प्र० । [तृ० : तब] । च० : प्र० ।
३—प्र० : भड़िहाईं । द्वि० : प्र० । [तृ० : भड़िआईं] । च० : प्र० ।
४—प्र० : बल । द्वि० : प्र० । [तृ० : लव] । च० : प्र० ।
५—प्र० : सुहाईं । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुनाईं] । च० : प्र० ।
६—प्र० : बोलेहु । द्वि० : प्र० । [तृ० : बोलहु] । च० : प्र० [(६): बोले] ।
७—प्र० : रिसाना । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): लजाना] । तृ०, च०: प्र० ।
८—प्र० : जगदेक । द्वि० : प्र० [(४) (५): जगदीस] । [तृ० : जगदेव] । च० : प्र० [(८) : जग एक] ।

आरति हरन सरन सुख दायक । हा रघुकुल सरोज दिन नायक ॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फलु पाएउँ कीन्हेउँ रोसा ॥
बिबिधि बिलाप करति[१] बैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥
बिनति मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी । भए चराचर जीव दुखारी ॥
गीधराज सुनि आरति बानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई । जिमि मलेछबस कपिला गाई ॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहौं जातुधानु कर नासा ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे । छूटै पबि पर्बत कहुँ जैसे ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई । निर्भय चलेसि न जानेहि[२] मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना । फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥
की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू येहा । मम कर तीरथ छाड़िहि देहा ॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥
राम रोष पावक अति घोरा । होइहि सलभ सकल कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही । दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना । काढ़िसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अदभुत करनी ॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता । ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥

१—प्र० : करति । [द्वि० : करत] । तृ०, च० : प्र० [(६): करत] ।
२—प्र० : जानेहि । द्वि० : प्र० [(४) (५)जानेसि, (५अ) जानसि] । तृ०, च० : प्र० [(८): जानै] ।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥
येहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ। बन असोक महुँ राखत भएऊ ॥
दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि[१] जतनु कराइ ॥
जेहिं बिधि कपट कुरग सँग धाइ चले श्री राम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम ॥ २९ ॥
रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरेहु अकेली। आएहु तात बचन मम पेली ॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं[२] ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ[३]। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ[३] ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूँछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी ॥
खजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
येहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥

१—प्र० : राखिसि। [द्वि० : राखेसि]। [तृ० : राखे]। च० : प्र० [(८) राखेसि]।
२—प्र० : मम सीता आस्रम महुँ नाहीं। द्वि०: मम मन सीता आस्रम नाहीं। तृ०, च० : द्वि०।
३—प्र० : क्रमश तहवाँ, जहवाँ। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) तहाँ, जहाँ]।

पूरनकामु राम सुखरासी । मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥
आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥
दो०—कर सरोज सिरु परसेउ कृपासिंधु रघुबीर ।
निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर ॥ ३० ॥
तब कह गीध बचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन येह गति कीन्ही । तेहिं[१] खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥
लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाईं ॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना । चलन चहत अब कृपानिधाना ॥
राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमौ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
सो मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ॥
परहित बस जिन्ह कें मन माहीं । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥
दो०—सीता हरन तात जनि कहेहु[२] पिता सन जाइ ।
जौं मैं रामु त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥
गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥
छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुनप्रेरक सही ।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं ।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥
बल मप्रमेय मनादि मज मव्यक्त मेक मगोचरं ।
गोविंद गोपर द्वंद्वहर बिज्ञान घन धरनीधरं ॥

१—प्र० : तेहिं । द्वि० : प्र० । [तृ० : तेइ] । च० : प्र० ।
२—[प्र०, द्वि०, तृ० : कहेहु] । च० : कहेह ।

जे[१] राम मन्त्र जपत सन्त अनन्त जन मन रंजन।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥
जेहि श्रुति निरंजन[२] ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ज्ञान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभावृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पश्यंति जं जोगी जतनु करि करत मन गो बस सदा[३] ॥
सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ[४] सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

दो०—अबिरल भगति माँगि बर गीध गएउ हरि धाम।
तेहिकी क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता ॥
दुर्बासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद देखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गंधर्ब कहौं मैं तोही। मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥

दो०—मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥ ३३ ॥

१—प्र० : जे। द्वि० • प्र०। [तृ० : जो]। च० : प्र० [(६) जो]।
२—प्र० : निरंजन। द्वि० • प्र०। [तृ० : निरंतर]। च० : प्र०।
३—प्र० : सदा। द्वि० • प्र०। [तृ० : जदा]। च० : प्र० [(६) : जदा]।
४—प्र० : बसउ [(२) बसेउ]। द्वि०, तृ०, च० : प्र०।

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥
कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥
ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृह आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर द्वौ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥३४॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम तें अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं अतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

दो०—गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥३५॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥

१—प्र० : दो [(३) : दोउ] । [द्वि०, तृ० : दोउ] । च० : प्र० ।
२—प्र० : मतिमंद । द्वि० : प्र० [(४) (५) : मतिमंद] । [तृ० : मतिमंद] । च० : प्र० ।
३—प्र० : कहिअ जैसा; जैसा । द्वि० : प्र० । [तृ० : जैसे, जैसो] । च० : प्र० ।

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सज्जन धर्मा ॥
सातव सम मोहिमय जग देखा । मो तें संत अधिक करि लेखा ॥
आठव जथालाभ संतोषा । सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महु एकौ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगिबृंद दुर्लभ गति जोई । तो कहुं आजु सुलभ भइ सोई ॥
मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी । जानहि कहु करि बर गामिनी ॥
पपासरहि जाहु रघुराई । तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा । जानतहूँ पूछहु मति धीरा ॥
बार बार प्रभु पद सिरु नाई । प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥

छं०—कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे ।
तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू ॥

दो०—जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ ३६ ॥

चले राम त्यागा बन सोऊ । अतुलित बल नरकेहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा । कहत कथा अनेक संबादा ॥
लछिमन देखु, बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥
हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ये आए ॥
संग लाइ करिनी करि लेहीं । मानहु मोहिं सिखावनु देहीं ॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥
देखहु तात बसंत सोहावा । प्रियाहीन मोहि भय उपजावा ॥

दो०–बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग[1] मदन कीन्हि बगमेल ॥
देखि गएउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ[2] मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात ॥ ३७ ॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी । बिबिध बितान दिए जनु तानी ॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए । जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते । ढेक महोख ऊँट बेसरा ते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतिर लावक पदचर जूथा । बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना । चातक बंदी गुन गन बरना ॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिबिध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन[3] सँग लीन्हे । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे ॥
लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

दो०–तात तीनि अति[4] प्रबल खल[5] काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥

१—प्र० : खग । द्वि० : प्र० । [तृ० : खगन] । च० : प्र० ।
२—प्र० : कीन्हेउ । द्वि० : प्र० । [तृ० : दीन्हेउ] । च० : प्र० [(८) : दीन्हेउ] ।
३—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : सेन [(६) : सेना] ।
४—प्र० : अति [(२) : ये] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(८) : ये] ।
५—प्र० : [(१), ये (२) अति] । द्वि० : मन । तृ०, च० : द्वि० [(८) : अति] ।

॥ लोभ के इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥ ३८ ॥

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै[1] दीनता देखाई । धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम कीं दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जापर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहौं मैं अनुभव अपना । सत्य[2] हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

॥ पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिये[3] जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥
॥ सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥ ३९ ॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सोहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस पनास[4] रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥

१—प्र० : कै। द्वि० : प्र० [(५) : कैं] [च० : प्र०]
२—प्र० : सत्य। द्वि० : प्र० [(३) (४) सत (५) सत्त] [तृ० : सत] [च० : प्र०]
३—प्र० : देखिये। द्वि० : प्र० [(५अ) : देखिय] [तृ० : देखिए] [च० : प्र० [(६) देखिअ]]
४—प्र० : पनास। द्वि० : परास [(६अ) : पनास] [तृ०, च० : द्वि०]

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

दो०—फल भार[1] नमित बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ ४० ॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकौं जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥
गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥
स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥

दो०—नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥ ४१॥

सुनहु[2] परम उदार रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक॥
देहु एक बरु माँगौं स्वामी। जद्यपि प्रभु जानत अंतरजामी॥
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करौं दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह माँगी॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर माँगौं करौं ढिठाई॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥

१—प्र०: भरेन नमि। द्वि० प्र० [(३)(४)(५): भरे नम्र]। [तृ०: भर नम्र]। च०
प्र० [(६): भर नम्र]।
२—प्र० द्वि०: [illegible]
तृ० [(८): उदार सहज]।

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥
दो०—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।
　　अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम ॥
　　एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।
　　तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नाएउ माथ ॥ ४२ ॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाह मैं चाहौं कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनि मुनि तोहि कहौं सह रोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखै महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखै जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भए तेहिं सुत पर माता । प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहुँ कहुँ काम क्रोध रिपु आही ॥
येह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं ॥
दो०—काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
　　तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ॥ ४३ ॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीषम सोखै सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहिं हरषप्रद बर्षा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा । होइ हिम तिन्हहि देति दुख मंदा[१] ॥
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥

१—प्र० : देति सुत । [द्वि० : (३) (४) (५) दहै सुख, (५अ) देत दुख] । तृ० : देति दुख । च० : प्र० ।

बुधि बलु सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

दो०—अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ता तें कीन्ह निवारन मुनि मैं येह जिय जानि ॥ ४४ ॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती । सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ज्ञान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम बिज्ञान बिसारद ॥
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा । कहहु नाथ भजन भवभीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह[1] तें मैं उन्हके बस रहऊँ ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्मगति[2] परम प्रबीना ॥

दो०—गुनागार संसार दुख[3] रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा । गुर गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिज्ञाना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित पर हित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकैं सारद श्रुति तेते ॥

१—प्र० : जिन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० जेहि] । च० : प्र० [(६) वा] ।
२—प्र० : धर्मगति । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) भगतिपच्छ] ।
३—प्र० : दुख । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुख] । च० : प्र० ।

छं०-कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

दो०-रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥
दीपसिखा सम जुबति तनु[1] मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसम्पादनो नाम तृतीयः सोपानः समाप्तः।

१—प्र० : जुबति तनु। [द्वि० : (१) (२) (३) (४) पुस्तकों (४अ) जुबति तन ... दोहा नहीं है]। च० : प्र० (४ख) • जुबती]।

श्रीगणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री राम चरित मानस

चतुर्थ सोपान

किष्किंधा कांड

श्लो०—कुन्देंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृंदप्रियौ ।
माया मानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥
ब्रह्मांभोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्यय
श्रीमच्छंभुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ।
संसारानयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥
जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहि पान किअ ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस ॥

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत निअराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सींवा ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जिअँ सयन बुझाई ॥

पठए[१] बालि होहिं मन मैला। भागौ तुरत तजौ येह सैला ॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गएऊ। माथ नाइ पूँछत श्रम भएऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥
दो०—जग कारन तारन भव[२] भजन भरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार ॥ १ ॥
कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूँछहु कस नर की नाईं ॥
तव माया बस फिरौं भुलाना। ता तें मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥
दो०—एक मंद मैं मोहबस कुटिल[३] हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥ २ ॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ॥
तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहै असोच बनइ प्रभु पोसें ॥

१—प्र० : पठए। द्वि० : प्र० [तृ० : पठवा]। च० : प्र०
२—प्र० : भव। द्वि० : प्र०। [तृ० : भवन]। च० : प्र०
३—प्र० : कुटिल। द्वि० : प्र०। [तृ० : कौस]। च० : प्र०।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
सुनु कपि जिअँ मानसि जनि ऊँना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥
दो०—सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥ ३ ॥
देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मइत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै[१] ॥
सो सीताकर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥
येहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुवौ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार येहि रीती। करिहहिं बिधि मोसन ये प्रीती ॥
दो०—तब हनुमंत उभय दिसि की[२] सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥
कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहिं नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता[३] ॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
माँगा रामु तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥

१—प्र० : करीजै [(२) : करदीजै] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : की । द्वि० : प्र० [(४) (१ अ) : कहि] । तृ० : प्र० । [च० : कह] ।
३—प्र० : बिलपाता । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बिलपाता ।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहौं सेवकाई । जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

दो०—सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव ।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥५॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ[१] भाई । प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ॥
अर्द्ध राति पुर द्वार पुकारा । बाली रिपु बल सहइ न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गएउँ बंधु सँग लागा ॥
गिरि बर गुहा पैठ सो जाई । तब बाली मोहि कहा बुझाई ॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा । नहि आवौं तब जानेसु मारा ॥
मास दिवस तहँ[२] रहेउँ खरारी । निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई । सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ॥
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं । दीन्हेउ मोहि राजु बरिआईं ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा । देखि मोहि जिअँ भेद बढ़ावा ॥
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला । सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥
इहाँ साप बस आवत नाहीं । तदपि सभीत रहौं मन माहीं ॥
सुनि सेवक दुख दीन दयाला । फरकि उठीं[३] द्वौ[४] भुजा बिसाला ॥

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहौं[५] बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत[६] गए न उबरिहि प्रान ॥ ६ ॥

१—प्र० : द्वौ । [द्वि०, तृ० : दोउ] । च० : प्र० ।
२—प्र० : तहँ । द्वि०, तृ० : प्र० [च० : सत] ।
३—प्र० : उठीं । द्वि० : प्र० । [तृ० : उठे] । च० : प्र० ।
४—प्र० : द्वै । द्वि० : (३) (४) (५) दोउ, (५ अ) द्वौ । तृ० : दोउ । [च० : द्वौ] ।
५—प्र० : मारिहौं । द्वि० : प्र० । [तृ० : मैं मारिहौं] । च० : प्र० ।
६—प्र० : सरनागत । द्वि० : प्र० । [तृ० : सरनागतहु] । च० : प्र० ।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
आगे कह मृदु बचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जा कर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रन धीरा ॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए[१] ॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बाली बध की भइ[२] परतीती ॥
बार बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥
उपजा ग्यान बचन तब बोला । नाथ कृपा मन भएउ अलोला ॥
सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥
ये सब राम भगति के बाधक । कहहिं संत तब पद अवराधक ॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । मायाकृत परमारथ नाहीं ॥
बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥
सपने जेहि सन होइ लराई । जागे समुझत मन सकुचाई ॥
अब प्रभु कृपा करहु येहि[३] भाँती । सब तजि भजन करौं दिनु राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनुपानी ॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा बचन मम मृषा न होई ॥

१—[प्र० : ढ़ढाए] । द्वि०, तृ०, च० : ढहाए ।
२—प्र० : बालि बधब इन्ह । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बाली बध की ।
३—प्र० : येहि । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : वेहि] ।

नट मर्कट इव सबहिं नचावत । रामु खगेस बेद अस गावत ॥
लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ[1] बंधु तेज बल सींवा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

दो०—कहइ बालि[2] सुनु भीरु[3] प्रिय समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं[4] तौ पुनि होउँ सनाथ ॥ ७ ॥

अस कहि चला महा अभिमानी । तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ[5] बाली अति तर्जा । मुठिका मारि महा धुनि गर्जा ॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा । मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला । बंधु न होइ मोर यह काला ॥
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा । तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥
मेली कंठ सुमन कै माला । पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥
पुनि नाना बिधि भई लराई । बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव करि हियँ हारा भय मानि ।
मारा बालि राम तब हृदय माँझ सर तानि ॥ ८ ॥

परा बिकल महि सर के लागें । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें ॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ । अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा । सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ॥

१—प्र० : द्वौ । [द्वि०, तृ० : दोउ] । च० : प्र० ।
२—प्र० : कहै बालि । द्वि० : कह बानी । [तृ० : करा बालि] । [च० : कह बानि] ।
३—प्र० : भीरु [(२) : मोहिं] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
४—प्र० : मारहिं [(२) : मारिहहिं] । द्वि० : प्र० [(४) मारिहिं, (५अ) मारिहहि] ।
[तृ० : मारिहैं] । च० : प्र० ।
५—प्र० : उभौ [(२) : उभै] द्वि० : प्र० [(५अ) : उभै] । तृ०, च० : प्र० ।

हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥
अनुज बधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावनु करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

दो०—सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ ९॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

छं०—सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जित पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमानबस प्रभु कहेउ राखु सरीरही॥
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरहीं॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
येह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥

दो०—राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ तें गिरत न जानइ नाग॥ १०॥

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति बर माँगी ॥
उमा दारुजोषित की नाईं । सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
तब सुग्रीवहि आयेसु दीन्हा । मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥
रामु कहा अनुजहि समुझाई । राजु देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥
दो०—लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज ।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहु अंगद कहुँ जुबराज ॥ ११ ॥
उमा राम सम हित जग माहीं । गुर पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब कैं येह रीती । स्वारथ लागि करहिं[1] सब प्रीती ॥
बालि त्रास ब्याकुल दिन राती । तन बहु ब्रन चिंता जर छाती ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ । अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ ॥
जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं । काहे न बिपति जाल नर परहीं ॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई । बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ॥
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा । पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई । रहिहौं निकट सैल पर छाई ॥
अंगद सहित करहु तुम राजू । संतन हृदयँ धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए । रामु प्रबरषन गिरि पर छाए ॥
दो०—प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ ।
रामु कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ ॥ १२ ॥
सुंदर बन कुसुमित अति सोभा । गुंजत मधुप निकर मधु लोभा ॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए । भए बहुत जब तें प्रभु आए ॥

१—प्र० : करहि । द्वि०, तृ० प्र० । [च० : करहिं] ।
२—प्र० : सोर । द्वि० : प्र० । [तृ० : मो] । च० : प्र० ।

देखि मनोहर सैल अनूपा । रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा ॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा । करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥
मंगलरूप भएउ बन तब तें । कीन्ह निवास रमापति जब तें ॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए । गर्जत लागत परम सुहाए ॥
दो०—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ॥ १३ ॥
घन घमंड नभ गर्जत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न[१] घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराए । जथा नवहिं बुध बिद्या पाए ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के बचन संत सह जैसे ॥
छुद्र नदी भरि चली तोराई[२] । जस थोरेहु धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥
दो०—हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंडबाद[३] तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥ १४ ॥
दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका । साधक मन जस मिले बिबेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भएऊ । जस सुराज खल उद्यम गएऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं[४] धूरी । करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥

१—प्र० : रह न । द्वि० : प्र० । तृ० : रही] । च० : प्र०
२—प्र० : तोराई । द्वि० : प्र० [(३) : तुराई] (तृ० : च० : प्र०
३—प्र० : पाखंडबाद । द्वि० : प्र० [(४) : पाखंडीवाद] । [तृ० : पाखंडीवाद] । च० : प्र०
४—प्र० : मिलइ नहिं । द्वि० : तृ० : प्र० । [च० : मिलइहि]

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखियत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषे तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ[१] उपज न कामा॥
बिबिधि जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजें ज्ञाना॥

दो०—कबहुँ प्रबल चल[२] मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग॥
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ १५॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत[३] प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ कोउ पाव भगति जिमि[४] मोरी॥

१—प्र० : हिय। द्वि०, तृ०, प्र०। [च० हिय]।
२—प्र० : चल। [द्वि०, तृ० : बह]। च० : प्र०।
३—प्र० : कृत। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : रितु]।
४—प्र० : जिमि। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : जमि]।

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ स्नम तजहिं आस्नमी चारि ॥ १६ ॥
सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसा[1] । निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा[2] ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इंदु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥
दो०—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥ १७ ॥
बरषा गत निर्मल रितु आई । सुधि न तात सीता कै पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं । कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥
कतहुँ रहौ जौं जीवति होई । तात जतनु करि आनौं सोई ॥
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी । पावा राज कोस पुर नारी ॥
जेहि सायक मारा मैं बाली । तेहि सर हतौं मूढ़ कहुँ काली ॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा । ताकहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥
जानहिं येह चरित्र मुनि ग्यानी । जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना । धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥
दो०—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुन सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ॥ १८ ॥
इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा । रामकाजु सुग्रीव बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहुँ बिधि तेहि कहि समुझावा ॥

१—प्र० : क्रमशः कैसा, जैसा । द्वि० : प्र० [(५) कैसे, जैसे] । [तृ० : कैसे, जैसे] । च० : प्र० ।

सुनि सुग्रीव परम भय माना । बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुतसुत दूत समूहा । पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ॥
कहेहु पाख महुँ आव न जोई । मोरें कर ता कर बध होई ॥
तब हनुमंत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ॥
भय अरु प्रीति नीति देखराई । चले सकल चरनन्हि सिरु नाई ॥
येहि अवसर लछिमनु पुर आए । क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ॥
दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार ।
ब्याकुल नगर देखि तब आएउ बालिकुमार ॥ १९ ॥
चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही । लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना । कह कपीस अति भय अकुलाना ॥
सुनु हनुमंत संग लै तारा । करि बिनती समुझाउ[१] कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना ॥
करि बिनती मंदिर लै आए । चरन पखारि पलँग बैठाए ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा । गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं । मुनि मन मोह[२] करइ छन माहीं ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा । लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥
पवन तनय सब कथा सुनाई । जेहि बिधि गए दूत समुदाई ॥
दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ ।
रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ ॥ २० ॥
नाइ चरन सिरु कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ॥
अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटइ राम करहु जौ दाया ॥
बिषयबस्य सुर नर मुनि स्वामी । मैं पाँवर पसु कपि अति कामी ॥
नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
लोभ पास जेहिं गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥

१—प्र० : समुझाउ । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : समुझाउ] ।
२—प्र० : मोह । द्वि० : प्र० । [तृ० : छोभ] च० : प्र० ।

यह गुन साधन तें नहि होई । तुम्हरीं कृपा पाव कोइ कोई ॥
तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥
दो०—येहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥
बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह[१] लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा । निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥
अस कपि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूँछा नाहीं ॥
येह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई । बिस्वरूप ब्यापक रघुराई ॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयेसु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा । बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई । मास दिवस महुँ आएहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए । आवइ बनिहि सो मोहि मराए ॥
दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत ।
तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत ॥२२॥
सुनहु नील अंगद हनुमाना । जामवंत मतिधीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू । सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ॥
मन क्रम बचन सो जतनु[२] बिचारेहु । रामचंद्र कर काजु सँवारेहु ॥
भानु पीठ सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी ॥
तजि माया सेइअ परलोका । मिटहि सकल भवसंभव सोका ॥
देह धरे कर येह फलु भाई । भजिअ राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनज्ञ[३] सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
आयेसु माँगि चरन सिरु नाई । चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥

१—प्र० : करन चह । द्वि० : प्र० [(४) : किय चह] । [तृ० : करि चहै] । च० : प्र० ।
२—प्र० : सो जतनु । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुजतन] । च० : प्र० ।
३—प्र० : गुन ग्यान] । द्वि० : गुनज्ञ [(५अ) : गुनज्ञान] । तृ०, च० : द्वि० ।

पाछे पवन तनय सिरु नावा । जानि काजु प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ॥
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु । कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु ॥
हनुमत जनम सुफल करि माना । चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता । राजनीति राखत सुरत्रातः ॥
दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह ।
राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह ॥२३॥
कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा । प्रान लेहिं एक एक चपेटा ॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं । कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं ॥
लागि तृषा अतिसय अकुलाने । मिलइ न जल घन[१] गहन भुलाने ॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चहत सब बिनु जलपाना ॥
चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा । भूमि बिबर एक कौतुक पेखा ॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं । बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं ॥
गिरि तें उतरि पवनसुत आवा । सब कहुँ लेइ सोइ बिबर देखावा ॥
आगे कै हनुमंतहि लीन्हा । पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥
दो०—दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित[२] बहु कंज[२] ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तपपुंज ॥ २४ ॥
दूरि तें ताहि सबन्हि सिरु नावा । पूँछे निज बृतांत सुनावा ॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना । खाहु सुरस सुंदर फल नाना ॥
मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए । तासु निकट पुनि सब चलि आए ॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई । मैं अब जाब जहाँ रघुराई ॥
मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू । पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥
नयन मूँद पुनि देखहिं बीरा । ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा ॥
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा । जाइ कमल पद नाएसि माथा ॥

१—प्र० : घन । द्वि० : प्र० [(५अ) : बन] । [तृ० : बन] । च० : प्र० ।
२—प्र०: बर सर बिगसित । द्वि०: प्र० । [तृ०:सुभग सर बिगसित] च०:सर बिगसित तहँ]।

नाना भाँति विनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥
दो०—बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु आज्ञा धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥ २५॥
इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काजु कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता[१]॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भएउ कछु संसय नाहीं॥
अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥
हम सीता कै सोध बिहीना। नहिं जइहहिं जुवराज प्रबीना[२]॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥
जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥
दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ[३] सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सुख[४] त्यागि॥२६॥
येहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदरा सुनी[५] संपाती॥
बाहेर[६] होइ देखे[७] बहु कीसा। मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा॥

१—[तृ० में यह अर्धाली नहीं है]।
२—[तृ० में यह तथा इसके पूर्व की तीन अर्धालियाँ नहीं है]।
३—प्र० : प्रभु अवतरइ। द्वि० : प्र० [(५) : प्रभु अवतरहिं]। तृ०,च० :प्र०।
४—प्र० : सख। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : सुख।
५—प्र० सुनी। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० : सुना]।
६—प्र० : बाहेर। द्वि० : प्र० [(३) : बाहर]। [तृ० : बाहिर]। [च०: बाहेरि]।
७—प्र० : देखि। द्वि० : प्र०। [तृ० : देखे]। च० : तृ०।

आजु सबन्ह कहुँ भच्छन करऊँ । दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ ॥
कबहुँ न मिलै भर उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा[१] ॥
डरपे गीध बचन सुनि काना । अब भा मरनु सत्य हम जाना ॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेषी[१] ॥
कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
राम काज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड़भागी ॥
सुनि खग हरष सोक जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ॥
तिन्हहि अभय करि पूँछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ॥
सुनि संपाति बंधु कै करनी । रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी ॥

दो०—मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि ।
बचन सहाय करबि मै पैहहु खोजहु जाहि ॥ २७ ॥

कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेषी ॥
अनुज क्रिया करि सागर तीरा । कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा ॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई । गगन गए रबि निकट उड़ाई ॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा । मै अभिमानी रबि निअरावा ॥
जरे पंख अति तेज अपारा । परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ॥
मुनि एक नाम चंद्रमा ओही । लागी दया देखि करि[३] मोही ॥
बहु प्रकार तेहि ग्यान सुनावा । देह जनित अभिमान छड़ावा ॥
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही । तासु नारि निसिचरपति हरिही ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता । तिन्हहि मिले तैं होब पुनीता ॥
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता[४] । तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि कै गिरा सत्य भइ आजू । सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥

१—[तृ० में यह तथा इसके पूर्व की अर्धालियाँ नहीं हैं]।
२—[तृ० में यह अर्धाली नहीं है]।
३—प्र० : करि। द्वि० : प्र०। [तृ० : अति]। च० : प्र०।
४—प्र० : चिंता। द्वि० : प्र०। [तृ० : चीता]। च० : प्र०।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई । सीता बैठि सोच रत अहई ॥
दो०—मै देखौ तुम्ह नाहीं[1] गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ भएउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ॥ २८ ॥
जो नाघइ सत जोजन सागर । करइ सो राम काज मति आगर ॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम कृपा कस भएउ सरीरा ॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपार भव सागर तरहीं ॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । रामु हृदयँ धरि करहु उपाई ॥
अस कहि उमा[2] गीध जब गएऊ । तिन्ह कें मन अति बिसमै भएऊ ॥
निज निज बल सब काहू भाषा । पार जाइ कर[3] संसय राखा ॥
जरठ भएउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी । तब मै तरुन रहेउँ बल भारी ॥
दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्हीं[4] सात प्रदच्छिन धाइ ॥ २९ ॥
अंगद कहइ जाउँ मै पारा । जियँ संसय कछु फिरती बारा ॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक । पठइअ किमि सबही कर नायक ॥
कहइ रिछेस सुनहु[5] हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवनतनय बल पवन समाना । बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काजु कठिन जग माहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भएउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंघनाद करि बारहिं बारा । लीलहि नाघौं जलनिधि खारा ॥

१—प्र० : नाहीं । : द्वि० प्र० [(४) : नाहि] । [तृ० : नाहिंन] । च० : प्र० ।
२—प्र० : गरुड । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : उमा ।
३—प्र० . कै । द्वि० : प्र० । तृ० : कर । च० : तृ० ।
४—प्र० : दीन्ही । द्वि० : प्र० [(५अ) : दीन्हि मैं] । [तृ० : दीन्हि मैं] । च० : प्र० ।
५—प्र० : रीछपति सुनु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : रिछेस सुनहु ।

सहित सहाय रावनहि मारी। आनौ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवन्त मैं पूँछौ तोही। उचित सिखावन दीजहु[1] मोही॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुजबल राजिवनयना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

दो०—भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि[2]॥ ३०॥

सो०—नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥

इति श्री रामचरितमानसे सकल कलि कलुषविध्वसने विशुद्ध सन्तोष सम्पादनो नाम चतुर्थ सोपान समाप्त॥

१—प्र० दीजहु। द्वि० प्र०। [(५अ) दीजे]। [तृ० दीजिअ] च० प्र०।
२—प्र० त्रिसिरारि। द्वि० प्र० [(३)(४) त्रिपुरारि]। [तृ० त्रिपुरारि]। च० प्र०।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभाय नमः

श्री राम चरित मानस

पंचम सोपान

सुंदर कांड

श्लो०—शांतं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण[१] शांतिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणींद्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुं ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिं ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदयँ अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी । होइहि[२] काजु मोहि हरष बिसेषी ॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥

१—प्र० गीर्वाण । द्वि०, तृ० : प्र० । च० ° निर्वाण ।

२—प्र०: होइहि । द्वि० : प्र०[(३)(४)(५)° होइ । [तृ०° होइ] । च०: प्र०[(८) होइ] ।

जेहि[१] गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ[२] सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। येही[३] भाँति चला हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥

दो०—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ १॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानइ कहु बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तुअ बदन पइठिहौं आई। सत्य कहौं मोहि जान दे माई॥
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

दो०—राम काज सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥ २॥

निसिचर एक सिधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। येहि बिधि सदा गगनचर खाई॥

१—प्र० जेहिं गिरि चरन देइ। द्वि० प्र०। [तृ० जे गिरि चरन दी ह]। च० प्र०।
२—प्र०. चलेउ। द्वि० प्र० [तृ०° चलि]। च० प्र०।
३—प्र०: येही। द्वि०. प्र०[(३) (५अ) तेही]। [तृ०, तेही]। [च०: (६)येही,(८) ताही]।

सोइ[1] छल हनूमान कहँ[2] कीन्हा । तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गएउ मति धीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा । गुंजत चंचरीक मधु लोभा ॥
नाना तरु फल फूल सुहाए । खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगें । तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा । कनककोट कर परम प्रकासा ॥

छं०—कनक कोट बिचित्र मनिकृत सुंदरायतना[3] घना ।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना ॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै ।
बहु रूप निसिचर जूथ अति बल सेन बरनत नहिं बनै ॥
बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं ।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ॥
कहुँ माल[4] देह बिसाल सैल समान अति बल गर्जहीं ।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं ॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ॥
येहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछु एक है कही ।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहहिं सही ॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥ ३ ॥

१—प्र० : सोइ । द्वि० : तृ० : प्र० । [च० : सो] ।
२—प्र० : कहँ । द्वि० : प्र० । [तृ० : ते] । च० : प्र० [(न): ते] ।
३—प्र० : सुंदरायतना । द्वि० : प्र० । [तृ०: सुंदरायत अति] । च० : प्र० ।
४—प्र० : माल । द्वि० : प्र० । [तृ०: मल्ल] । च०: प्र० [(न): मल्ल] ।

मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महाकपि हनी । रुधिर बमन[1] धरनी ढनमनी ॥
पुनि संभारि उठी सो लंका । जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥
बिकल होसि तैं[2] कपि कें मारें । तब जानेसु निसिचर संघारें ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

दो०—तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ ४ ॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करैं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
गरुड़[3] सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपा करि चितवा[4] जाही ॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गएउ दसानन मंदिर माहीं । अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
सयन किएँ देखा कपि तेही । मंदिर महुँ न दीखि[5] बैदेही ॥
भवन एक पुनि दीख सोहावा । हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका[6] बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ॥ ५ ॥

१—प्र० : बमन । द्वि० : तृ० । च० : प्र० [(६): बमन] ।
२—प्र० : तैं । द्वि० : प्र० । [तृ०: जब] । प्र० [(८): जब] ।
३—प्र० : गरुड । द्वि०: प्र० [(५अ): गरुड़] । [तृ०: गरुअ] । च० : प्र० [(८): गरुअ] ।
४—प्र० : चितवा । द्वि० : प्र० । [तृ० : चितवहिं] । च०: प्र० [(८): चितवहिं] ।
५—प्र० : दीखि । [द्वि० : दीख] । तृ० : प्र० । [च० : दीख] ।
६—प्र० : तुलसिका । द्वि० : प्र० । [तृ० : तुलसी के] । च० : प्र० [(८): तुलसी के] ।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा[१]। तेहीं समय बिभीषनु जागा[१]॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
येहि सन हठि करिहौं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनामु पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महुँ कोई। मोरे हृदयँ प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आएहु मोहिं करन बड़भागी॥

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम॥ ६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा॥

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ ७॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
येहि बिधि कहत राम गुनग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिस्रामा॥
पुनि[२] सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥

१—प्र० : क्रमशः लागा, जागा। द्वि० : प्र०। [तृ० : लागे, लागे] । च०: प्र०।
२—प्र० : सुनि। द्वि० : पुनि। तृ०, च० : द्वि०।

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखी[१] चहौं जानकी माता ॥
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥
देखि मनहिं महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥
कृसतनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदयँ रघुपति गुन स्रेनी ॥
दो०—निज पद नयन दिए मन राम चरन[२] महुँ लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥
तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ बिचार करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किए बनावा ॥
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम दान[३] भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरीं करौं पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
अस मन समुझु[४] कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघुबीर बान की ॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥
दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहिं भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ॥ ९ ॥
सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥
स्याम सरोज दाम सम सुंदर । प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ॥

१—प्र० : देखी । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): देखा] । [तृ० : देखा] । च० : प्र० [(८): देखा] ।
२—प्र० : चरन महुँ । द्वि० : तृ० : प्र० । [च०: (६) कमल पद, (८) चरन लव] ।
३—प्र० : दान । द्वि० : प्र० [(५अ): दाम] । [तृ० : दाम] । च० : प्र० [(८) : दाम] ।
४—प्र०: समुझु । द्वि० : प्र० [(५) (५अ): समुझि] । [तृ० : समुझि] । च० : प्र० [(८) : समुझि] ।

सो भुज कुंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन [१]मोरा॥
चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसि तव असि[२] बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

दो०—भवन गएउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥ १०॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
येहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता[३] बोलि पठाई॥
येह सपना मै कहौ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच॥ ११॥

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तइँ मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवन सूल सम बानी॥

१—प्र० : मन। द्वि० : पन। तृ० : च० : द्वि०।
२—प्र० : निसि तव असि। द्वि० : प्र०। [तृ० : निसिन बहसि]। च० : प्र० [(६) : निसिन बहसि]।
३—प्र० : सीना। द्वि० : प्र०। [तृ० : सीतहि]। च० : प्र० [(८) : सीनहि]।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि । प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी । अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला । मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकौ तारा ॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी । मानहु मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिनि तन[१] करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥

सो०—कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥ १२ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुंदर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी ॥
जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तें असि रचि नहिं जाई ॥
सीता मन बिचार कर नाना । मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥
रामचंद्र गुन बरनै लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥
लागीं सुनै स्रवन मन लाई । आदिहुँ तें सब कथा सुनाई ॥
स्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई । कही[२] सो प्रगट होति किन भाई ॥
तब हनुमंत निकट चलि गएऊ । फिरि बैठीं मन बिसमय भएउ ॥
राम दूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
येह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥
नर बानरहि संग कहु कैसें । कही कथा भइ संगति जैसें ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम बचन येह कृपासिंधु कर दास ॥ १३ ॥

१—प्र० : तन । द्वि० : प्र० [(३) (४) : जनि] । तृ० : प्र० । [च० : जनि] ।
२—प्र० : कही । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ) : कहि] । तृ० : कहि] च० : प्र० ।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी[1] ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भएहु तात मो कहुँ जलजाना ॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी ॥
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥
बचनु न आव नयन भरे[1] बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सु कृपानिकेता ॥
जनि जननी मानहु जिअँ ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम कें दूना ॥
दो०—रघुपति कर सदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भएउ भरे बिलोचन नीर ॥ १४ ॥
कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हितर[2] रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं येह जान न कोई ॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहिं माहीं ॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ॥
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता ॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई ॥

१—प्र० : भरे। [द्वि, तृ० : भरि]। च० : प्र० [(८) : बह]।
२—प्र० : जे हित। [द्वि० : जेहि तरु]। [तृ० : जेहि तर]। च० : प्र० [(८) : जेहि तरु]।

दो०–निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ॥ १५ ॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं बिलंबु रघुराई ॥
राम बान रबि उएँ जानकी । तम बरूथ कहँ जातुधान की ॥
अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥
निसिचर मारि तोहि लै जइहहिं । तिहुँ पुर नारदादि जसु गइहहिं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना । जातुधान अति भट बलवाना ॥
मोरें हृदयँ परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अति बलबीरा ॥
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥

दो०–सुनु माता साखामृग[1] नहिं बल बुद्धि बिसाल ।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ॥ १६ ॥

मन संतोष सुनत कपि बानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन[2] हनुमाना ॥
बार बार नाएसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आसिष तव अमोघ बिख्याता ॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुंदर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी[3] ॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

१—प्र० : साखामृग । द्वि० : प्र० । [तृ० : साखामृगहि] । च० : प्र० [(८) : साखामृगहि]
२—प्र० : मगन । द्वि० प्र० । [तृ० : हरष] । च० : प्र० ।
३—प्र० : चारी । द्वि०, तृ० . प्र० । च० : भारी ।

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥ १७॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥
सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥
पुनि पठएउ तेहिं अच्छ कुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलयेसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥ १८॥

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥
चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महा भट ताकें संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥
तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजनजाया॥

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहिं साधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानौं महिमा मिटइ अपार॥ १९॥

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ग्यानी॥

तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥ २०॥

कह लंकेस कवन तइँ कीसा। केहि कें बल घालेसि बन खीसा॥
की धौ श्रवन सुने नहिं मोही। देखौं अति असंक सठ तोही॥
मारे[१] निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

दो०—जा कें बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥ २१॥

जानौं मै तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा॥
खाएउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारगगामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहिं पर बाँधेउ तनयँ तुम्हारें॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा॥

१—प्र० : मारे। द्वि० : प्र०। [तृ० : मारेहि]। च० : प्र० [(छ) : मारेहि]।

बिनती करौं जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी ॥
जा कें डर अति काल डेराई । जो सुर असुर[१] चराचर खाई ॥
ता सों बयरु कबहुँ नहिं कीजै । मोरें कहें जानकी दीजै ॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि ।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं[२] तव अपराध बिसारि ॥ २२ ॥

राम चरन पंकज उर धरहू । लंका अचल राजु तुम्ह करहू ॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
बसनहीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषन भूषित बर नारी ॥
राम बिमुख संपति, प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥
सजल[३] मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी । बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

दो०—मोह मूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान ॥ २३ ॥

जदपि कही कपि अति हित बानी । भगति बिबेक बिरति नय सानी ॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी । मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥
मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोहि[४] प्रगट मैं जाना ॥
सुनि कपि बचन बहुत खिसियाना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह सहित बिभीषन आए ॥

१—प्र० : असुर । द्वि०, तृ० : । च० : प्र० [(६) : अचर]।
२—प्र० : राखिहैं । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) राखिहि, (८) राखिहहिं]।
३—प्र० : सरित । द्वि० : प्र० [(५) (५अ) : सजल] । तृ० : सजल । च० : तृ० ।
४—प्र० : तोहि । द्वि० : प्र० [(४) : तोर] । [तृ० : तोर] । च० : प्र० ।

नाइ सीस करि बिनय बहूता । नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
आन दंड कछु करिअ गोसाईं । सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर । अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥
दो०—कपि कैं ममता पूँछ पर सबहिं कहौ[1] समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥ २४ ॥

पूँछहीन बानर तहँ[2] जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई । देखौं मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावन बचना । लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥
रहा न नगर बसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ पजारी ॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भएउ परम लघु रूप तुरंता ॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी । भईं सभीत निसाचर नारीं ॥
दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २५ ॥

देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट[3] लपट बहु कोटि कराला ॥
तात मातु हा सुनिअ पुकारा । येहि अवसर को हमहि उबारा ॥
हम जो कहा येह कपि नहिं होई । बानर रूप धरें सुर कोई ॥
साधु अवग्या कर फल ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥

१—प्र० : कह्यौ । द्वि० : प्र० । [तृ० : कहा] । [च० : कहौं] ।
२—प्र० : तह । द्वि० : प्र० । [तृ० : जब] । च० : प्र० [(८) : जब] ।
३—प्र० : झपट । द्वि० : प्र० । [तृ० : दपट] । च० : प्र० ।

ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा । जरा न सो तेहिं कारन गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥
दो०—पूँछ बुझाइ खोइ स्रम धरि लघु रूप बहोरि ।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भएउ कर जोरि ॥ २६ ॥
मातु मोहि दीजै किछु चीन्हा । जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दएऊ । हरप समेत पवनसुत लएऊ ॥
कहेउ तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरन कामा ॥
दीन दयाल बिरिदु[1] संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा[2] । तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा[2] ॥
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना । तुम्हहूँ तात कहत अब जाना ॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती । पुनि मो कहुँ सो दिनु सो राती ॥
दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥ २७ ॥
चलत महा धुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर[3] नारी ॥
नाघि सिंधु ऐहि पारहि आवा । सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा ॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ॥
मिले सकल अति भए सुखारी । तलफत मीन पाव जनु[4] बारी ॥
चले हरषि रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥
तब मधुबन भीतर सब आए । अंगद संमत मधुफल खाए ॥
रखवारे जब बरजइ लागे । मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ॥

१—प्र० : बिरिदु । [द्वि०, तृ० : बिरद] । [च० : (६) बिरुद, (८) बिरद] ।
२—[प्र० : क्रमशः आवैं, पावैं] । द्वि० : आवा, पावा । [तृ०: आवैं, पावैं] । च०: द्वि० ।
३—प्र० : सुनि निसिचर । द्वि० : प्र० । [तृ० : रजनी चर] । च० : प्र० ।
४—प्र० जिमि । द्वि० : प्र० । तृ० : जनु । च० : तृ० ।

दो०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज ।
सुनि सुग्रीव हरप कपि करि आए प्रभु काज ॥ २८ ॥
जौं न होति सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥
येहि बिधि मन बिचार कर राजा । आइ गए कपि सहित समाजा ॥
आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिलेउ सबन्हि अति प्रेम[1] कपीसा ॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी । राम कृपाँ भा काजु बिसेषी ॥
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह के प्राना ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ । कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा । किएँ काजु मन हरप बिसेषा ॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥
दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुनापुंज ।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥ २९ ॥
जामवंत कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ बिजयी बिनयी गुन सागर । तासु सुजसु त्रैलोक उजागर ॥
प्रभु की कृपा भएउ सबु काजू । जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सहसहु मुख न जाइ सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए । जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥
दो०—नाम पाहरू राति दिनु[2] ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥३०॥
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी । बचन कहे कछु जनककुमारी ॥

१—प्र० : प्रीति । द्वि० : प्र० । तृ० : प्रेम । च० : तृ० ।
२—प्र० : राति दिनु । द्वि० : प्र० [(+): दिवस निसि] । तृ० : प्र० । [च० : दिवस निसि]।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि[1] बाधा॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी॥
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥
दो०—निमिष निमिष करुनानिधि[2] जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ ३१॥
सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रतिउपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥
दो०—सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥ ३२॥
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० हठि [(२) हवि]।
२—प्र० करुनानिधि। द्वि० प्र०। [तृ० : करुनायतन]। च० प्र० [(८). करुनायतन]।

कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेहु दुर्ग अति बंका ॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन बिगत अभिमाना ॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा तें साखा पर जाई ॥
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ॥
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछू[१] मोरि प्रभुताई ॥
दो०—ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल ।
तव प्रभावर बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ॥ ३३ ॥
नाथ भगति अति सुखदायनी[३] । देहु कृपा करि अनपायनी[३] ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥
उमा राम सुभाउ जेहिं जाना । ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
येह संबाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥
सुनि प्रभु[४] बचन कहहि कपिबृंदा । जय जय जय कृपाल सुखकंदा ॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा । कहा चलइ कर करहु बनावा ॥
अब बिलंबु केहि कारन कीजै । तुरत कपिन्ह कहुँ आयेसु दीजै ॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी । नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥
दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥ ३४ ॥
प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा । गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सेना । चितइ कृपा करि राजिव नयना ॥
राम कृपा बल पाइ कपिंदा[५] । भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा[५] ॥

१—प्र० : कट्टू । द्वि० : प्र० । [तृ० : कछुक] । च० : प्र० ।
२—प्र० : प्रभाव । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) प्रताप] । [तृ० : प्रताप] । च० : प्र० [(८) प्रताप] ।
३—प्र० : क्रमशः अति सुखदायनी, अनपायनी । द्वि० : प्र० । [तृ० : तव अति सुखदायनि, सो अनपायनि] । च० : प्र० ।
४—प्र० : प्रभु । । द्वि : प्र० । [तृ० : कपि] । च० : प्र० ।
५—[प्र० : क्रमशः कपींसा, गिरीसा । द्वि० : कपिंदा, गिरिंदा । तृ० : द्वि० । च० : प्र० [(६) : कपींसा, गिरीसा] ।

हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भए सुंदर सुभ नाना ॥
जासु सकल मंगलमय कीती[1] । तासु पयान सगुन येह नीती ॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं । फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं ॥
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई । असगुन भएउ रावनहि सोई ॥
चला कटकु को बरनइ पारा । गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥
नख आयुध गिरि पादप धारी । चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरि नाद भालु कपि करहीं । डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं ॥

छं०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे ।
मन हरप दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ॥
सहि सक न भार उदार[2] अहिपति बार बारहिं मोहई[3] ।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥

दो०—येहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥ ३५ ॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब ते जारि गएउ कपि लंका ॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा । नहि निसिचर कुल केर उबारा ॥
जासु दूत बल बरनि न जाई । तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी । मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी । बोली बचन नीति रस पागी ॥

१—प्र० : कीनी । द्वि० : प्र० । [तृ० : रीनी] । च० : प्र० [(८) : रीनी] ।
२—प्र० : उदार । द्वि० : प्र० । [तृ० : अपार] । च० : प्र० ।
३—प्र० : बारहिं मोहई । द्वि० : प्र० [(५) : बार बिमोहई] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(८) : बार बिमोहई] ।

कंत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हियँ धरहू ॥
समुझत जासु दूत कइ करनी । स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई । पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥
दो०—राम बान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ॥ ३६ ॥
स्रवन सुनी सठ ता करि बानी । बिहँसा जगत बिदित अभिमानी ॥
सभय सुभाउ नारि कर साँचा । मंगल महुँ भय मन अति काँचा ॥
जौं आवै मर्कट कटकाई । जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई । चलेउ सभाँ ममता अधिकाई ॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता[१] । भएउ कंत पर बिधि बिपरीता ॥
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई । सिंधु पार सेना सब आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥
जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं । नर बानर केहि लेखे माहीं ॥
दो०—सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगि हीं नास ॥ ३७ ॥
सोइ रावन कहुँ बनी सहाई । अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौं कृपाल पूँछहु मोहिं बाता । मति अनुरूप कहौं हित ताता ॥
जो आपन चाहइ कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं । तजौ चौथि के चंद कि नाईं ॥

१—प्र० : चिं । । द्वि : प्र० । [तृ० : चीता] । च० : प्र०

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहि सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥
दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३८॥
तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥
दो०—बार बार पद लागौं बिनय करौं दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई येह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥ ३९॥
माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

१—[प्र० : भन भजहीं जेहि संत]। द्वि०, तृ०, च० : भजहु भजहि जेहि संत।

दो०—तात चरन गहि मागौं राखहु मोर दुलार।
सीता देहु[१] राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥ ४० ॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
जिअसि सदा सठ[२] मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीता मैं नाहीं ॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
उमा संत कै इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई ॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजें हित नाथ तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गएऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ ॥

दो०—रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥ ४१ ॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं ॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी ॥
रावन जबहिं बिभीषनु त्यागा। भएउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥
देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी ॥
जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए ॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई ॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहौं इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥ ४२ ॥

येहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आएउ सपदि सिंधु येहि पारा ॥

१—प्र० : देहु। द्वि० : प्र०। [तृ० : देव]। च० : प्र०।
२—प्र० : सठ। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सब]।

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

दो०—सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥ ४३॥

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आएँ सरन तजौं नहिं ताहू॥
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं[१] तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सन्मुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥
जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइँ[२] निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपा निकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥ ४४॥

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि तें देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भयमोचन॥

१—प्र० : नासहिं। द्वि०, प्र०। [तृ० : नासौं]। च० : प्र० [(न) : नासैंही]
२—प्र० : हनइँ। द्वि० : प्र०। [तृ० : हनहिं]। च० : प्र०।

सिघ कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन[१] मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बंस जन्म सुरत्राता ॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥
दो०—स्रवन सुजसु सुनि आएउँ प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरतिहरन सरनसुखद रघुबीर ॥ ४५ ॥
अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मंडली बसहु दिनु राती । सखा धर्म निबहइ केहि भाँती ॥
मैं जानौं तुम्हारि[२] सब रीती । अति नयनिपुन न भाव अनीती ॥
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ॥
दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम ॥ ४६ ॥
तब लगि हृदयँ बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर[३] मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरें चाप सायक कटि भाथा ॥
ममता तरुन तमी अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला ॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : मनु [(६) छं'व]
२—प्र० : तुम्हारि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : तुम्हार] ।
३—प्र० : मच्छर । [द्वि०, तृ० : मत्सर] । च० : प्र० [(८) : मत्सर] ।

जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहिं लावा॥

दो०–अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥ ४७॥

सुनहु सखा निज कहौं सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसै धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरौं देह नहिं आन निहोरें॥

दो०–सगुन उपासक पर[1] हित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्हकें द्विज पद प्रेम॥ ४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपाबरूथा॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहि अघात स्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

दो०–रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ[2] दीन्हेउ राजु अखंड॥

१—प्र० : पर। द्वि० : प्र०। [तृ० : परम]। च० : प्र० [(८) : परम]।
२—प्र० : राखेउ। द्वि० : प्र० [(३)(४)(५) : राखा।]। [तृ० : राखे]। च० : प्र० [(८)० राखा]।

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥४९॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥
पुनि सर्बग्य सर्ब उरबासी। सर्ब रूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥५०॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मत्र न येह लछिमन मन भाया। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥५१॥

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥

१—प्र० : मत्र। द्वि० : मं०। [तृ० : मंत्र]। च० : मं०।

रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस[1] पहिं आने॥
कह सुग्रीव सुनहु सब बानर[2]। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए॥
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥
सुनि लछिमन सबरे[3] निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु येह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती॥
दो०—कहेहु मुखागर मूढ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥५२॥
तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥
बिहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक[4] आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि[5] बिभीषन केरी। जाहि[6] मृत्यु आई अति नेरी॥
करत राजु लंका सठ त्यागी[7]। होइहि जब कर कीट अभागी[7]॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥
जिन्हके जीवन कर रखवारा। भएउ मृदुल चित सिंधु बेचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह कें हृदय त्रास अति मोरी॥
दो०—की भइ भेंट कि फिरि गए स्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥५३॥

१—प्र० : सकल बाँधि कपीस। द्वि० : प्र०। [तृ० : ताहि बाँधि कपिपति]। च० : प्र० [(?) : सपदि बाँधि कपिपति]।
२—प्र० : बानर। द्वि० : प्र०। [तृ० : बनचर]। च० : प्र०।
३—प्र० : सब। द्वि० : प्र०। [तृ० : तब]। च० : प्र०।
४—प्र० : कस। द्वि० : सुक। तृ०, च० : द्वि०।
५—प्र० : खबरि। द्वि० : प्र०। [तृ० : कुसल]। च० : प्र०।
६—प्र० : जाहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : जासु]। च० : प्र०।
७—प्र० : क्रमशः त्यागी, अभागी। द्वि० : प्र०। [तृ० : त्यागा, अभागा]। च० : प्र०।

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे । मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं राम तिलक तेहि सारा ॥
रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बाँधि दीन्हे[१] दुख नाना ॥
स्रवन नासिका काटै लागे । राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ॥
पूँछिहु नाथ राम कटकाई । बदन कोटि सत बरनि न जाई ॥
नाना बरन भालु कपि धारी । बिकटानन बिसाल भयकारी ॥
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा । सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा ॥
अमित नाम भट कठिन[२] कराला । अमित नाग बल बिपुल बिसाला ॥
दो०—द्विबिद मयंद नील नलु अंगद गद[३] बिकटासि[४] ।
दधिमुख केहरि कुमुद गव[५] जामवंत बलरासि ॥ ५४ ॥
ये कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं । तृन समान त्रैलोकहि गनहीं ॥
अस मैं सुना स्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहि जीतइ रन माहीं ॥
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा । आयेसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
सोखहिं सिंधु सहित झष ब्याला । पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला ॥
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा । ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका । मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका ॥
दो०—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल[६] कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम ॥ ५५ ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : दीन्हे [(१) : दीन्हेउ]।
२—" रदिन। द्वि० : प्र० [(१) : रदिन्ह]। [तृ० : दिन्ह]। च० : प्र०।
३—प्र० : अंगद गद। द्वि० : प्र० [(४) : अंगदादि]। [तृ० : अंगदादि]। च० : प्र०।
४—प्र० : बिकटासि। द्वि० : प्र० [(४) (५) : बिकटास्य]। तृ० : प्र०। [च० : बिकटास्य]।
५—प्र० : निठ मद। द्वि० : प्र०। तृ० : कुमुदगव। च० : तृ०।
६—प्र० : काल। द्वि० : प्र०। [तृ० : रावी]। च० : प्र०।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नयनागर॥
तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥
सचिव सभीत बिभीषनु जाकें। बिजय बिभूति कहाँ लगि[1] ताकें॥
सुनि खल बचन दूतहि[2] रिसि बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥
रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

दो०—बातन्ह मनहिं रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥
की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल[3] खल कुल सहित पतंग॥ ५६॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहिं सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥
कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं[4]। उर अपराध न एकौ धरिहीं[4]॥

१—प्र० : जग। द्वि० : प्र०। तृ० : लगि। च० : तृ०।
२—प्र० : दूतहि। [द्वि०, तृ० : दूत]। च० : प्र० [(८) : दूत]।
३—[प्र० : होहि कि राम सरामन खल]। द्वि० : होहि कि राम सरानल खल। [तृ० : होहि राम सर अनल खल जनि]। च० : द्वि०।
४—प्र० : क्रमशः करिहीं, धरिहीं। द्वि० : प्र०। [तृ० : करिहहिं, धरिहहि]। च० : प्र० [(८) : करिहहि, धरिहहि]।

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भएउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आस्रम कहुँ पगु धारा॥
दो०--बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥५७॥
लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममतारत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ[1] फल जथा॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। येह मत लछिमन कें मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आए[2] तजि माना॥
दो०--काटेहिं पइ कदली फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाँटेहि पै नवै[3] नीच॥५८॥
सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए॥
प्रभु आयेसु जेहि कहँ जस[4] अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥

१--[प्र० : बोए]। द्वि० : बए। [तृ० : बोए]। च० : द्वि०।
२--प्र० : आए। द्वि० : प्र० [(३) (५): आएउ]। [तृ० : आएउ]। च० : प्र०।
३--प्र० : डाटेंहि पै नव। द्वि० : प्र० [(३): डाटेंहि पै नवै]। तृ०, च० : प्र० [(८): भय बिनु नवै]।
४--प्र० : जस। द्वि० : प्र० [(४) : असि]। तृ०, च० : प्र०।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही ॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई । करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥

दो०—सुनत[1] बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ ॥ ५९ ॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई । लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहौं बल अनुमान सहाई ॥
येहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ । जेहिं येह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ ॥
येहि सर मम उत्तर तट बासी । हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥
देखि राम बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भएउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहि येह मत भाएऊ ।
येह चरित कलिमलहर जथामति दास तुलसी गाएऊ ॥
सुखभवन संसयसमन दवन[2] बिषाद रघुपति गुनगना ।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ[3] मना ॥

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान ॥ ६० ॥

इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने विमल ज्ञानसम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः समाप्तः॥

१—प्र० : सुनत बिनीत बचन । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुनतहिं बचन बिनीत] । च० : प्र० [(८) : सुनि बिनती के बचन] ।
२—प्र० : दवन । द्वि० : प्र० । [तृ० : दमन] । च० : प्र० ।
३—प्र० : सठ । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुचि] । च० : प्र० ।

श्री गणेशाय नमः

श्री [illegible] नमः

श्री राम चरित मानस

षष्ठ सोपान

लंका कांड

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह ।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥
येह लघु जलधि तरत कति बारा । अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा ॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी । सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥
तव रिपुनारि रुदन जलधारा । भरेउ बहोरि भएउ तेहिं खारा ॥
सुनि अति उक्ति पवन सुत केरी । हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥
जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं । करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥
बोलि लिए कपि निकर बहोरी । सकल सुनहु बिनती एक[१] मोरी ॥
राम चरन पंकज उर धरहू । कौतुक एक भालु कपि करहू ॥
धावहु मरकट बिकट बरूथा । आनहु बिटपगिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा । जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥
दो०—अति उतंग तरु सैलगन[२] लीलहिं लेहिं उठाइ ।
आनि देहिं नल नीलहि[३] रचहिं ते सेतु बनाइ ॥ १ ॥
सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील ते लेहीं ॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना । बिहँसि कृपानिधि बोले बचना ॥
परम रम्य उत्तम येह धरनी । महिमा अमित जाइ नहिं बरनी ॥
करिहौं इहाँ संभु थापना[४] । मोरें हृदय परम कलपना ॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए । मुनिबर सकल बोलि लै आए ॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
सिवद्रोही मम भगत[५] कहावा । सो नर सपनेहु मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

१—प्र० : कछु । द्वि० : प्र० [(५अ) : एक] । तृ० : एक । च० : तृ० ।
२—प्र० : गिरि पादप । द्वि० : प्र० । तृ० : तरुसैलगन । च० : तृ० ।
३—प्र० : नीलहि । द्वि० : प्र० । [तृ० : नीलनहिं] । च० : प्र० [(न) : नीलनहिं] ।
४—प्र० : थापना । द्वि० : प्र० । [तृ० : अस्थपना] । च० : प्र० [(न) : अस्थप
५—प्र० : भगत । द्वि० : प्र० । [तृ० : दास] । च० : प्र० [(न) : दास] ।

दो०—संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥ २॥

जे[1] रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम[2] लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही[3]। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही[3]॥
राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज[4] निज आश्रम आए॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥
बाँधा[5] सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर॥
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह[6] कै करनी॥

दो० श्री रघुबीर प्रताप तें सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ३॥

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥
सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
ऐसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥

१—प्र०: जे। द्वि०, तृ० च०: प्र० [(५) (६) जो]।
२—प्र०: मम। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(५) हरि (६अ) हर]।
३—प्र०: करिही, तरिही। द्वि०: प्र०। [तृ०: करिहहि, तरिहहि]। च०: प्र०।
४—प्र०: निज। द्वि०: प्र०। [तृ०: गए]। च०: प्र० [(५) (६अ): गए]।
५—प्र०: बाँधा। द्वि०: प्र०। तृ०: बाँधेउ। च०: तृ०।
६—प्र०: कपिन्ह। द्वि०, तृ०: प्र०। [च०: कपि]।

तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरिरूप निहारी॥
चला कटकु प्रभु आयेसु पाई[1]। को कहि सकै कपिदल बिपुलाई॥
दो०–सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥ ४॥
अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयेसु दीन्हा॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए॥
सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु[2] काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सनमुख सिखर चलावहिं॥
जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥
जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत स्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥
दो०–बाध्यो[3] बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥ ५॥
व्याकुलता निज समुझि बहोरी[4]। बिहँसि चला[5] गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिर अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥

१—प्र०: प्रभु आयेसु पाईं। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: कछु बरनि न जाई।
२—प्र०: रितु अरु कुरितु। द्वि०: प्र०। [तृ०: रितु अरु अरितुहि] च०: प्र० [(६) (ञ): रितु अरु अरितु]।
३—प्र०: बाध्यो। द्वि०: प्र०। [तृ०: बाँधे] च०: प्र० [(८): बाँधे]।
४—प्र०: निज आकुलता बिचारि। द्वि०: प्र०। तृ०: ब्याकुलता निज समुझि। च०: प्र०।
५—प्र०: गयउ। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: चला।

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि[1] जैसा॥
अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥

दो०—रामहि सौंपि[2] जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥ ६॥

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघौ सनमुख गए न खाई॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥
संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजनु कीजिअ तहँ भरता। जो करता पालक संहरता॥
सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी[3]॥
सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥

दो०—अस कहि लोचन बारि भरि[4] गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथ पद[5] अचल होइ अहिवात[6]॥ ७॥

तब रावन मयसुता उठाई। कहइ लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तै प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥
बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला॥

१—प्र०: दिनकरहि। द्वि०: प्र०। [दिवाकर]। च०: प्र० [(८): दिवाकर]।
२—प्र०: सौंपि। [द्वि०, तृ०, च०: सौंपहु]।
३—[(६) में यह अर्द्धाली नहीं है]।
४—प्र०: नयन नीर भरि। द्वि०: प्र०। तृ०: लोचन बारि भरि। च०: तृ०।
५—प्र०: रघुनाथहि। द्वि०: प्र०। तृ० रघुनाथ पद। च०: तृ०[(६),(८): रघुनाथ पद]।
६—प्र०: अचल होइ अहिवात। द्वि०: प्र०। [तृ०: मम अहिवात न जात]। च०: प्र० [(६) (८): मम अहिवात न जात]।

देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥
नाना बिधि तेहिं कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरी हृदयँ अस जाना। काल बिबस[1] उपजा अभिमाना॥
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहिं[2] बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचरनाहा। बार बार प्रभु पूँछहु[3] काहा॥
कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

दो०—सब के बचन[4] स्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥ ८॥

कहहिं सचिव सठ[5] ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव येहि भाँती॥
बारिधि नाँघि एकु कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सब गावा॥
छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगे दुखु पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहि सुनावा॥
जेहि बारीस बँधाएउ हेला। उतरे सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥
तात बचन मम सुनु[6] अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता[7] देइ करहु पुनि प्रीती॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सनमुख समर महिं तात करिअ हठि मारि॥ ९॥

१—प्र० : बस्य। द्वि० : प्र०। तृ० : बिबस। च० : तृ०।
२—प्र० : तेहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : सन]। च० : प्र० [(८) (८अ) : सन]।
३—प्र० : पूँछहु। द्वि० : प्र०। [तृ० : बूझह]। च० : प्र० [(८) : बूझह]।
४—प्र० : सबके बचन। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ) : बचन सबन्हि के]।
५—प्र० : सठ। द्वि० : प्र० [(४)(५) : सब]। तृ० : प्र०। [च० : सब]।
६—प्र० : तात बचन मम सुनु। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : सुनु मम बचन तात]।
७—प्र० : सीता। द्वि०, तृ० : प्र०। [च०: सीतहि]।

येह मत जौं मानहु प्रभु मोरा । उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई । असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई ॥
अबहीं तें उर संसय होई । बेनु मूल सुत भयउ घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा । चला भवन कहि बचन कठोरा ॥
हित मत तोहि न लागत कैसें । काल बिबस कहुँ भेषज जैसें ॥
संध्या समय जानि दससीसा । भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ॥
लंका सिखर उपर आगारा । अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन । लागे किंनर गुन गन[1] गावन ॥
बाजहिं ताल पखाउज बीना । नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ॥

दो०—सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास ।
परम प्रबल रिपु सीस पर तदपि न कछु मन त्रास[2] ॥ १० ॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा । उतरे सेन सहित अति भीरा ॥
सैल सृंग एक सुंदर[3] देखी । अति उतंग[4] सम सुभ्र बिसेषी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए । लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
तेहि[5] पर रुचिर मृदुल मृगछाला । तेहि आसन आसीन कृपाला ॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा । बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना । कह लंकेस मंत्र लगि काना ॥
बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत बिधि नाना ॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन । कटि निषंग कर बान सरासन ॥

१—प्र० : गुनगन । द्वि० : प्र० । [तृ० : गंध्रब] । च० : प्र० [(६) (८अ) : गंधर्ब] ।
२—प्र० : तदपि सोच न त्रास । द्वि० : प्र० [(३)(४)(५) : तदपि सोच नहिं त्रास] । [तृ० : तदपि न कछु तेहि त्रास] । च० : तदपि न कछु मन त्रास [(८) : तदपि हृदय नहिं त्रास] ।
३—प्र० : सिखर एक उतंग अति । द्वि० : प्र० । तृ० : सैल सृंग एक सुंदर । च० : तृ० ।
४—प्र० : परम रम्य । द्वि० : प्र० । तृ० : अति उतंग । च० : तृ० ।
५—प्र० : ता । द्वि० : प्र० । तृ० : तेहि । च० : तृ० ।

दो०—येहि बिधि करुना सील[१] गुन धाम रामु आसीन।
ते नर धन्य जे ध्यान येहि[२] रहत सदा लयलीन॥
पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥ ११॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महुँ परी स्यामता सोई॥
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सारभाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥

दो०—कह मारुतसुत[३] सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय[४] दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥
पवनतनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसा बिलोकि पुनि[५] बोले कृपानिधान॥ १२॥

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥

१—प्र० : कृपा रूप। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : करुना मीन [(८) : करुना सिंधु]।
२—प्र०: धन्य ते नर येहि ध्यान जे। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: ते नर धन्य जे ध्यान येहि।
३—प्र० : हनुमंत। द्वि० : प्र०। तृ० : मारुतसुत। च० : तृ०।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : प्रिय [(६) : निज]।
५—प्र० : दिसि अवलोकि प्रभु। द्वि०, तृ०: प्र०। च०: दिसा बिलोकि पुनि [(८) (८अ): दिसा बिलोकि प्रभु]।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला । होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर¹ आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा ॥
छत्र मेघडंबर सिर धारी । सोइ जनु जलद घटा अति कारी ॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर² सुनहु सुरभूपा ॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एक ही बान ।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग ।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रस भंग ॥ १३ ॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा । अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी । असगुन भयउ भयंकर भारी ॥
दसमुख देखि सभा भय पाई । बिहसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरौ गिरे संतत सुभ जाही । मुकुट खसे³ कस असगुन ताही ॥
सयन करहु निज निज गृह जाई । गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ । जब तें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी । सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम बिरोध परिहरहू । जानि मनुज जनि मन हठ⁴ धरहू ॥

दो०—बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥ १४ ॥

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥

१—प्र० : उपर । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (अ) : रुचिर] ।
२—प्र० : मधुर । द्वि० : प्र० । [तृ० : सरिस] । च० : प्र० [(६) (८अ) : सरस] ।
३—प्र० : परे । द्वि० : प्र० । तृ० : खसे । च० : तृ० [(८अ) : गिरे] ।
४—प्र० : हठ मन । द्वि० : प्र० [(५अ) : हठ उर] । [तृ० : हठ उर] । च० : प्र० [(८अ) : मन महुँ] ।

जासु प्रान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवसु निमेष अपारा ॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत[1] स्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ॥

दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर[2] रूप राम भगवान ॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ[3] ॥१५॥

बिहसा नारि बचन सुनि काना । अहो मोह महिमा बलवाना ॥
नारि सुभाउ सत्य कबि[4] कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥
साहस अनृत चपलता माया । भय अबिबेक असौच अदाया ॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा । अति बिसाल[5] भय मोहि सुनावा ॥
सो सब प्रिया सहज बस मोरे । समुझि परा प्रसाद अब तोरे ॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई । येहि मिसु[6] कहहु[7] मोरि प्रभुताई ॥
तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि । समुझत सुखद सुनत भय मोचनि[8] ॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ । पिअहि कालबस मतिभ्रम भयऊ ॥

१—प्र० : मारुत [(२) : मरुत] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : सचराचर । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : चरअचरमय] ।
३—प्र० : [यह दोहा (६) में नहीं है] ।
४—प्र० : सब । द्वि० : कबि । तृ०, च० : द्वि० ।
५—[प्र० : बिलास] । द्वि० : बिसाल । तृ०, च० : द्वि० ।
६—प्र० : बिधि । द्वि० : तृ० : प्र० । च० : मिसु [(६) मिसि]
७—प्र० : कहहु । द्वि० : : प्र० । [तृ० : कहेउ] । च० : प्र० [(६) : कहिहि] ।
८—प्र० : मोचनि [(२) : सोचनि] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सोचनि] ।

दो०—बहु बिधि जल्पेसि सकल निसि प्रात भए[1] दसकंध।
सहज असंक लंकपति[2] सभा गयउ मद अंध॥
सो०—फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम[3]॥१६॥
इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥
सुनु सर्वज्ञ सकल गुन रासी[4]। सत्यसंध प्रभु सब उर बासी[5]॥
मंत्र कहौं निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा॥
नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन[6] करेहु बतकही सोई॥
सो०—प्रभु आज्ञा धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुनसागर ईस राम कृपा जापर करहु॥
स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दिएउ।
अस बिचारि जुवराज तन पुलकित हरषित हिये॥१७॥
बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ[7] भेंटा॥

१—प्र० : येहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट। द्वि० : प्र०। तृ०: बहु बिधि जल्पेसि सकल निसि प्रात भए। च० : तृ०।
२—प्र० : द्वि०, तृ०, च० : लंकपति [(६) : कुलकपति]।
३—प्र० : सत। [द्वि० : सिव]। तृ० : प्र०। च० : प्र० [(८) सम, (८अ) सिव]।
४—प्र० : उरबासी। द्वि० : प्र०। तृ० : गुनरासी। च० : तृ०।
५—प्र० : बुधि बल तेज धर्म गुनरासी। द्वि० : प्र०। तृ०: सत्य संध प्रभु सब उरबासी। च०: तृ०।
६—प्र० : सन। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(३) : सैं]।
७—प्र० : होइ गै। द्वि० : प्र० [(५) : सो होइ गइ]। तृ० : सो होइ गइ। च० : तृ०।

बातहिं बात करष बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥
तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई ॥
निसिचर निकर देखि भट भारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥
एक एक सन मरमु न कहहीं । समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भएउ कोलाहल नगर मँझारी । आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥
अब धौं काह करिहि करतारा । अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूँछे मगु देहिं देखाई । जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥

दो०—गएउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज ।
सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बलपुंज ॥ १८ ॥

तुरत निसाचर एक पठावा । समाचार रावनहिं जनावा ॥
सुनत बिहसि बोला दससीसा । आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥
आयेसु पाइ दूत बहु धाए । कपिकुंजरहि बोलि लै आए ॥
अंगद दीख दसानन बैसा[1] । सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा[1] ॥
भुजा बिटप सिर सृंग समाना । रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥
गएउ सभा मन नेंकु न मुरा । बालितनय अतिबल बाँकुरा ॥
उठेउ सभासद कपि कहुँ देखी । रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ ।
राम प्रताप सँभारि उर[2] बैठ सभा सिरु नाइ ॥ १९ ॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर । मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई । तव हित कारन आएउँ भाई ॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती । सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥

१—प्र० : क्रमशः बैसे, जैसे । द्वि० : प्र० [(३) (५) : बैसा जैसा] । [तृ० : बैसा, जैसा] ।
२—प्र० : सुमिरि मन । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सँभारि उर ।

बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा । जीतेहु लोकपाल सुर[1] राजा ॥
नृप अभिमान मोह बस किंबा । हरि आनेहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा । सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी । परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता कर आगे । येहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे ॥

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु[2] अभय करैगो[3] तोहि ॥ २० ॥

रे कपिपोत बोलु[4] संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नाते मानिए मिताई ॥
अंगद नाम बालि कर बेटा । ता सो कबहुँ भई ही[5] भेटा ॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना । हां बाली[6] बानर मैं जाना ॥
अंगद तहीं बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गएउ[7] ब्यर्थ[8] तुम्ह जाएहु । निज मुख तापस दूत कहाएहु ॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गए बालि पहिं जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥
राम बिरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके । श्री रघुबीर हृदयँ नहिं जाके ॥

१—प्र० : सा । द्वि० : प्र० । तृ० : सुर । च० : तृ० ।
२—प्र० : आरत गिरा सुनत । द्वि० : प्र० । [तृ०: सुनतहिं आरत गिरा] च० : प्र० [(६) (८) : सुनतहि आरत बचन] ।
३—प्र० : करैगो । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): करहिंगे] । [तृ० : करहिंगे] । च० : प्र० [(८) (८अ) : करहिंगे] ।
४—प्र : बोलु । द्वि० : प्र० [(३) (४) : न बोलु] । तृ०, च० : प्र० ।
५—प्र० : ही । द्वि०: प्र० [(५): रही] । [तृ०: ही] । च० : प्र० [(८) रही, (८अ) हुय] ।
६—प्र० : हा बाली । [द्वि० : रहा बालि] । तृ० : प्र० । च० : प्र० [(८) (८अ): रहा बालि] ।
७—प्र० : गएउ । [द्वि०, तृ० : गएहु] । च० : प्र० [(८) (८अ) : गएहु] ।
८—प्र० : व्यर्थ । द्वि० : प्र० । तृ० : बृथा] । च० : प्र० [(८) (८अ) बृथा] ।

दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस।
अंधो बधिर[1] न अस कहहिं[2] नयन कान तव बीस॥ २१॥

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहु मति उर बिहर न तोरा॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब[3] सहऊँ। नीति धर्म मैं[3] जानत अहऊँ॥
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी[4] नयन दूत रखवारी। बूडि न मरहु धर्मब्रत धारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हम्हू[5] बड भागी॥

दो०—जनि जल्पसि जड जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भएउ मराल इव संभु सहित कैलास॥ २२॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारिबिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा[6]। सो कि होइ अब समर अरूढ़ा॥
सिल्पिकर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला॥

१—प्र० : बधिर। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) बहिर, (८अ) बहिरौ]।
२—प्र० : कहहिं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): कहइ]।
३—प्र० : क्रमशः सब, मैं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) मैं, सब]।
४—प्र० : देखी। द्वि० : प्र०। [तृ० : देखे]। [च० : (५) देखिउँ, (८) देखेउँ, (८अ) देखे]।
५—प्र० : हम्हू। [द्वि०, तृ० : हमहुँ]। च० : प्र० [(८): हमहुँ]।
६—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : बूढ़ा [(५): मूढा]।

आवा प्रथम नगरु जेहि जारा । सुनि हँसि बोलेउ[1] बालिकुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसिचर नाहा । साचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई । को अस झूँठ सुनै[2] को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

दो०—अब जानेउँ पुर दहेउ कपि[3] बिनु प्रभु आयेसु पाइ ।
फिरि न गएउ निज नाथ[4] पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौ मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥
जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष ।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र[5] जाति कर रोष ॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक ।
जो[6] प्रतिपाले तासु हित करै उपाय अनेक ॥२३॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हित करै[7] धर्म निपुनाई ॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभु गुन कस न कहसि येहि भाँती॥

१—प्र० : सुनत बचन कह । द्वि० : प्र० । तृ० : सुनि हँसि बोलेउ । च० : तृ० ।
२—प्र० : सुनि अस बचन सत्य । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : को अस झूठ सुनै ।
३—प्र०: सत्य नगरु कपि जारेउ । द्वि०: प्र० । तृ०: अब जानेउ पुर दहेउ कपि । च०: तृ० ।
४—प्र० सुग्रीव । द्वि० : प्र० । तृ० : निज नाथ । च० : तृ० ।
५—प्र० : छत्र । द्वि० : प्र० [(५) (अ): छत्रि] । [च० : प्र० [(८) (अ): छत्रि] ।
६—[प्र० : जो] । द्वि० : जो । तृ०, च० : द्वि० [(६): जो] ।
७—प्र० : करै । द्वि० : प्र० । [तृ०: धरै] । च० : प्र० [(८अ): धरै] ।

मैं गुन गाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करौं नहिं काना ॥
कह कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा ॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरें लाज न रोष न माखा ॥
जौं असि मति पितु खाएहि कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोही ॥
बालि बिमल-जस भाजनु जानी । हतौं न तोहि अधम अभिमानी ॥
कहु[1] रावन रावन जग केते । मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते[2] ॥
बलिहि जितन एकु गएउ पताला । राखा[3] बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥
एकु बहोरि सहसभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख ।
इन्ह[4] महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ॥२४॥

सुनु सठ सोइ रावनु बलसीला । हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला । सठ अजहूँ जिन्हकें उर साला ॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरौं जाइ बरिआई ॥
जिन्ह[5] के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥

१—प्र० : कहु । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ) : सुनु] ।
२—प्र० : जेते । द्वि०: प्र० [(५अ): तेते] । [तृ० : तेते] । च० : प्र० [(८) (८अ): तेते] ।
३—प्र०: राखेउ । द्वि०: प्र० । तृ० : राखा । च०: तृ० ।
४—प्र० : इन्ह । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८): तिन्ह]
५—प्र० : जिन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० : तिन्ह] । च० : प्र० ।

आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा । सुनि हँसि बोलेउ[1] बालिकुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसिचर नाहा । साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई । को अस भूँठ सुनेर[2] को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

दो०—अब जानेउँ पुर दहेउ कपि[3] बिनु प्रभु आयेसु पाइ ।
फिरि न गएउ निज नाथ[4] पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥
जद्यपि लघुता राम कहुं तोहि बधें बड़ दोष ।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र[5] जाति कर रोष ॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुं काढ़त भट दससीस ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक ।
जो[6] प्रतिपालै तासु हित करै उपाय अनेक ॥२३॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हित करै[7] धर्म निपुनाई ॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभु गुन कस न कहसि येहि भाँती ॥

१—प्र० : सुनत बचन कह । द्वि० : प्र० । तृ० : सुनि हंसि बोलेउ । च० : तृ० ।
२—प्र० : सुनि अस बचन सत्य । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : को अस भूंठ सुनै ।
३—प्र०: सत्य नगर कपि जारेउ । द्वि०: प्र० । तृ०: अब जानेउं पुर दहेउ कपि । च०: तृ० ।
४—प्र० सुग्रीव । द्वि० : प्र० । तृ० : निज नाथ । च० : तृ० ।
५—प्र० : छत्र । द्वि० : प्र० [(५) (५अ): छत्रि] । [च० : प्र० [(८) (८अ): छत्रि] ।
६—[प्र० : जौ] । द्वि० : जो । तृ०, च० : द्वि० [(६): जौ] ।
७—प्र० : करै । द्वि० : प्र० । [तृ०: धरै] । च० : प्र० [(८अ): धरै] ।

मैं गुन गाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करौं नहिं काना ॥
कह कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा ॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरें लाज न रोष न माखा ॥
जौं असि मति पितु खाएहि कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोहीं ॥
बालि बिमल-जस भाजनु जानी । हतौं न तोहि अधम अभिमानी ॥
कहु[1] रावन रावन जग केते । मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते[2] ॥
बलिहि जितन एकु गएउ पताला । राखा[3] बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥
एकु बहोरि सहसभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख ।
इन्ह[4] महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ॥२४॥

सुनु सठ सोइ रावनु बलसीला । हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला । सठ अजहूँ जिन्हकें उर साला ॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरौं जाइ बरिआई ॥
जिन्ह[5] के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥

१—प्र० : कहु । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ) : सुनु] ।
२—प्र० : जेते । द्वि० : प्र० [(५अ) : तेते] । [तृ० : तेते] । च० : प्र० [(८) (८अ) : तेते] ।
३—प्र० : राखेउ । द्वि० : प्र० । तृ० : राखा । च० : तृ० ।
४—प्र० : इन्ह । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८) : तिन्ह]
५—प्र० : जिन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० : तिन्ह] । च० : प्र० ।

सोइ रावनु जग बिदित प्रतापी । सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ॥
दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान[1] ॥२५॥
सुनि अंगद सकोप कह बानी । बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा ॥
जासु परसु सागर खर धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दससीस[2] अभागा ॥
रामु मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा । अन्न दान अरु रस पीयूषा ॥
बैनतेय खग अहि सहसानन । चिंतामनि पुनि उपल दसानन ॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा । लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ॥
दो०—सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥ २६ ॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिंधु रघुराई ॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥
मूढ़ बृथा[3] जनि मारसि गाला । राम बयर होइहि अस हाला ॥
तव सिर निकर कपिन्ह कें आगें । परिहहिं धरनि राम सर लागें ॥
ते तव सिर कंदुक सम[4] नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥
जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक । छुटिहहिं अति कराल बहु सायक ॥
तब कि चलिहि अस[5] गाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ॥

१—[प्र० : अब जाना तब जान] । द्वि० : अब जाना तव ज्ञान [(५अ): अब जाना तब जान] । [तृ० : तब न जान अब जान] । [च० : (६) (८अ) अब जाना तब जान, (८)तब न जान अब जान] ।
२—प्र० : दससीस । द्वि० : प्र० । [तृ० : दसकंठ] । च० : प्र० ।
३—प्र० : बृथा । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) मुधा, (८) (८अ) मृषा] ।
४—प्र० : मम । द्वि० : प्र० । तृ० : सब । च० : तृ० ।
५—प्र० : अस । द्वि० : प्र० । [तृ०: सठ] । च० : प्र० ।

सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥
दो०—कुंभकरन अस[1] बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ॥ २७ ॥
सठ साखामृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होहिं ते सुनु जड़[2] कीसा ॥
मम भुज सागर बल जल पूरा । जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ॥
दिगपालन्ह मैं नीरु भरावा । भूप सुजसु खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा । पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हर गिरि मथन निरखु[3] मम बाहू । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥
दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस ।
हुने अनल महुँ बार बहु हरषित साखि गिरीस[4] ॥ २८ ॥
जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर कें कर आपन बध बाची । हसेउँ जानि बिधि गिरा असाची ॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें । लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें ॥
आन बीर बल सठ मम आगें । पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें ॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ॥
सिरु अरु सैल कथा चित रही । ता तें बार बीस तैं कही ॥
सो भुज बल राखेहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलि बाली ॥
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटें सीस कि होइअ सूरा ॥

१—प्र० : अस । द्वि० : प्र० । [तृ० : सम] । च०: प्र० ।
२—प्र० : सठ । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : जड़ ।
३—प्र० : निरखु । द्वि: प्र० । [तृ०: निरखि] । च०: प्र० [(८) (८अ): निरखि] ।
४—प्र० : अतिहरप बहु बार साखि गौरीस । द्वि० : प्र० । तृ महुँ बार बहु हरषित साखि गिरीस । च०: तृ० ।

बाजीगर[१] कहुँ कहिअ न बीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ॥
दो०—जरहिं पतंग बिमोह[२] बस भार बहहिं खरबृंद ।
ते नहिं सूर सराहिअहिं[३] समुझि देखु मतिमंद ॥ २९ ॥
अब जनि बतबढ़ाव खल करही । सुनु मम बचन मान परिहरही ॥
दसमुख मैं न बसीठीं आएउँ । अस बिचारि रघुबीर पठाएउँ ॥
बार बार इमि[४] कहइ कृपाला । नहिं गजारि जसु बधें सृकाला ॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥
नाहिं त करि मुखभंजन तोरा । लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥
जानेउँ तव बलु अधम सुरारी । सूनें हरि आनिहि[५] पर नारी ॥
तैं निसिचर पति गर्ब बहूता । मै रघुपति सेवक कर दूता ॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ । तोहि देखत अस कौतुक करऊँ ॥
दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ ।
मंदोदरी[६] समेत सठ जनकसुतहि[७] लै जाउँ ॥ ३० ॥
जौ अस करौं तदपि न बड़ाई । मुएहिं बधें कछु नहिं[८] मनुसाई ॥
कौल कामबस कृपन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी । बिष्नुबिमुख श्रुति संत बिरोधी ॥
तनुपोषक निंदक अघखानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥
अस बिचारि खल बधौं न तोहीं । अब जनि रिस उपजावसि मोहीं ॥
सुनि सकोप कह निसिचरनाथा । अधर दसन दसि मीजत हाथा ॥

१—प्र० : इंद्रजारि । द्वि० : प्र० । तृ० : बाजीगर । च० : तृ० ।
२—प्र० : मोह । द्वि० : प्र० । तृ० : बिमोह । च० : तृ० ।
३—प्र० : कहावहिं । द्वि० : प्र० । तृ० : सराहिअहिं । च० : तृ० ।
४—प्र० : अस । द्वि० : प्र० । तृ० : इमि । च० : तृ० ।
५—प्र० : आनिहि । [द्वि० : आनेहि] । [तृ० : आनेहि] । च० : प्र० ।
६—प्र० : नव तुरंग । द्वि० : प्र० । तृ० : मंदोदरी । च० : तृ० ।
७—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : जनकसुतहिं [(८) : जनक सुता] ।
८—प्र० : न कछू । द्वि० : कछु नहिं । तृ०, च० : द्वि० ।

रे कपि पोत[1] मरन अब चहसी। छोटें बदन बात बड़ि कहसी ॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें ॥
दो०—अगुन अमान जानि[2] तेहि दीन्ह पिता बनवास।
सो दुख अरु जुवती बिरह पुनि निसिदिन[3] मम त्रास ॥
जिन्हके बल कर गर्ब तोहि ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक ॥३१॥
जब तेहिं कीन्हि[4] राम कइ निंदा। क्रोधवंत अति भएउ कपिंदा ॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना ॥
कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी ॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे ॥
गिरत दसानन उठा सँभारी[5]। भूतल परे मुकुट पटधारी[5] ॥
कछु तेहिं लै[6] निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे ॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे ॥
की रावन करि कोपु चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए ॥
कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे ॥
दो०—कूदि[7] पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास ॥ ३२ ॥
उहाँ कहत दसकंध रिसाई। धरि मारहु कपि भाजि न जाई[8] ॥

१—प्र० : अधम। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : पोत।
२—प्र० : जानि। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : बिचारि]।
३—प्र० : निसिदिन। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): अनुदिन]।
४—[प्र०, द्वि०, तृ० : कीन्ह]। च०: कीन्हि [(८) (८अ): कीन्ह]।
५—प्र० : क्रमशः सभारि उठा दसकंधर, अति सुंदर। द्वि० : प्र०। तृ० : दसानन उठा सँभारी, पटधारी। च० : तृ०।
६—प्र० : तेहिं लै। द्वि०, तृ० : प्र०। [च०: बहु कर]
७—प्र० : तरकि। द्वि० : प्र०। तृ० : कूदि। च० : तृ०।
८—प्र०:उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥

येहि बिधि[1] बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ॥
महि अकीस करि फेरि दोहाई[2] । जियत धरहु तापस द्वौ भाई ॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरी[3] नहिं छाती ॥
रे त्रियचोर कुमारग गामी । खल मलरासि मंदमति कामी ॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि काल बस खल[4] मनुजादा ॥
या को फलु पावहिगो आगे । बानर भालु चपेटन्हि लागे ॥
राम मनुज बोलत असि बानी । गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥
गिरिहहिं रसना ससय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर ।
बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥
तव सोनित की प्यास तृषित[5] राम सायक निकर ।
तजौ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३॥

मै तव दसन तोरिबे लायक । आयेसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिस होति दसौ मुख तोरौं । लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ॥
गूलरि फल समान तव[6] लंका । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ॥
मै बानर फल खात न बारा । आयेसु दीन्ह न राम उदारा ॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ॥
साँचेहुँ मै लबार भुजबीहा । जौ न उपारिउँ तव दस जीहा ॥

१—प्र०: बधि । द्वि०: प्र० [(५)(६अ): बिधि] । [तृ०: बिधि] । च०. प्र० [(८)(८अ)·बिधि ।]
२—प्र० : मर्कटहीन करहु महि जाई । द्वि० : प्र० । तृ० : महि अकीस करि फेरि दोहाई ।
च० : तृ० ।
३—प्र० : बिहरति । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बिहरी ।
४—प्र० : खल, द्वि०: प्र० । [तृ:० सठ] । च०: प्र० [(६) (८अ): निसि] ।
५—[प्र० : निष्ठनि] द्वि०, तृ०, च० : तृषित ।
६—प्र०, द्वि०, तृ०, च०: तव [(६): यह] ।

राम प्रताप सुमरि [१] कपि कोपा । सभा माँझ पन करि पद रोपा ॥
जौ मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥
इंद्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
झपटहि करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥
पुनि उठि झपटहि सुरआराती । टरइ न कीस चरन येहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी [२] ॥

दो०—भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।
कोटि बिघ्न तें संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥३४॥

कपि बलु देखि सकल हियँ हारे । उठा आपु जुवराज प्रचारे [३] ॥
गहत चरन कह बालिकुमारा । मम पद गहे न तोर उबारा ॥
गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भएउ तेज हत श्री सब गई । मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥
सिंघासन बैठेउ सिर नाई । मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा ॥
उमा राम की भृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई । तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना । मान न ताहि कालु निअराना ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो । येह कहि चल्यो बालि नृप जायो ॥
हतौं न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ॥

१—प्र० : समुझि राम प्रताप । द्वि० : प्र० । तृ० : राम प्रताप सुमिरि । च० : तृ० ।
२—इस अर्द्धाली के बाद प्र०, द्वि०, तृ० में निम्न लिखित दोहा भी है, जो च० में नहीं है :

कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ ।
झपटहिं टरइ न कपि चरन पुनि बैठहिं सिरु नाइ ॥

३—प्र० जुवराज प्रचारे । [द्वि० : कपि के परचारे] । तृ०, च० : प्र० ।

प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावनु भयउ दुखारा ॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय व्याकुल सब भए बिसेषी ॥
दो०—रिपु बल धरषि[1] हरषि कपि बालितनय बलपुंज।
सजल सुलोचन पुलक तनु[2] गहे राम पद कंज ॥
साँझ जानि दसमौलि तब[3] भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरी निसाचरहि[4] बहुरि कहा समुझाइ ॥३५॥

कंत समुझि मन तजहु कुमतिहीं। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिहीं ॥
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाँघेहु असि मनुसाई ॥
पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जा के दूत केर अस[5] कामा ॥
कौतुक सिंधु नाँघि तव लंका। आएउ कपि केहरी असंका ॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा ॥
जारि नगरु सब[6] कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा ॥
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु ॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि[7] मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु ॥
बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा ॥
जनक सभा अगनित महिपाला[8]। रहे तुम्हौ बल बिपुल[9] बिसाला ॥
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : धरषि [(६) धरषित, (८अ) दरपित]।
२—प्र० : पुलक सरीर नयन जल। द्वि० : प्र०। तृ० : सजल सुलोचन पुलक तनु। च० : तृ०।
३—प्र० : दसकंधर। द्वि०, तृ०, : प्र०। च० : दसमौलि तब।
४—प्र० : रावनहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : तब रावनहि]। च०: निसाचरहि [(८): तब रावनहि]।
५—प्र० : येह। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : अस।
६—प्र० : सकल पुर। द्वि०, तृ० : प्र०। च०: नगरु सब।
७—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : जनि [(६) (८): मनि]।
८—प्र० : भूपाला। द्वि० : प्र० [(५अ): महिपाला]। तृ० : प्र०। च० : महिपाला।
९—प्र० : अतुल। द्वि० : प्र०। तृ० : बिपुल। च० : तृ० [(८): गर्ब]।

सुरपति सुत जानइ बल थोरा । राखा जिअत आँखि गहि फोरा ॥
सूपनखा के गति तुम्ह देखी । तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी ॥
दो०—बधि बिराध खरदूषनहि लीला हत्यो कबंध ।
बालि एक सर मार्‌यो तेहि जानहु दसकंध ॥३६॥
जेहिं जलनाथु बँधाएउ हेला । उतरे प्रभु दल सहित सुबेला ॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू । दूत पठएउ तव हित हेतू ॥
सभा माँझ जेहिं तव बल मथा । करि बरूथ महुँ मृगपति जथा ॥
अंगद हनुमत अनुचर जा के । रन बाँकुरे बीर अति बाँके ॥
तेहि कहुँ पिय पुनि पुनि नर कहहू । मुधा मान ममता मद बहहू ॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा । काल बिबस मन उपज न बोधा ॥
काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवइ साईं । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥
दो०—दुइ सुत मरे[१] दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु ।
कृपासिंधु रघुनाथ[२] भजि नाथ बिमल जसु लेहु ॥३७॥
नारि बचन सुनि बिसिख समाना । सभा गएउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली ॥
इहाँ राम अंगदहि बोलावा । आइ चरन पंकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी । बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥
बालितनय अति कौतुक मोहीं । तात सत्य कहु पूछौं तोहीं ॥
रावनु जातुधान कुल टीका । भुज बल अतुल जासु जग लीका ॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए । कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
सुनु सर्बज्ञ प्रनत सुखकारी । मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥
साम दान[३] अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥

१—प्र० : मरे । [द्वि० : (३) (४) (५) मारेउ, (५अ) मारे] । [तृ० : मारेउ] । [च० : मारे] ।
२—प्र० : रघुनाथ । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): रघुपतिहि] ।
३—प्र० : दान । द्वि० : प्र० [(३) (५अ): दाम] । तृ०:प्र० । च०: प्र० [(८) (८अ): [illegible]] ।

नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥
दो०—धर्महीन प्रभुपद बिमुख कालबिबस दससीस।
आए गुन तजि रावनहि[1] सुनहु कोसलाधीस॥
परम चतुरता स्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥३८॥
रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए॥
हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं[2]॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी॥
दो०—जयति राम भ्राता सहित[3] जय कपीस सुग्रीव।
गरजहिं केहरिनाद[4] कपि भालु महा बलसींव॥३९॥
लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना[5] दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥
आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत रजनीचर[6] मेरे॥

१—प्र० : तेहि परिहरि गुन आए। द्वि० : प्र०। तृ० : आए गुन तजि रावनहि। च० : तृ०।
२—[यह अर्द्धाली तृ०, तथा (६) और (८अ) में नहीं है]।
३—प्र० : जय लछिमन। द्वि०: प्र०। तृ०: भ्राता सहित। च०: तृ०।
४—प्र० : सिंघनाद। द्वि० : प्र०। तृ० : केहरि नाद। च० : तृ०।
५—प्र० : सुना। द्वि०, तृ०, च०, : प्र० [(६): सुनेउ]।
६—प्र० : सब निसिचर। द्वि० : प्र०। तृ०: रजनीचर। च० : तृ०।

अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा । गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ॥
सुभट सकल चारिहुँ-दिसि जाहू । धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
उमा रावनहि अस अभिमाना । जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ॥
चले निसाचर आयेसु माँगी । गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ॥
तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा । सूल कृपान परिघ गिरिखंडा ॥
जिमि अरुनोपल निकर निहारी । धावहिं सठ खग मांस अहारी ॥
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा । तिमि धाए मनुजाद अबूझा ॥

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर ।
कोटि कगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रन धीर ॥४०॥

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे । मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ । सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ ॥
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा । सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा । अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ॥
धावहिं गनहिं न अवघट घाटा । पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा ॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं । दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं ॥
उत रावन इत राम दोहाई । जयति जयति जय परी लराई ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं । कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥

छं०—धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं ।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं[1] ॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए ।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्हि[2] जहँ तहँ राम जसु गावत भए ॥

दो०—एक एक गहि रजनिचर[3] पुनि कपि चले पराइ ।
ऊपर आपुनु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ ॥४१॥

१—प्र० : पचारहीं । [द्वि०, तृ० : प्रचारहीं] । च० : प्र० [(=) (८अ) प्रचारहीं] ।
२—[प्र०, द्वि० , तृ०: मंदिरन्ह] । च० : मंदिरन्हि । ।
३—प्र० : निसिचर गहि । द्वि० : प्र० । तृ० : गहि रजनिचर । च० : तृ० ।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा । मर्दहिं निसिचर निकर[१] बरूथा ॥
चढ़े दुर्ग पुनि तहँ जहँ बानर । जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥
चले निसाचर[२] निकर पराई । प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥
हाहाकार भयउ पुर भारी । रोवहिं आरत बालक[३] नारी ॥
सब मिलि देहिं रावनहि गारी । राजु करत येहि मृत्यु हँकारी ॥
निज दल बिचल सुना[४] जब[५] काना । फेरि सुभट लंकेस रिसाना ॥
जो रन बिमुख फिरा मैं जाना[६]। तेहि मारिहौं[७] कराल कृपाना ॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना । समरभूमि भए बल्लभ[८] प्राना ॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने[९] । फिरे क्रोध करि बीर[१०] लजाने ॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा । तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा ॥

दो०—बहु आयुधधर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि ।
ब्याकुल कीन्हे[११] भालु कपि परिघ प्रचंडन्हि[१२] मारि ॥४२॥

भय आतुर कपि भागन लागे । जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता । कहँ नल नील दुबिद बलवंता ॥

१—प्र० : सुभट । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : निकर ।
२—प्र० : निसाचर । द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६) (८): तमीचर] ।
३—प्र० : बालक आतुर । द्वि० : प्र० । तृ० : आरत बालक । च० : तृ० ।
४—प्र० : सुनी । द्वि०, : प्र० । [तृ० : सुना] । च० : प्र० [(८): सुना] ।
५—प्र० : तेहिं । द्वि० : प्र० । तृ० : जब । च० : तृ० [(८अ): जौ] ।
६—[प्र० : सुना मैं काना] । द्वि० : फिरा मैं जाना [(५) (६) (८अ): सुना मैं काना] ।
तृ०, च० : द्वि० ।
७—प्र० : सो मैं हतब । द्वि०, तृ०: प्र० । च० : तेहि मारिहौं ।
८—प्र० : बल्लभ । द्वि० : प्र० । तृ० : दुर्लभ । च० : प्र० [(६) (८): दुल्लभ] ।
९—प्र० : डेराने । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : सकाने] ।
१०—प्र० : चले क्रोध करि सुभट । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : फिरे क्रोध करि बीर ।
११—प्र० : ब्याकुल किए । द्वि० : ब्याकुल कीन्हे । तृ० : द्वि० । च० : कीन्हे ब्याकुल ।
१२—प्र० : त्रिसूलन्हि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्रचंडन्हि ।

निज दल बिचल[१] सुना[२] हनुमाना । पच्छिम द्वार रहा बलवाना ॥
मेघनाद तहँ करइ लराई । टूट न द्वार परम कठिनाई ॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा । गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा । गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ॥
भजेउ रथ सारथी निपाता । ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥
दुसरे[३] सूत बिकल तेहि जाना । स्यंदन घालि तुरत गृह आना ॥
दो०—अंगद सुनेउ कि[४] पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल ।
समर[५] बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ॥४३॥

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर[६] । राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ॥
रावन भवन चढ़े तब[७] धाई । करहिं कोसलाधीस दोहाई ॥
कलस सहित गहि भवनु ढहावा । देखि निसाचरपति भय पावा ॥
नारिबृंद कर पीटहिं छाती । अब दुइ कपि आए उतपाती ॥
कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं । रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं ॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा । कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ॥
कूदि परे[८] रिपु कटक मँझारी । लागे मर्दइ भुज बल भारी ॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू । भजहु न रामहि सो फलु लेहू ॥
दो०—एक एक सब मर्दि करि[९] तोरि चलावहिं मुंड ।
रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड ॥४४॥

१—प्र० : बिचल । द्वि० : प्र० [(३): बिकल] । तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : सुना । द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६) (८अ): सुनी] ।
३—प्र० : दुसरे । द्वि० : प्र० । [तृ०: दूसर] । च० : प्र० ।
४—प्र० : सुना । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुने कि] । च० : सुनेउ कि ।
५—प्र० : रन । द्वि० : प्र० । तृ० : समर । च० : तृ० ।
६—प्र० : बंदर । द्वि०, तृ०, च० : [(६): बानर] ।
७—प्र० : द्वौ । द्वि० : प्र० । तृ० : तब । च० : तृ० ।
८—प्र० : परे । द्वि० : प्र० । [तृ० : परेउ] । च० : प्र० ।
९—प्र० : सो मर्दहिं । द्वि० : प्र० । [तृ० : मन मर्दहिं] । च० : सब मर्दि करि [(८): गहि रजनिचर] ।

महा महा मुखिआ जे पावहिं । ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा । देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥
खल मनुजाद द्विजामिष भोगी । पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥
उमा रामु मृदु चित करुनाकर । बयरभाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी । अस कृपाल को कहहु भवानी ॥
सुनि अस प्रभु न भजहिं भ्रम त्यागी । नर मति मंद ते परम अभागी ॥
अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा । कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसे । मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे ॥

दो०-भुजबल रिपु दल दलमलि[1] देखि दिवस कर अंत ।
कूदे जुगल प्रयास बिनु[2] आए जहँ भगवान ॥ ४८ ॥

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए । देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥
रामकृपा करि जुगल निहारे । भए बिगतश्रम परम सुखारे ॥
गए जानि अंगद हनुमाना । फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
जातुधान प्रदोष बल पाई । धाए करि दससीस दोहाई ॥
निसिचर अनी देखि कपि फिरे । जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी । लरत[3] सुभट नहिं मानहिं[4] हारी ॥
बीर तमीचर सब अति कारे[5] । नाना बरन बलीमुख भारे ॥
सबल जुगल दल समबल जोधा । कौतुक करत लरत करि क्रोधा ॥
प्राबिट सरद पयोद घनेरे । लरत मनहु मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया । बिचलत सेन कीन्ह इन माया ॥
भयउ निमिष महँ अति अँधियारा । बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥

---

१ प्र० : दलमलि । द्वि० : दलमलि । तृ० : द्वि० । [च० : दलमलेउ]।
२—प्र० : बिगतस्रम । द्वि० : प्र० । तृ० : प्रयास बिनु । च० : तृ० ।
३—प्र० : लरत । द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६): लरहिं]।
४—प्र० : मानहिं । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): मानत]।
५—प्र० : महाबीर निसिचर । द्वि० : प्र० । तृ०: बीर तमीचर सब । च० : तृ० [(८अ): बीरनिसिचार सब]।

दो०—देखि निविड़ तम दसहुँ दिसि कपि दल भएउ खँभार।
एकहि एकु न देखइ[1] जहँ तहँ करहिं पुकार ॥ ४६ ॥

येह सब मरम राम बिभु जाना[2]। लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ज्ञान उदय जिमि संसय[3] जाहीं ॥
भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि[4] बिगत स्रम त्रासा ॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥
भागत भट पटकहि धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं ॥

दो०—कछु घायल कछु रन परे[5] कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं मर्कट भालु भट[6] रिपु दल बल बिचलाइ ॥ ४७ ॥

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसलाधनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबहीं। भए बिगत स्रम बानर तबहीं ॥
उहाँ दसानन सचिव[7] हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
आधा कटकु कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा ॥
माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर ॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥

१—प्र० : देखइ। द्वि० : प्र०। [तृ० : देख तब]। [च० : (६) (८) देख तब, (८अ) देखहिं]।
२—प्र० : सकल मरम रघुनायक। द्वि० : प्र०। तृ० : यह सब मरम राम बिभु। च० : तृ०।
३—प्र०, द्वि०, तृ०, च०: संसय [(६) (८): दुख सब]।
४—प्र० : हरषि। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : कोपि]।
५—प्र० : मारे कछु घायल। द्वि० : प्र०। तृ०: घायल कछु रन परे। च० : तृ०।
६—प्र० : भालु बलीमुख। द्वि० : प्र०। तृ०: मर्कट भालु भट। च० : तृ०।
७—प्र० : सचिव। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): सुभट]।

जब तें तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जस गाया[१]। राम बिमुख काहु न सुख पाया[१]॥

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥
कालरूप खल बन दहन गुनगार घनबोध।
जेहि सेवहिं सिव कमल भव[२] तेहि सन[३] कवन बिरोध॥ ४८॥

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह[४] करि जाहि अभागे॥
बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत येहि कृपानिधाना[५]॥
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा॥
सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥
करत बिचार भएउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥
कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भएउ घनेरा॥
बिबिधायुधधर निसिचर धाए। गढ़ तें पर्बत सिखर ढहाए॥

छं०—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबि पात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि[६] गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

१—प्र० : क्रमशः गायो, पायो। द्वि० : प्र०। तृ० : गावा, पावा। च० : तृ०।
२—प्र० : सिव बिरंचि जेहि सेवहिं। द्वि० : प्र०। तृ० : जेहि सेवहिं सिव कमल भव। च० : तृ०।
३—प्र० : तासों। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : तेहिसन।
४—प्र० : मुँह। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): मुख]। तृ०: प्र०। [च० : मुख]।
५—प्र० : कृपानिधाना। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८म) : श्री भगवाना]।
६—प्र० : तेहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : तेइ]। च०: प्र० [(६): तेइ]।

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ ।
उतरि बीरवर दुर्ग तें[1] सन्मुख चलेउ बजाइ ॥४९॥

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा । अंगद हनूमंत बलसींवा ॥
कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही । आजु सठहि[2] हठि मारौं ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने । अतिसय कोप[3] स्रवन लगि ताने ॥
सर समूह सो छाँड़ै लागा । जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहि बानर । सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
भागे भय ब्याकुल कपि रिच्छा[4] । बिसरी सबहि जुद्ध कै इच्छा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा ॥

दो०—मारेसि दस दस बिसिख सब[5] परे भूमि कपि बीर ।
सिंघनाद गर्जत भएउ मेघनाद रन धीर[6] ॥५०॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला । क्रोधवंत जनु धाएउ काला ॥
महा महीधर तमकि उपारा[7] । अति रिस मेघनाद पर डारा ॥
आवत देखि गएउ नभ सोई । रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार पचार हनुमाना । निकट न आव मरमु सो जाना ॥

१—प्र० : उतरयो बीर दुर्ग ते । द्वि० : प्र० [(१अ) उतरि दुर्ग तें बीरवर] । तृ० : उतरि बीरवर दुर्ग तें । च० : तृ० ।

२—प्र० : सबहि । द्वि० : प्र० [(१अ): सठहि] । तृ० : सठहि । च० : तृ० ।

३—प्र० : क्रोध । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : कोप ।

४—प्र० : जहँ तहँ भागि चले । द्वि० : प्र० । तृ० : भागे भय ब्याकुल । च० : तृ० ।

५—प्र० : दस दस सर सब मारेसि । द्वि० : प्र० । तृ० : मारेसि दस दस बिसिख सब । च० : तृ० ।

६—प्र० : करि गर्जा मेघनाद बलबीर । द्वि० : प्र० । तृ० : गर्जत भएउ मेघनाद रन धीर । च० : तृ० ।

७—प्र० : महासैल एक तुरत उपारा । द्वि० : प्र० । तृ० : महा महीधर तमकि उपारा । च० : तृ० ।

राम समीप[१] गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥
देखि प्रताप[२] मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥
दो०—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावै निसिचर निज माया मति खोट॥५१॥
नभ चढ़ि बरषइ बिपुल अँगारा। महि तें प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥
बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथु पसारा॥
कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरनु बना येहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥
दो०—आयेसु मांगेउ[३] राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले सकोप अति[४] बान सरासन हाथ॥५२॥
छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाए॥
भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहिं सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहि थोरी॥
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु मरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥

१—प्र० : रघुपति निकट। द्वि० : प्र०। तृ०: राम समीप। च० : तृ०।
२—प्र० : प्रताप। द्वि०, तृ०, च०: प्र० [(६) (८अ): प्रभाउ]।
३—प्र० : मागि। द्वि० : प्र०। [तृ०: मागी]। च०: मांगेउ।
४—प्र० : क्रुद्ध होइ। द्वि० : प्र०। तृ० : सकोप अति। च० : तृ०।

असि रव पूरि रही नव खंडा । धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ॥
देखहिं कौतुक नभ सुरबृंदा । कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा ॥

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ ।
जिमि[1] अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रहर[2] छाइ ॥५३॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा । भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥
एकहि एक सकइ नहिं जीती । निसिचर छलबल करइ अनीती ॥
क्रोधवन तब भएउ अनंता । भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राच्छस भएउ प्रान अवसेषा ॥
रावनसुत निज मन अनुमाना । संकट भएउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाड़िसि साँगी । तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति कें लागें । तब चलि गएउ निकट भय त्यागें ॥

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ ।
जगदाधार अनंत[3] किमि उठइ चले खिसिआइ ॥ ५४ ॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू । जारइ भुवन चारि दस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥
यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥
सध्या भइ फिरि द्वौ बाहिनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आएउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥
जामवंत कह बैद सुषेना । लंका रहइ को पठइअ लेना ॥
धरि लघु रूप गएउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ॥

१—प्र० : जनु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : जिमि ।
२—प्र० : रहयो । द्वि०, तृ०, प्र० । च० : रहइ ।
३—प्र० : सेष । द्वि० : प्र० । तृ० : अनंत । च० : तृ० ।

दो०—रघुपति चरन सरोज[1] सिर नाएउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥ ५५ ॥
राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा ॥
दसमुख कहा मरमु तेहि सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना ॥
देखत तुम्हहिं नगरु जहिं जारा। तासु पंथ को रोकनिहारा[2] ॥
भजि रघुपति करु हित आपना। छाडहु नाथ मृषा[3] जलपना ॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा ॥
अहंकार ममता मद[4] त्यागू। महा मोह निसि सोवत[5] जागू ॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहु समर कि जीतिअ सोई ॥
दो०—सुनि दसकंठ[6] रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु येह खल रत मल भार ॥ ५६ ॥
अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया ॥
मारुतसुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहि बूझि जलु पिऔं जाइ स्रम ॥
राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा ॥
जाइ पवनसुत नाएउ माथा। लाग सो कहइ राम गुन गाथा ॥
होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं रामु न संसय या महिं ॥
इहाँ भएँ मैं देखौं भाई। ग्यान दृष्टि बल मोहिं अधिकाई ॥
माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल ॥

१—प्र० [illegible]। द्वि० प्र०। तृ० रघुपति चरन सरोज। च० तृ०।
२—प्र० [illegible]। द्वि० प्र० [(४) (५) (५अ) रोकनि [illegible]]। तृ० रोकनिहार। च० तृ०।
३—प्र० मृषा। द्वि० प्र० [(५अ) वृथा]। [तृ० वृथा]। च० प्र० [(६) (८) वृथा]।
४—प्र० मैं तैं मोर मूढ़ ता। द्वि० प्र०। तृ० अहंकार ममता मद। च० तृ०।
५—प्र० सूतत। द्वि० प्र०। तृ० सोवत। च० तृ०।
६—प्र० दसकंठ। द्वि० प्र०। तृ० दसकंधर। च० तृ०।

सर मज्जन करि आतुर आवहु । दिच्छा देउँ ज्ञान जेहि पावहु ॥
दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥ ५७ ॥
कपि तव दरस भइउँ निःपापा । मिटा तात मुनिवर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानेहु सत्य बचन कपि[1] मोरा ॥
अस कहि गई अपछरा जबहीं । निसिचर निकट गएउ सो[2] तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू । पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू ॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना । सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना ॥
देखा सैल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भएऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गएऊ ॥
दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर सर तकि[3] मारेउ चाप स्रवन लगि तानि ॥५८॥
परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरतु उठि[4] धाए । कपि समीप अति आतुर आए ॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा । जागत नहिं बहु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भए दुखारी । कहत बचन लोचन भरि बारी ॥
जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा । तेहिं पुनि येह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौं मोरें मन बच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम सूला । जौं मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा । कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥
सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल ।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघु कुल तिलक ॥५९॥

१—प्र० : कपि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): प्रभु] ।
२—प्र० : करि । द्वि० : प्र० । तृ० : सो । च० : तृ० ।
३—प्र० : सायक । द्वि०, तृ० : प्र० । च०: सर तकि ।
४—प्र० : नव । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : उठि ।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥
दो०—सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥६२॥
भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥
हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाकें हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥
कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहेऊ[१]। कहतेउँ तोहि समय निरबहेऊ[१]॥
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं[२] जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ तापत्रय मोचन॥
दो०—राम रूप गुन सुमिरि मन[३] मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥६३॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥
देखि बिभीषनु आगें गएऊ[४]। पद गहि नामु कहत निज भएऊ[४]॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लावा[५]। रघुपति भगत जानि मन भावा[५]॥
तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आएउँ। देखि दीन प्रभु के मन भाएउँ॥
सुनु सुत भएउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥

१—प्र० : क्रमशः कहा, निरबहा। द्वि० : प्र०। तृ० : कहेऊ, निरबहेऊ। च० : तृ०।
२—प्र० : मैं। द्वि०, तृ० च० : प्र० [(६) (८) निज]।
३—प्र० : सुमिरत। द्वि० : प्र०। तृ० : सुमिरि मन। च० : तृ०।
४—प्र० : क्रमशः आएउ, परेउ चरन निज नाम सुनाएउ। द्वि०, तृ० प्र०। च० : गएऊ, पद गहि नाम कहत निज भएऊ।
५—प्र० : क्रमशः लायो, भायो। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : लावा, भावा।

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भएहु तात निसिचर कुल भूषन ॥
बंधु बस तुम्ह[१] कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुख सागर ॥

दो०—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर ।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भएउँ कालबस बीर ॥ ६४ ॥

बंधु बचन सुनि चला[२] बिभीषन । आएउ जहँ त्रैलोक बिभूषन ॥
नाथ भूधराकार सरीरा । कुंभकरन आवत रनधीरा ॥
एतना कपिन्ह सुना जब काना । किलकिलाइ धाए बलवाना ॥
लिए उपारि[३] बिटप अरु भूधर । कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ॥
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एक एक[४] बारा ॥
मुरै[५] न मन तन टरै[५] न टारा[५] । जिमि गज अर्क फलन्हि को मारा[५] ॥
तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ[६] । परेउ[६] धरनि ब्याकुल सिर धुनेऊ[६] ॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता । घुर्मित भूतल परेउ तुरंता ॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारिसि । जहँ तहँ पटकि पटकि[७] भट डारिसि ॥
चली बलीमुख सेन पराई । अति भय त्रसित न कोउ समुहाई ॥

दो०—अंगदादि कपि घायबस[७] करि समेत सुग्रीव ।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बलसींव ॥ ६५ ॥

उमा करत रघुपति नर लीला । खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला ॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई । ताहि कि सोहइ ऐसि लराई ॥

१—प्र० : तैं । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : तुम्ह ।
२—प्र० : चला । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८) : फिरा] ।
३—प्र० : उठाइ । द्वि०, प्र० । तृ० : उपारि । च० : तृ० ।
४—प्र० : एक एक । द्वि० : प्र० [(४) (५) : एकहिं] । [तृ० एकहिं] च० : प्र० [(८) (८अ: एकहिं] ।
५—प्र० : क्रमशः मुरयो, टरयो, टारयो, मारयो । द्वि०: प्र० । तृ०: मुरै, टरै, टारे, मारे । च० : प्र० ।
६—प्र० : क्रमशः हन्यो,परयो,धुन्यो । द्वि० : प्र० । तृ० : हनेऊ,परेउ,धुनेऊ । च० : तृ० ।
७—प्र० : मुरछित । द्वि० : प्र० । तृ० : घायबस । च० : तृ० ।

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥
मुरछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥
कपिराजहु[1] के मुरछा बीती । निबुकि गएउ तेहिं मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना । गर्जि अकास चलेउ तेहि जाना ॥
गहेसि चरन गहि धरनि[2] पछारा । अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आएउ प्रभु पहिं बलवाना । जयति जयति जय कृपानिधाना[3] ॥
नाक कान काटे सोइ[4] जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु स्रुति नासा । देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥
दो०—जय जय जय रघुबंसमनि धाए कपि दै हूह ।
एकहि बार जो तासु[5] पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥ ६६ ॥
कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा । सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीडी गिरि गुहाँ समाई ॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा । निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥
रन[6] मद मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहि जनु येहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे । सूझ न नयन सुनहिं नहि टेरे ॥
कुंभकरन कपि फौज बिदारी[7] । सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥

१—प्र० : सुग्रीवहु । द्वि० : प्र० । तृ० : कपिराजहु । च० : तृ० ।
२—प्र० : गहेउ चरन गहि भूमि पछारा । द्वि० : प्र० । तृ० : गहेसि चरन गहि धरनि पछारा । च० : तृ० ।
३—प्र० : जयति जयति जय कृपानिधाना । द्वि० : प्र० । [तृ० : जय जय रघुबीर भगवाना ।] । च० : प्र० [(६) (८अ) : जय जय रघुबीर भगवाना]
४—प्र० : सिर । द्वि० तृ० : प्र० । च० : सोइ [(८) (८अ) : सो] ।
५—प्र० : तासु । द्वि० : प्र० । तृ० : जो तासु । च० : तृ० [(८) जो ताहि, (८अ) ते तासु] ।
६—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : मद [(६) (८) : रन] ।
७—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : बिदारा [(६) बिदारी, (८अ) बिदारा] ।

दो०—सुनु सौमित्रि कपीस तुम्ह सकल[1] सँभारेहु सेन।
मैं देखौं खल बल दलहि बोले राजिवनयन ॥ ६७ ॥
कर सारंग बिसिख[2] कटि भाथा। मृगपति ठवनि[3] चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा। रिपु दल बधिर भएउ सुनि सोरा ॥
सत्यसंध छाड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥
अति जव चले निसित[4] नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥
कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥
लागत बान जलद[5] जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं ॥
दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुपति के त्रोन[6] महुँ प्रबिसे सब नाराच ॥ ६८ ॥
कुंभकरन मन दीख बिचारी। हनी निमिष महँ निसिचर[7] धारी ॥
भएउ क्रुद्ध दारुन बलबीरा[8]। कियो[9] मृगनायक नाद गँभीरा ॥
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मरकट भट भारी ॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे ॥
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहु सायक ॥

१—प्र० : सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज। द्वि० : प्र०। तृ० : सुनु सौमित्रि कपीस तुम्ह सकल। च० : तृ०।
२—प्र० : साजि। द्वि० : प्र०। तृ० : बिसिख। च० : तृ० [(८प) : कठिन]।
३—प्र० : अरि दल दलन। द्वि० : प्र०। तृ० : मृगपति ठवनि। च० : तृ०।
४—प्र० : जहँ तहँ चले बिपुल। द्वि० : प्र०। तृ० : अति जव चले निसित। च० : तृ०।
५—प्र० : जलद। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) बनद, (८अ) मेघ]।
६—प्र० : रघुबीर निषंग। द्वि० : प्र०। तृ० : रघुपति के त्रोन। च० : तृ०।
७—प्र० : हति छन मांझ निसाचर। द्वि० : प्र०। तृ० : हनी निमिष महँ निसिचर। च० : तृ०।
८—प्र० : भा अति क्रुद्ध महा। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : भएउ क्रुद्ध दारुन।
९—प्र० : कियो। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० : करि]।

तन महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं॥
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट भट[1] आए॥
दो०—गर्जत धावइ बेग अति[2] कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥ ६९॥
भागे भालु बलीमुख जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥
येह निसिचर दुकाल सम अहई। कपि कुल देस परन अब चहई॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारतिहारी॥
सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली॥
खैंचि धनुष सत सर संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥
लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदरगिरि जैसा॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥
दो०—करि चिक्कार घोर अति[3] धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥ ७०॥
सभय देव करुनानिधि जानेउ। स्रवन प्रजंत सरासन तानेउ॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा[4]। कालत्रोन सजीव जनु आवा॥

१—प्र० : कपि। द्वि० : प्र०। [तृ० : पनि]। च० : भट।
२—प्र० : कटकटाइ कपि गर्ज। द्वि० : प्र०। तृ० : गर्जत धावउ बेग अति। च० : तृ०।
३—प्र० : करि चिक्कार घोर अति। द्वि० : प्र०। [तृ० : करि चिक्कार अति घोरतर]।
[च० : (१) करि चिक्कार अति घोरतर, (२) (=प्र०) करि चिक्कार अति घोर रव]।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : मुख सन्मुख [(१) : सन्मुख सो]।

तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥
सो सिर परेउ दसानन आगें । बिकल भएउ जिमि फनिमनि त्यागे ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥
परे भूमि जिमि नभ तें भूधर । हेठ दाबि कपि भालु निसाचर[1] ॥
तासु तेजु प्रभु बदन समाना । सुर मुनि सबहिं अचंभौ माना ॥
नभ[2] दुंदुभी बजावहिं हरषहिं । जय जय करि प्रसून सुर[3] बरषहिं ॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए । तेही समय देवरिषि आए ॥
गगनोपरि हरि गुनगन गाए । रुचिर बीर रस प्रभु मन भाए ॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए । राम समर महि सोभित भए ॥

छं०–संग्रामभूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसलधनी ।
स्रम बिंदु मुख राजीव लोचन रुचिर[4] तन सोनित कनी ॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने ।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने ॥

दो०–निसिचर अधम मलायतन[5] ताहि दीन्ह निज धाम ।
गिरजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥७१॥

दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी । समर भई सुभटन्ह स्रम घनी ॥
राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा ॥
छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती । निज मुख कहें धर्म[6] जेहिं भाँती ॥
बहु बिलाप दसकंधर करई । बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ॥

१—[तृ०, (६) तथा (८अ) में यह अर्द्धाली नहीं है]।
२—प्र० : सुर । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : नभ ।
३—प्र० : अस्तुति करहिं सुमन बहु । द्वि० : प्र० । [तृ० : जय जय करहिं सुमन सुर] ।
च० : जय जयकरि प्रसून सुर [(८) : जय जय करहिं सुमन सुर] ।
४—प्र० : अरुन । द्वि० : प्र० । तृ० : रुचिर । च० : तृ० ।
५—प्र० : मलाकर । द्वि० : प्र० । तृ० : मलायतन । च० : तृ० ।
६—प्र० : सुकृत । द्वि० : प्र० । तृ० : धर्म । च० : तृ० ।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी । तासु तेज बल बिपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहिं अवसर आवा । कहि बहु कथा पिता समुझावा ॥
देखेहु कालि मोरि मनुसाई । अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ॥
इष्टदेव सैं बल रथ पाएउँ । सो बल तात न तोहि देखाएउँ ॥
येहि बिधि जल्पत भएउ बिहाना । चहुँ दुआर लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु काल सम बीरा । उत रजनीचर अति रनधीरा ॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू । बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥

दो०—मेघनाद मायारचित[१] रथ चढ़ि गएउ अकास ।
गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि[२] भइ कपि कटकहि त्रास ॥ ७२ ॥

सक्ति सूल तरवारि कृपानी । अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ॥
डारइ परसु परिघ पाषाना । लागेउ बृष्टि करइ बहु नाना ॥
रहे दसहुँ दिसि सायक छाई[३] । मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनहिं कपि[४] काना । जो मारै तेहि कोउ न जाना ॥
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं । देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं ॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर । मायाबल कीन्हेसि सर पंजर ॥
जाहिं कहाँ भए ब्याकुल बंदर । सुरपति बंदि परेउ जनु मदर ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन । सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सैं[५] जूझइ लागा । सर छाड़इ होइ लागहिं नागा ॥

१—प्र० : मा [illegible] । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : मायारचित [(च्य) माया रची, (च्य) सुने [illegible]] ।
२—प्र० : [illegible] । द्वि० : प्र० । तृ० : प्रलय पयोद जिमि । च० : तृ० ।
३—प्र० : दस [illegible] रहे [illegible] नभ छाई । द्वि० : प्र० । तृ० : रहे दसहु दिसि सायक छाई । च० : तृ० ।
४—प्र० : सुनि [illegible] धुनि । द्वि० प्र० । तृ० : सुनहिं कपि । च० : तृ० [(च) (च्य) : [illegible] सुनि]
५—प्र० : सैं । द्वि० : प्र० । [तृ० : सन] । च० : प्र० [(ह) : मन] ।

ब्याल पासबस भए खरारी । स्वबंस अनंत एक अविकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतंत्र रामु[1] भगवाना ॥
रन सोभा लगि प्रभुहिं[2] बँधावा[3] । देखि दसा देवन्ह भय पावा[4] ॥

दो०—खगपति[5] जासु[6] नाम जपि मुनि काटहिं भव पास ।
सो प्रभु आव कि बंध तर[7] ब्यापक बिस्व निवास ॥ ७२ ॥

चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तज्ञ बिरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥
ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा । सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउँ तोही । लागेसि अधम[8] पचारइ मोही ॥
अस कहि तीव्र[9] त्रिसूल चलायो । जामवंत कर गहि सोइ धायो ॥
मारेसि मेघनाद कै छाती । परा धरनि[10] घुर्मित सुरघाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा[11] । महि पछारि निज बलु देखरावा[11] ॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा । तब गहि पद लंका पर डारा ॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठावा[12] । राम समीप सपदि सो आवा[12] ॥

१—[प्र०, द्वि० : एक] । तृ०, च० : रामु ।
२—प्र० : प्रभुहि । द्वि० : प्र० । [तृ० : आपु] । च० : प्र० [(८) : आपु] ।
३—प्र० : बंधायो । द्वि० : प्र० । तृ० : बंधावा । च० : तृ० ।
४—प्र० : नाग पास देवन्ह भय पायो । द्वि० : प्र० । तृ० : देखिदसा देवन्ह भय पावा । च० : तृ० ।
५—प्र० : गिरिजा । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : खगपति ।
६—प्र० : जासु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : जाकर ।
७—प्र० : सोकि बंधनर आवै । द्वि० : प्र० । तृ० : सो प्रभु आव कि बंधतर । च० : तृ० ।
८—प्र० अधम । द्वि० : प्र० । [तृ० : पतित] । च० : प्र० [(६) (८अ) : पतित] ।
९—प्र० : तरल । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : तीव्र ।
१०—प्र० : भूमि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : धरनि ।
११—प्र० : फिरायो, देखरायो । द्वि० : प्र० । तृ० : फिरावा, देखरावा ।
१२—प्र० : पठायो, आयो । द्वि० : प्र० । तृ० : पठावा, आवा । च० : तृ० ।

दो०—पन्नगारि खाए सकल छन महँ ब्याल बरूथ।
भए बिगत माया तुरत हरषे बानर जूथ[1]॥
गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ॥७४॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरि बर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥
सो सुधि पाइ बिभीषन कहई। सुनु प्रभु समाचार अस अहई[2]॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि रिपु[3] जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुखु माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥
लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही[4]॥
जामवंत कपिराज[5] बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउँ जन॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गभीरा॥
जौ तेहि आजु बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥
जौ सत संकर करहि सहाई। तदपि हतौ रघुबीर दोहाई॥

१—प्र० : खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥ द्वि० : प्र०।
तृ० : पन्नगारि खाए सकल छन महँ ब्याल बरूथ।
भए बिगत माया तुरत हरषे बानर जूथ॥ च० : तृ०
२—प्र० : इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥ द्वि० : प्र०।
तृ० सो सुधि पाइ बिभीषन कहई। सुनु प्रभु समाचार अस अहई॥ च० : तृ०।
३—प्र० : मुनि। द्वि० : प्र०। तृ० : रिपु। च० : तृ०।
४—प्र० में इस अर्द्धाली के अनन्तर निम्नलिखित अर्द्धाली और है:—
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजै निसिचर सुनु भाई॥
द्वि० : प्र०। तृ० में नहीं है। च० : तृ०।
५—प्र० : सुग्रीव। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : कपिराज।

दो०-बंदि राम पद कमल जुग[1] चलेउ तुरंत अनंत ।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट[2] हनुमंत ॥७५॥

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा[3] ॥
तब कीसन्ह कृत जज्ञ बिधंसा[4] । जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा ॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई । लातन्हि हति हति चले पराई ॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे । आए जहँ रामानुज आगे ॥
आवा परम क्रोध कर मारा । गर्ज घोर रव बारहिं बारा ॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए । हति त्रिसूल उर धरनि गिराए ॥
प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा । सर हति कृत अनंत जुग खंडा ॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा । हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ॥
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा । तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥
देखेसि आवत पबि सम बाना । तुरत भएउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई । कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा । येहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा[5] ॥
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि[6] दापा ॥
छाड़ेउ बान माँझ उर लागा । मरती बार कपटु सबु त्यागा ॥

दो०-रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाड़ेसि प्रान ।
धन्य धन्य तव जननी[7] कह अंगद हनुमान ॥७६॥

१—प्र० : रघुपति चरन नाइ सिर । द्वि० : प्र० । [तृ० : रघुपति चरनहिं नाइ सिर] । च० : बंदि राम पद कमल जुग ।
२—प्र०, द्वि०, तृ० च०, : सुभट [(६): रिपम] ।
३—[(६) में यह अर्द्धाली नहीं है] ।
४—प्र० : कीन्ह कपिन्ह सब । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : तब कीसन्ह कीन्ह ।
५—तृ० : लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा । द्वि० : प्र० । [तृ० : अब बध उचित कपिन्ह भय पावा] । च० : प्र० [(६) (८अ): अब बध उचित कपिन्ह भय पावा] ।
६—प्र० : करि [(२): अति] । द्वि०, तृ०, च० : प्र० ।
७—प्र० : धन्य धन्य तव जननी । द्वि० : प्र० । [तृ० : धन्य सक्र जित मातु तव] । च० : प्र० [(६) (८अ) धन्य सक्र जित मातु तव] ।

बिनु प्रयास हनुमान उठावा[१] । लंका द्वार राखि तेहि[२] आवा ॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा । चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ॥
बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं । श्रीरघुनाथ[३] बिमल जसु गावहिं ॥
जय अनंत जय जगदाधारा । तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा ॥
अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए । लछिमन कृपासिंधु पहिं आए ॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं । मुरुछित भएउ परेउ महि तबहीं ॥
मंदोदरी रुदन कर भारी । उर ताडत बहु भाँति पुकारी ॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा । सकल कहहिं दसकंधरु पोचा ॥

दो०—तब लंकेस अनेक बिधि[४] समुझाईं सब नारि ।
नस्वर रूप प्रपंच[५] सब देखहु हृदयँ बिचारि ॥७७॥

तिन्हहि ज्ञानु उपदेसा रावन । आपुन मंद कथा अति पावन[६] ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥
निसा सिरानि भएउ भिनुसारा । लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा ॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला । रन सन्मुख जाकर मन डोला ॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई । संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
निज भुज बल मै बयरु बढ़ावा । देहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥
अस कहि मरुत बेग रथ साजा । बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥
चले बीर सब अतुलित बली । जनु कज्जल कै आँधी चली ॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला । गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला ॥

१—प्र० : क्रमशः उठायो, आयो । द्वि० : प्र० । तृ० : उठावा, आवा । च० : तृ० ।
२—प्र० : पुनि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : तेहि ।
३—प्र० : रघुनाथ । द्वि० : प्र० । [तृ० : रघुबीर] । च० : प्र० [(६): रघुबीर] ।
४—प्र० : दसकंठ बिबिध बिधि । द्वि० : प्र० । तृ० : लंकेस अनेक बिधि । च० : तृ० ।
५—प्र० : जगत । द्वि० : प्र० । तृ० : प्रपंच । च० : तृ० ।
६—प्र० : अति पावन । द्वि० : प्र० [(५अ): सुभ पावन] । तृ०, च०: प्र० [(६): सुभ पावन] ।

छं०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ तें।
भट गिरत रथ तें बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ तें॥
गोमायु गृद्ध कराल खर रव स्वान रोवहिं[1] अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।

दो०—ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिस्राम।
मूतद्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ ७८॥

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥
चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥
अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटकु दिगसिंधुर डिगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥
उठी रेनु रबि गएउ छपाई। मरुत[2] थकित बसुधा अकुलाई॥
पवन निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय[3] के घन जनु गाजहिं॥
भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥
येह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई॥

छं०—धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहु सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥

१—प्र० : बोलहिं। द्वि० : प्र० [(न): रोवहिं]। तृ०: रोवहिं। च० : तृ०।
२—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : मरुत [(६): पवनु]।
३—प्र० : प्रलय समय। द्वि०: प्र०। [तृ०: महा प्रलय]। [च०: (६)(८अ) महा प्रलय, (८) प्रलय काल]।

नग दमन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं ।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं ॥

दो०—दुहुँ दिसि जयजयकार करि निज निज जोरी जानि ।
भिरे बीर इत रघुपतिहि[१] उत रावनहि बखानि ॥७९॥

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा । देखि बिभीषनु भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना । केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर विज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । येहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

दो०—महा अजय संसार रिपु जीति सकै सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥
सुनत बिभीषन प्रभु बचन[२] हरषि गहे पद कंज ।
येहि मिस मोहि उपदेस दिअ[३] राम कृपा सुख पुंज ॥
उत पचार दसकंठ भट[४] इत अंगद हनुमान ।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन ॥८०॥

१—प्र० : राम हित । द्वि० : प्र० [(५) राम कहि] । तृ० : रघुपतिहि । च० : तृ० [(८) राम कहि] ।
२—प्र० : सुनि प्रभु बचन बिभीषन । द्वि० : प्र० । तृ० : सुनत बिभीषन प्रभु बचन । च० : तृ० ।
३—प्र० : येहि मिस मोहि उपदेसेहु । द्वि० : प्र० । [तृ० : येहि बिधि मोहि उपदेसे] । च० : येहि मिस मोहिं उपदेस दिअ ।
४—प्र० : दसकंधर । द्वि० : प्र० । तृ० : प्र० । च० : दसकंठ भट ।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना । देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
हमहूँ उमा रहे तेहि संगा । देखत राम चरित रन रंगा ॥
सुभट समर रस दुहुँ दिसि माते । कपि जयसील राम बल ताते ॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं । एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं । सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं[1] । गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं[1] ॥
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू । ऊपर ढारि[2] देहिं बहु बालू ॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे । देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे ॥

छं०—क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत सोनित राजहीं ।
मर्दहिं निसाचर कटकु भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं ।
चिक्करहिं मरकट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं ॥
धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं ।
प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं ॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही ।
जय राम जो तृन तें कुलिस कर कुलिस तें कर तृन सही ॥

दो०—निज दल बिचल बिलोकि तेहिं[3] बीस भुजा दस चाप ।
चलेउ दसानन[4] कोपि तब फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर । सन्मुख चले हूह दै बंदर ॥
गहि कर पादप उपल पहारा । डारेन्हि तापर एकहि बारा ॥
लागहिं सैल बज्र तनु तासू । खंड खंड होइ फूटहिं आसू ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : उपारहिं, डारहिं [(६) उपाटहिं, टाटहिं] ।
२—प्र० : डारि । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (=अ) : टारि] ।
३—प्र० : बिचलत देखिसि । द्वि० : प्र० । [तृ० : बिचल बिलोकि तेहि] । च० : बिचल बिलोकि तेहिं ।
४—प्र० : रथ चढ़ि चलेउ दसानन । द्वि० : प्र० । तृ० : चलेउ दसानन कोपि तब । च० : तृ० ।

चला न अचल रहा रथ[1] रोपी। रन दुर्मद रावनु अति कोपी॥
इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥
पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। येह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक सधाने॥

छं०–संधानि धनु सर निकर छाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहलु बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥

दो०–बिचलत देखि अनीक निज कटि[2] निषंग धनु हाथ।
लछिमनु चले सरोष तव[3] नाइ राम पद माथ॥८२॥

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावौं छाती॥
अस कहि छाँड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे[4]। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥
सत सर पुनि मारा उर माहीं। परेउ अवनि[5] तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाड़ेसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥

१—प्र० : रहा। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ) : महा]।
२—प्र० : निजदल बिकल देखि कटि कसि। द्वि० : प्र०। [तृ० : निज दल बिकल बिलोकि तेहिं कटि]। च० : बिचलत देखि अनीक निज कटि।
३—प्र० : क्रुद्ध होइ। द्वि० : प्र०। तृ० : सरोष तव। च० : तृ०।
४—प्र० : टारे। द्वि० : प्र०। [तृ० : मारे]। च० : प्र०।
५—प्र० : धरनि। द्वि० : प्र०। तृ० : अवनि। च० : तृ०।

छं०—सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही ।
परयो बीरु बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही ॥
ब्रह्मांड भवन[1] बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी ॥

दो०—देखत धाएउ[2] पवनसुत बोलत बचन कठोर ।
आवत तेहिं उर महँ हतेउ[3] मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥८३॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा[4] । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥
मुरुछा गइ बहोरि सो जागा । कपि बल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही । जौं तैं जिअत उठेसि सुरद्रोही ॥
अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो । देखि दसानन बिसमय पायो ॥
कह रघुबीर समुझु जिअँ भ्राता । तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता ॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ॥
धरि सर चाप चलत पुनि भए । रिपु समीप अति आतुर गए[5] ॥

छं०—आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति ब्याकुल कियो ।
गिर्यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥

१—प्र० : भवन । द्वि० : प्र० [(३) (४) भुवन] । [तृ० : भुवन] । च० : प्र० [(८) भुवन] ।

२—प्र० : देखि पवन सुत धायउ । द्वि० : प्र० । तृ० : देखत धाएउ पवन सुत । च० : तृ० ।

३—प्र० : आवत कपिहि हन्यो तेहिं । द्वि० : प्र० । तृ० : आवत तेहि उर महं हतेउ । च० : तृ० ।

४—प्र० : गिरा । द्वि० : प्र० । [तृ० : परा] । च० : तृ० ।

५—प्र० : पुनि कोदंड बान गहि धाए ।
रिपु सन्मुख अति आतुर आए ॥ द्वि०, तृ० : प्र० ।
च० : धरि सर चाप चलत पुनि भए ।
रिपु समीप अति आतुर भए ॥

सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीरबंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

दो०—उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
जय चाहत रघुपति बिमुख[1] सठ हठ बस अति अग्य॥८४॥

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहि मरिहि अभागा॥
पठवहु देव[2] बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दससंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जज्ञ करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥
रन तें निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा[3] लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

छं०—नहि चितव जब कपि कोपि तब[4] गहि दसन्ह लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽति दीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध[5] कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
येहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

दो०—मख बिधंसि कपि कुसल सब[6] आए रघुपति पास।
चलेउ लंकपति[7] क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥८५॥

१—प्र० : राम बिरोध बिजय चह। द्वि० : प्र० [(५अ) राम बिरोधी बिजय चह]। [तृ० : बिजय चहत रघुपति बिमुख]। च० : जय चाहत रघुपति बिमुख।
२—प्र० : नाथ। द्वि० : प्र०। तृ० : देव। च० : तृ० [(८अ): दूत]।
३—प्र० : मारा। द्वि० : प्र० [(५अ): मारेउ]। [तृ०, च०: मारेउ]।
४—प्र० : करि कोप कपि। द्वि० : प्र०। तृ० : कपि कोपि तब। च० : तृ०।
५—प्र० : क्रुद्ध। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० : कोपि]।
६—प्र० : जग्य बिधंसि कुसल कपि। द्वि० : प्र०। [तृ० : जग्य बिधंस करि कुसल सब]। च० : मख बिधंसि कपि कुसल सब।
७—प्र० : निसाचर। द्वि० : प्र०। तृ० : लंकपति। च०: तृ०।

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भएउ कालबस काहुँ न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥
चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥
इहाँ देवतन्ह बिनती[१] कीन्ही। दारुन बिपति हमहि येहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु येही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥
देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बाँधे माथें। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथें॥
अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटि तट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥
छं०—सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यौ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यौ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥
दो०—हरषे देव बिलोकि छबि[२] बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल धाम हरन महिभार[३]॥८६॥
येहीं बीच निसाचर अनी। कसमसाति आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घन घट्टा॥
बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दह दिसि[४] दामिनी दमंकहि॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जत[५] मनहुँ बलाहक घोरा॥

१—प्र० : अस्तुति। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : बिनती।
२—प्र० : सोमा देखि हरषि सुर। द्वि०: प्र०। तृ०: हरषे देव बिलोकि छबि। च०: तृ०।
३—प्र० : जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार। द्वि० : प्र०। तृ० : जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल धाम हरन महि भार। च०: तृ०।
४—प्र० : जनु दह दिसि। द्वि० : प्र०। [तृ०: जनु दस दिसि]। च० : प्र० [(न) जनु चहुँ दिसि, (नअ) मानहुँ घन]।
५—प्र० : गर्जहिं। द्वि० : प्र०। तृ० : गर्जत। च० : तृ०।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए । मनहु इंद्र धनु उए सुहाए ॥
उठै धूरि मानहुँ जल धारा । बान बुंद भइ बृष्टि अपारा ॥
दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा । बज्रपात जनु बारहिं बारा ॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई । घायल भै निसिचर समुदाई ॥
लागत बान बीर चिक्करहीं । घुर्मि घुमि जहँ तहँ महि परहीं ॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी[१] । सोनित सरि कादर भयकारी ॥
छं०—कादर भयकर रुधिर सरिता बढ़ी[२] परम अपावनी ।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी ॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने ।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने ॥
दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन ।
कादर देखत डरहिं तेहि[३] सुभटन्ह कें मन चैन ॥८७॥
मज्जहिं भूत पिसाच बेताला । प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कंक ले भुजा उडाहीं । एक ते छीनि एक ले खाहीं ॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥
कहरत भट घायल तट गिरे । जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥
खैंचहिं गीध आँत तट भएँ । जनु बनसी खेलत चित दएँ ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं । जनु नावरि खेलहिं सर माहीं ॥
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं ॥
भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नाना बिधि गावहिं ॥
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुहाहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥

१—प्र० : भारी । द्वि० : प्र० [(४) बारी] । [तृ० : बारी] । च० : प्र० [(८) (८अ) बारी] ।
२—प्र० : चली । द्वि० : प्र० । तृ० : बढ़ी । च० : तृ० [(८) चलेउ] ।
३—प्र० : देखि डरहिं तहँ । द्वि० : प्र० । तृ० : देखत डरहिं तेहि । च० : तृ० [(८) देखत रूपडरहिं] ।

कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु चल्लहिं[१] । सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥

छं०—बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं[२] ॥
निसिचर बरूथ बिमर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भए[३] ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥

दो०—हृदयँ बिचारेउ दसबदन[४] भा निसिचर संघार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार ॥८८॥

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा । उपजा अति उर छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथु तुरत पठावा । हरप सहित मातलि लै आवा ॥
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा । बिहँसि[५] चढ़े कोसलपुर भूपा ॥
चंचल तुरग मनोहर चारी । अजर अमर मन सम गति कारी[६] ॥
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी । धाए कपि बलु पाइ बिसेषी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी । तब रावन माया बिस्तारी ॥
सो माया रघुबीरहि बाँची । सब काहू मानी करि साँची[७] ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी । बहु अंगद लछिमन कपि धनी[८] ॥

१—प्र० : चलहिं । [द्वि० टोलहिं] ।[तृ०: डोलहिं] । च०: प्र० [(८) (८अ) टोलहिं] ।
२—प्र० : भटन्ह ढहावहीं । द्वि० : प्र० [(५अ); सुरपुर पावहीं] । [तृ०, च० : सुरपुर पावहीं] ।
३—प्र० : बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए । द्वि० : प्र० । तृ०: निसिचर बरूथ बिमर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भए । च० : तृ० ।
४—प्र० : रावन हृदयँ बिचारा । द्वि० : प्र० । तृ० : हृदय बिचारेउ दस बदन । च० : तृ० ।
५—प्र० : हरपि । द्वि० : प्र० । तृ० : बिहँसि । च० : तृ० ।
६— [तृ०, (६) तथा (८अ) में यह अर्द्धाली नहीं है] ।
७—प्र० : लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची । द्वि० : प्र० । तृ० : सब काहू मानी करि साँची । च० : तृ० ।
८—प्र० : अनुज सहित बहु कोसल धनी । द्वि० : प्र० । तृ० : बहु अंगद लछिमन कपि धनी । च० : तृ० ।

छं०—बहु बालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मर्कट अपडरे[1]।
जनु निज निसिचर समेत लछिमन जहँ सो तहँ निसचरहिं मारे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल बानर[2] अनी॥

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गभीर।
द्वंद जुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥८९॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा[3]॥
जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥
खर दूषन कबंध[4] तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥
आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाहीं॥
आजु करौं खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन कें पाले॥
सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि कहेउ तब[5] कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महुँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

१—प्र० : बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे। द्वि० : प्र०। तृ० बहु बालि सुत लछिमन कपीस बिलोकि मर्कट अपडरे। च० : तृ०।
२—प्र० : मर्कट। द्वि० : प्र०। तृ०: बानर। च० : तृ०।
३—प्र० : धावा। द्वि० : प्र० [(५)(५अ) आवा]। तृ० : आवा। च० : तृ०।
४—प्र० : बिराध। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : कबंध।
५—प्र० : बिहँसि बचन कह। द्वि० : प्र०। तृ० : बिहँसि कहेउ तब। च० : तृ०।

दो०—राम बचन सुनि बिहँसि कह[1] मोहि सिखावत ज्ञान।
बयरु करत नहिं तब डरे[2] अब लागे प्रिय प्रान॥९०॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाड़ै सर॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥
अनल बान[3] छाड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई[4]॥
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ॥
निःफल होहिं रावन सर कैसें। खल कें सकल मनोरथ जैसें॥
तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥

छं०—भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

दो०—तानि सरासन[5] स्रवन लगि छाड़े बिसिख कराल।
राम मार्गन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥९१॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हत्यो सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बलु थाका॥
तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ता कें। जिमि पर द्रोह निरत मनसा के॥
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥

१—प्र० : बिहसा। द्वि० : प्र०। [तृ० : बिहँसेउ]। च० : बिहसि कह।
२—प्र० : डरे। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) (८): टरेहु]।
३—प्र० : पावक सर। द्वि० : प्र०। तृ० : अनल बान। च० : तृ०।
४—प्र० : चलाई। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(७) (६) (८): पठाई]।
५—प्र० : तानेउ चाप। द्वि० : प्र०। तृ० : तानि सरासन। च० : तृ०।

द्वौ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै ।
रघुबीर बल गर्बित[1] बिभीषनु घालि नहिं ताकहुँ गनै ॥
दो०—उमा बिभीषनु रावनहिं सनमुख चितव कि काउ ।
भिरत सो काल समान अब[2] श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥ ९४ ॥
देखा स्रमित बिभीषनु भारी । धाएउ हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता । हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥
ठाढ़ रहा अति कंपित गाता । गएउ बिभीषनु जहँ जनत्राता ॥
पुनि रावन तेहि[3] हनउ पचारी । चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥
गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना । पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥
लरत अकास जुगल सम जोधा । एकहिं एकु हनत करि क्रोधा ॥
सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं । कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं ॥
बुधि बल निसिचर परै न पारा । तब मारुतसुत प्रभु सभारा[4] ॥
छं०—सभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावन हन्यो ।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो ॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दलमले ॥
दो०—राम पचारि बीर तब[5] धाए कीस प्रचंड ।
कपि दल प्रबल बिलोकि[6] तेहिं कीन्ह प्रगट पाखंड ॥ ९५ ॥
अंतर्धान भएउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥

१—प्र० : दर्पित । द्वि० : प्र० तृ० : गर्बित । च० : तृ० ।
२—प्र० : सो अब भिरत काल ज्यों । द्वि० : प्र० । [तृ० : सो अब भीरत काल ज्यों] । च० : भिरत सो काल समान अब ।
३—प्र० : कपि । द्वि० : प्र० । तृ० : तेहिं । च० : तृ० ।
४—प्र० : पारयो, संभारयो । द्वि० : प्र० । तृ० : पारा, संभारा । च० : तृ० ।
५—प्र० : तब रघुबीर पचारे । द्वि० : प्र० । तृ० : राम पचारे बीर तब । च० : तृ० ।
६—प्र० : देखि । द्वि० : प्र० । तृ० : बिलोकि । च० : तृ० ।

काटे सिर नभ मारग धावहिं । जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥
कहँ लछिमनु हनुमान[1] कपीसा । कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥

छं०—कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ॥
सिर मालिका गहि कालिका कर[2] बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं ।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं ॥

दो०—पुनि रावन अति कोप करि छाड़िसि[3] सक्ति प्रचंड ।
चली बिभीषन सन्मुख[4] मनहुँ काल कर दंड ॥९३॥

आवत देखि सक्ति खर धारा[5] । प्रनतारति हर बिरिद सँभारा[5] ॥
तुरत बिभीषनु पाछें मेला । सनमुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
लागि सक्ति मुरुछा कछु भई । प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पाएउ[6] । गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धाएउ ॥
रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे । तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे ॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए । एक एक के कोटिन्ह पाए ॥
तेहिं कारन खल अब लगि बाँचा[7] । अब तव कालु सीस पर नाचा[7] ॥
राम बिमुख सठ चह संपदा । अस कहि हनेसि माँझ उर गदा ॥

छं०—उर माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो ।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो ॥

१—प्र० : सुग्रीव । द्वि० : प्र० । तृ० : हनुमान । च० : प्र० ।
२—प्र० : कर कालिका गहि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : गहि कालिका कर ।
३—प्र० : पुनि-दस कंठ क्रुद्ध होइ छांडी । द्वि० : प्र० । तृ० : पुनि रावन अति कोप करि छाडिसि । च० : तृ० ।
४—प्र० : चली बिभीषन सन्मुख । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : सन्मुख चली बिभीषनहि] ।
५—प्र० : क्रमशः अति घोरा, भंजन पन मोरा । द्वि० : प्र० । तृ० : खर धारा, हर बिरदु सँभारा । च० : तृ० ।
६—प्र० : पायो, धायो । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : पाएउ, धाएउ ।
७—प्र० : बाँचा, नाचा । द्वि० : प्र० । तृ० बाँचा, नाचा । च० : तृ० ।

छं०—गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

दो०—तब रघुपति लंकेस[1] के सीस भुजा सर चाप।
काटे भए बहोरि जिमि[2] कर्म मुकुर[3] कर पाप॥८७॥

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहु भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा॥
बालितनय मारुति नल नीला। द्विबिद कपीस पनस[4] बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥
एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गए[5]। नखन्हि[6] लिलार बिदारत भए[5]॥
रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी[7]। तिन्हहिं धरन कहुं भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥
कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥
हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥
संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥

१—प्र० : रावन। द्वि० : प्र०। तृ० : लंकेस। च० : तृ०।
२—प्र० : काटे बहुत बढ़े पुनि। द्वि० : प्र०। [तृ० : काटे भए बहोरि तेइ]। च० : काटे भए बहोरि जिमि।
३—प्र० : जिमि तीरथ कर। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : कर्म मुकुर।
४—प्र० : बानरराज दुबिद। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : दुबिद कपीस पनस।
५—[प्र० : ठएऊ, भएऊ]। द्वि०, तृ० : गएऊ, भएऊ। च० : गए, भए।
६—प्र० : नखन्हि। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : नखन्ह]।
७—प्र० : रुधिर देखि बिषाद उर भारी। द्वि० : प्र०। रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी। च० : तृ०।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा । भागे भालु विकट भट[1] कीसा ॥
चले बलीमुख[2] धरहिं न धीरा । त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥
दह दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन । गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई । जय कै आस तजहु अब भाई ॥
सब सुर जिते एक दसकंधर । अब बहु भए तकहु गिरि कंदर ॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ज्ञानी । जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥
छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे ।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे ।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥
दो०—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस ।
सजि बिसिषासन एक सर[3] हते सकल दससीस ॥९६॥
प्रभु छन महँ माया सब काटी । जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एक देखि सुर हरषे । फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥
भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे । फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए । तरल तमकि संजुगमहि आए ॥
करत प्रसंसा सुर तेहिं देखे[4] । भएउँ एक मैं इन्ह के लेखे ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल । अस कहि कोपि गगन पर[5] धायल ॥
हाहाकार करत सुर भागे । खलहु जाहु कहँ मोरे आगे ॥
बिकल देखि सुर अंगदु धायो । कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥

१—प्र० : जहँ, तहँ भजे भालु अरु । द्वि० : प्र० । तृ० : भागे भालु विकट भट कीसा ।
२—प्र० : भागे बानर । द्वि० : प्र० । तृ० : चले बलीमुख । च० : तृ० ।
३—प्र० : सजि सारँग एक सर । द्वि० : प्र० । तृ० : सजि त्रिसिखासन एक सर । च० : तृ० [(८): खैंचि सरासन स्रवन लगि] ।
४—प्र०: असतुति करत देवतन्ह देखे । द्वि० : प्र० । तृ० : करत प्रसंसा सुर तेहिं देखे । च० : तृ० ।
५—प्र० : पर । द्वि० : प्र० । [(३) (४) (५): पथ] । तृ० : प्र० । [च० : पथ] ।

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु ता तें उर हतें न तेही। येहि कें हृदयँ बसहिं बेदेही॥

छं०—येहि कें हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु येहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि ससय महा॥

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि[१] हृदय महुं मरिहहिं रामु सुजान॥९९॥

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बेदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥
निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती[२]॥
करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी॥
जब अति भएउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥
इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥
तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भएउ घनेरा॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥

छं०—धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवन कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु व्याकुल कियो॥

१—प्र० : रावनहि। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : (६) (८) रावन कहुँ, (८अ) रावन के]।
२—प्र० : सिराति न राती। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): न राति सिरानी]। तृ०, च० : प्र० [(६) (८अ): बिहानि न राती]।

भएउ क्रुद्ध रावनु बलवाना । गहि पद महि पटकै भट नाना ॥
देखि भालुपति[१] निज दल घाता । कोपि माँझ उर मारेसि लाता ॥

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत विकल रथ तें महि परा ।
गहे[२] भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा ॥
मुरुछित बहोरि बिलोकि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो ।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

दो०—गइ मुरुछा तब[३] भालु कपि सब आए प्रभु पास ।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥९८॥

तेहीं निसि सीता पहिं जाई । त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई ॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी । सीता उर भइ त्रास घनेरी ॥
मुख मलीन उपजी मन चिंता । त्रिजटा सन बोलीं तब सीता ॥
होइहि कहा[४] कहसि किन माता । केहि बिधि मरिहि बिस्व दुख दाता ॥
रघुपति सर सिर कटेहु न मरई । बिधि बिपरीत चरित सब करई ॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही । जेहि हौं हरि पद कमल बिछोही ॥
जेहिं कृत कपट कनकमृग झूठा । अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा ॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए । लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ॥
रघुपति बिरह सबिष सर भारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥
बहु बिधि कर[५] बिलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥

१—[प्र० : भालुकपि] । द्वि० : भालुपति । तृ० : च० : द्वि० ।
२—प्र० : गहे । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): गहि] । [तृ० : गहि] । च०: प्र० [(८)(८अ): गहि] ।
३—प्र० : मुरछा बिगत । द्वि० : प्र० । तृ० : गै मुरछा तब । च० : तृ० ।
४—[प्र०, द्वि० : कहा] । तृ० : काह । च० : तृ० ।
५—प्र० : कर । [द्वि०: (३) (४) (५) करत, (५अ) करति] । [तृ०: करत] । च०: प्र० [(६) (८):करत] ।

दो०-कहे तासु गुन गन कछुक[1] जड़मति तुलसीदास ।
　　निज पौरुष अनुसार जिमि[2] मसक उड़ाहिं अकास[3] ॥
　　काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस ।
　　प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस ॥१०१॥
काटत बढ़हिं सीस समुदाई । जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु स्रम भयउ बिसेषा । राम बिभीषन तन तब देखा ॥
उमा काल मर जाकी ईछा । सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥
सुनु सर्बज्ञ चराचर नायक । प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक ॥
नाभीकुंड सुधा[4] बस जा कें । नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ॥
असगुन होन लगे[5] तब नाना । रोवहिं खर सृकाल बहु[6] स्वाना ॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू । प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू ॥
दस दिसि दाह होन अति लागा । भयउ परब बिनु रबि उपरागा ॥
मंदोदरि उर कंपति भारी । प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी ॥
छं०-प्रतिमा स्रवहिं[7] पबि पात नभ अति बात बह डोलति मही ।
　　बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही ॥
　　उतपात अमित बिलोकि नभ सुर[8] बिकल बोलहिं जय जये ।
　　सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए ॥

१—प्र० : ताके गुनगन कछु कहे । द्वि० : प्र० । तृ० : कहे तासु गुनगन कछुक । च० : तृ० ।
२—प्र० : जिमि निज बल अनुरूप ते । द्वि० : प्र० । तृ० : निज पौरुष अनुसार जिमि । च० : तृ० ।
३—प्र० : माछी उड़ै अकास । द्वि०, तृ० : प्र० । तृ० : मसक उड़ाहिं अकास । च० : तृ० ।
४—प्र० : नाभिकुंड पियूष । द्वि० : प्र० । तृ० : नाभी कुंड सुधा । च० : तृ० ।
५—प्र० असुभ होन लागे । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : असगुन होन लगे ।
६—प्र० : खर सृकाल बहु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : बहु सृकाल खर ।
७—प्र० : रुदहिं । द्वि० : प्र० । तृ० : स्रवहिं । च० : तृ० ।
८—प्र० : नभ सुर । द्वि० : प्र० । तृ० : मुनि सुर । च० : तृ० ।

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह विचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार ॥१००॥

जब कीन्ह तेहि पापंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड ॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच ॥
जोगिनि गहें करवाल। एक हाथ मनुज कपाल ॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान ॥
धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान ॥
जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि ॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषैं बालु ॥
जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस ॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत ॥
हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
येहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि ॥
प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहें पाषान ॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ॥
मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूछ उठाइ ॥
दह दिसि लँगूर बिराज। तेहि मध्य कोसलराज ॥

छं०—तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमाल ही ॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ॥
माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे ॥
श्री राम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं ॥

दो०—कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किए सुर वृंद।
हरषे बानर भालु सब[1] जय सुखधाम मुकुंद ॥१०३॥

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ॥
जुबति वृंद रोवति उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं ॥
पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे चिकुर न सरीर सँभार[2] ॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना ॥
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी ॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहु न धीरा ॥
भुज बल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥
जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥
काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥

छं०—जानेउ मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिअ भजेहु नहिं करुनामय ॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं। .
तुम्हहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामय ॥

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु को[3] आन।
मुनि दुर्लभ जो परम गति[4] तोहि दीन्हि भगवान ॥१०४॥

१—प्र० : भालु कीस सब सरपे। द्वि० . प्र० । तृ० . हरपे बानर भालु सब। च० : तृ०।
२—प्र० : छूटे कच नहिं बपुप संभारा। द्वि० : प्र०। [तृ०. छूटे चिकुर न चीर सभारा]
च० : छुटे चिकुर न सरार संभारा [(८अ). छूटे चिकुर न चीर संभारा]।
३—प्र० : नहि। द्वि० : प्र०। तृ० : को। च० : तृ०।
४—प्र० : जोगि वृंद दुर्लभ गति। द्वि०, तृ०। च०. मुनि दुर्लभ जो परम गति।

दो०—खैंचि सरासन स्रवन लगि[१] छाड़े सर एकतीस ।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥१०२॥

सायक एक नाभिसर सोखा । अपर लगे भुज सिर करि रोषा ॥
लै सिर बाहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब सर हति प्रभु कृत जुग[२] खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहाँ रामु रन हतौं पचारी ॥
डोली भूमि गिरत दसकंधर । छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
परेउ बीर[३] द्वौ खंड बढ़ाई । चापि भालु मर्कट समुदाई ॥
मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ आई[४] । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥
तासु तेज समान प्रभु आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा ॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा । जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥

छं०—जय कृपाकंद मुकुंद द्वंदहरन सरन सुखप्रद प्रभो ।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥
सुर सिद्ध मुनि गंधर्ब हरषे[५] बाज दुंदुभि गहगही ।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही ॥
सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ॥

१—प्र० : खैंचि सरासन स्रवन लगि । द्वि० : प्र० । [तृ० : आकरषेउ धनु कान लगि] । च० : प्र० [(६) (८अ): आकरषेउ धनु कान लगि] ।
२—प्र० : दुइ । द्वि० : प्र० [(४) (५): जुग] । तृ० : जुग । च० : तृ० ।
३—प्र० : धरनि परेउ । द्वि० : प्र० । तृ० : परेउ बीर । च० : तृ० ।
४—प्र० : जाई । द्वि० : प्र० [(५अ): आई] । तृ० : आई । च० : तृ० ।
५—प्र० : सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल । द्वि०: प्र० । तृ० : सुरसिद्धमुनि गंधर्ब हरषे । च० : तृ० ।

छं०—किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारे रिपु हयो ।
पायो बिभीषन राजु तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो ॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहैं ।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं ॥
दो०—सुनत राम के बचन मृदु[1] नहिं अघाहिं कपि पुंज ।
बारहिं बार बिलोकि मुख[2] गहहिं सकल पद कंज ॥१०६॥
पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना । लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥
समाचार जानकिहि सुनावहु । तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु ॥
तब हनुमंत नगर महुँ आए । सुनि निसिचरी निसाचर धाए ॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही । जनकसुता दिखाइ पुनि[3] दीन्ही ॥
दूरहिं ते प्रनामु कपि कीन्हा । रघुपति दूत जानकी चीन्हा ॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता ॥
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु समर जीत्यौ दससीसा ॥
अबिचल राजु बिभीषनु पावा[4] । सुनि कपि बचन हरष उर छावा[4] ।
छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहि बानी समा ॥
सुनु मात मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसय ।
रन जीति रिपु दल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ॥
दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत ।
सानुकूल रघुबंस मनि[5] रहहु समेत अनंत ॥१०७॥

१—प्र० : प्रभु के बचन स्रवन सुनि । द्वि० : प्र० । तृ० : सुनत राम के बचन मृदु । च० : तृ० ।

२—प्र० : बार बार सिर नावहिं । द्वि० : प्र० । तृ० : बारहिं बार बिलोकि मुख । च० : तृ० ।

३—प्र० : पुनि । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : निन्ह] ।

४—प्र० : क्रमशः पायो, छायो । द्वि० : प्र० । तृ० : पावा, छावा । च० : तृ० ।

५—प्र० : कोसल पति । द्वि० : प्र० । तृ० : रघुबंसमनि । च० : तृ० ।

मंदोदरी वचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिवर परमारथबादी॥
भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥
रुदनु करत बिलोकि[1] सब नारी। गएउ बिभीषनु मन दुखु भारी॥
बधु दसा देखत[2] दुख कीन्हा। राम अनुज कहुँ[3] आयेसु दीन्हा॥
लछिमन जाइ ताहि[4] समुझाएउ[5]। बहुरि बिभीषन प्रभु पहि आएउ[5]॥
कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयेसु मानी। बिधिवत देस काल जिअँ जानी॥

दो०—मय तनयादिक नारि सब[6] देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुबीर[7] गुन गन बरनत मन माहिं॥१०५॥

आइ बिभीषन पुनि सिरु नाएउ[8]। कृपासिंधु तब अनुज बोलाएउ[8]॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलकु कहेउ रघुनाथा॥
पिता वचन मैं नगर न आवौं। आपु सरिस कपि अनुज पठावौं॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक कीन्ह[9] अस्तुति अनुसारी॥
जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहि आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥

१—प्र० : देखो। द्वि० : प्र०। तृ० : बिलोकि। च० : तृ०।
२—प्र० : बिलोकि। द्वि० : प्र०। तृ० : देखत। च० : तृ०।
३—प्र० : तब प्रभु अनुजहिं। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : राम अनुज कहुँ।
४—प्र० : तेहि बहु बिधि। द्वि० : प्र०। तृ० : जाइ ताहि। च० : तृ०।
५—प्र० : क्रमशः समुझायो, आयो। द्वि० : प्र०। तृ० : समुझाएउ, आएउ। च० : तृ०।
६—प्र० : मंदोदरी आदि सब। द्वि० : प्र०। तृ० : मयतनयादिक नारि सब। च० : तृ०।
७—प्र० : रघुपति। द्वि० : प्र०। तृ० : रघुबीर। च० : तृ०।
८—प्र० : क्रमशः नायो, बोलायो। द्वि० : प्र०। तृ० : नायउ, बोलाएउ। च० : तृ०।
९—प्र० : सारि। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : कीन्ह।

सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह बिबेक धरम नुति[1] सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥
देखि राम रुख लछिमन धाए । प्रगटि कृसानु[2] काठ बहु लाए ॥
प्रबल अनल बिलोकि[3] बैदेही । हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना । मो कहुँ होहु श्रीखंड समाना ॥

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रवेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जयकोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे ।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥
तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री स्रुति[4] बिदित जो ।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली ।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ॥

दो०—हरषि सुमन बरषहिं बिबुध[5] बाजहिं गगन निसान ।
गावहिं किंनर अपछरा[6] नाचहिं चढ़ीं बिमान ॥
श्री जानकी[7] समेत प्रभु सोभा अमित अपार ।
देखत हरषे भालु कपि[8] जय रघुपति सुख सार ॥१०९॥

१—प्र० : निति । द्वि० : नुति [(४) जुति, (५अ) जुत] । [तृ० : नय] । च० : द्वि० ।
२—प्र० : पावक प्रगनि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्रगटि कृसानु ।
३—प्र० : पावक प्रबल देखि । द्वि० : प्र० । तृ० : प्रबल अनल बिलोकि ।
४—प्र० : धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य स्रुति जग । द्वि० : प्र० । तृ० : तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति । च० : तृ० ।
५—प्र० : बरषहिं सुमन हरषि सुर । द्वि० : प्र० । तृ० : हरषि सुमन बरषहिं बिबुध । च० : तृ० ।
६—प्र० : सुरबधू । द्वि० : प्र० । तृ० : अपछरा । च० : तृ० ।
७—प्र० : जनकसुता । द्वि० : प्र० । तृ० : श्री जानकी । च० : तृ० ।
८—प्र० : देखि भालु कपि हरषे । द्वि० : प्र० । तृ० : देखत हरषे भालु कपि । च० : तृ० ।

अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता । देखौं नयन स्याम मृदु गाता ॥
तब हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता के कुसल सुनाई ॥
सुनि बानी पतंग कुलभूषन[१] । बोलि लिए जुवराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुतहिं लै आवहु ॥
तुरतहि सकल गए जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता ॥
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा[२] । सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा[२] ॥
दिव्य बसन[३] भूषन पहिराए । सिबिका रुचिर साजि पुनि लाए ॥
तापर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
बेतपानि रच्छक चहुँ पासा । चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन कीस भालु[४] सब आए । रच्छक कोपि निवारन धाए ॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहि सखा पयादे आनहु ॥
देखहिं[५] कपि जननी की नाईं । बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे । नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी ॥

दो०—तेहि कारन करुनायतन[६] कहे कछुक दुर्बाद ।
सुनत जातुधानीं सकल[७] लागीं करै बिषाद ॥१०८॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता । बोलीं मन क्रम बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥

१—प्र० : सुनि संदेस भानुकुलभूषन । द्वि० : प्र० । तृ० : सुनि बानी, पतंग कुल भूषन । च० : तृ० ।

२—प्र० : क्रमशः सिखायो । तिन्ह बहु बिधि मंजन करवायो । द्वि० : प्र० । [तृ० : सिखाए । सादर तिन्ह सीतहि अन्हवाए] । च० : सिखावा । सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा ।

३—प्र० : बहु प्रकार । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : दिब्य बसन ।

४—प्र०, द्वि० : कीस भालु । तृ०, च० : भालु कीस ।

५—प्र० : देखहुँ । द्वि० : प्र० । तृ० : देखहिं । च० : तृ० ।

६—प्र० : करुनानिधि । द्वि० : प्र० । तृ० : करुनायतन । च० : तृ० ।

७—प्र० : सब । द्वि० : प्र० । [(२अ): सकल] । तृ०: सकल । च० : तृ० ।

अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस विभूषन दूषनहा। कृत भूप विभीषन दीन रहा॥
गुन ज्ञान निधान अमान अजं। नित राम नमामि विभुं विरजं॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल वृंद निकंद महा कुसलं॥
विनु कारन दीनदयाल हितं। छवि धाम नमामि रमासहितं॥
भव तारन कारन काजपरं। मन संभव दारुन दोष हरं॥
सर चाप मनोहर त्रोनधरं। जलजारुन लोचन भूपवरं॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मदा१ ममता समनं॥
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सबरूप सदा सब होइ न सो२॥
इति वेद वदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न भिन्न जथा॥
कृतकृत्य विभो सब वानर ये। निरखंति तवानन सादर ये३॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति विना भव भूलि परे॥
अब दीन दयाल दया करिए। मति मोर विभेदकरी हरिए॥
जेहि तें विपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि सुखी चरिए॥
खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा॥
नृपनायक दे वरदानमिदं। चरनांवुज प्रेमु सदा सुभदं॥

दो०—विनय कीन्हि विधि भाँति बहु४ प्रेम पुलक अति गात।
बदन बिलोकत राम कर५ लोचन नहीं अघात॥१११॥

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए॥
सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा६। आसिर्बाद पिता तब दीन्हा॥

१—प्र० : मुधा। द्वि० : प्र० : तृ० : मदा। च० : तृ०।
२—प्र० : न गो। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) न सो]। तृ० : न सो। च० : तृ०।
३—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : ये [(६): जे]।
४—प्र० : चतुरानन। द्वि० : प्र०। तृ० : विधि भाँति बहु। च० : तृ०।
५—प्र० : सोभा सिंधु बिलोकत। द्वि० : प्र०। तृ० : वदन विलोकत राम कर। च० : तृ०।
६—प्र० : अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। द्वि० : प्र०। तृ० : सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा। च० : तृ०।

तब रघुपति अनुसासन पाई । मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥
आए देव सदा स्वारथी । वचन कहहिं जनु परमारथी ॥
दीनबंधु दयाल रघुराया । देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
बिस्व द्रोह रत येह खल कामी । निज अघ गएउ कुमारग गामी ॥
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी । सदा एकरस सहज उदासी ॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय । अजित अमोघसक्ति करुनामय ॥
मीन कमठ सूकर नरहरी । बामन परसुराम वपु धरी ॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पावा[१] । नाना तनु धरि तुम्हहिं नसावा[१] ॥
रावनु पापमूल[२] सुर द्रोही । काम लोभ मद रत अति कोही ॥
सोउ कृपाल तव धाम सिधावा[३] । यह हमरें मन बिसमय आवा ॥
हम देवता परम अधिकारी । स्वारथ रत तव भगति बिसारी ॥
भव प्रवाह संतत हम परे । अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥

दो०—करि विनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि ।
अतिसय प्रेम सरोजभव[५] अस्तुति करत बहोरि ॥११०॥

जय राम सदा सुखधाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ॥
भव बारन दारन सिंघ प्रभो । गुन सागर नागर नाथ बिभो ॥
तन काम अनेक अनूप छबी । गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी ॥
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा ॥
जनरंजन भंजन सोक भयं । गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं ॥
अवतार उदार अपार गुनं । महि भार बिभंजन ज्ञानघनं ॥

१—प्र० : क्रमशः पायो, नसायो । द्वि० : प्र० । पावा, नसावा । च० : तृ० ।
२—प्र० : येह खल मलिन सदा । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : रावनु पापमूल ।
३—प्र० : अधम सिरोमनि तव पद पावा । द्वि०, तृ० : प्र० । च०: सोउ कृपालु तव धाम सिधावा ।
४—प्र० : प्रभु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : तव ।
५—प्र० : अति सप्रेम तनु पुलक बिधि । द्वि० : प्र० । तृ० : अतिसय प्रेम सरोजभव । च० : तृ० ।

बैदेहि अनुज समेत । मम हृदय करहु निकेत ॥
मोहि जानिए निज दास । दे भक्ति रमानिवास ॥
छं०—दे भक्ति रमानिवास त्रासहरन सरन सुखदायक ।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायक ॥
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुज तनु अतुलित बल ।
ब्रह्मादि संकर सेव्य राम नमामि करुना कोमल ॥
दो०-अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयेसु देहु कृपाल ।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल ॥११३॥

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना । सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥
सुनु खगपति[१] प्रभु कै यह बानी । अति अगाध जानहिं मुनि ज्ञानी ॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई । केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई ॥
सुधा बरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ॥
सुधा बृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर । जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ॥
रामाकार भए तिन्ह के मन । गए ब्रह्मपद तजि सरीर रन[२] ॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ॥
राम सरिस को दीन हितकारी । कीन्हे मुक्त निसाचर झारी ॥
खल मलधाम कामरत रावन । गति पाई जो मुनिबर पाव न ॥
दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान ।
देखि सुअवसर राम[३] पहिं आए संभु सुजान ॥
परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि ।
पुलकित तन गदगद गिरा बिनय करत त्रिपुरारि ॥११४॥

१—प्र० : खगेस । द्वि० : प्र० । तृ० : खगपति । च० : तृ० ।
२—प्र०: मुक्त भए छूटे भव बंधन । द्वि० : प्र० । [तृ० : गए परम पद तजि सरीर रन] । च० गए ब्रह्म पद तजि सरीर रन ।
३—प्र० : प्रभु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : राम ।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ । जीत्यो अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी । नयन सनीर[1] रोमावलि ठाढ़ी ॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना ॥
ता तें उमा मोच्छ नहिं पावा[2] । दसरथ भेद भगति मन लावा[2] ॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं । तिन्ह कहुं राम भगति निज देहीं ॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा । दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस ।
छबि बिलोकि मन हरष अति[3] अस्तुति कर सुरईस ॥११२॥

तोमर छं०—जय राम सोभाधाम । दायक प्रनत बिस्राम ॥
धृत त्रोन बर सर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥
जय दूषनारि खरारि । मर्दन निसाचर धारि ॥
येह दुष्ट मारेउ नाथ । भए देव सकल सनाथ ॥
जय हरन धरनी भार । महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल । किए जातुधान बिहाल ॥
लंकेस अति बल गर्ब । किए बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध खग नर नाग । हठि पंथ सब के लाग ॥
पर द्रोह रत अति दुष्ट । पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल । राजीव नयन बिसाल ॥
मोहि रहा अति अभिमान । नहिं कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज । गत मान प्रद दुख पुंज ॥
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अब्यक्त जेहि श्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप । श्रीराम सगुन सरूप ॥

१—प्र० : सलिल । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सनीर ।
२—प्र० : पायो, लायो । द्वि० : प्र० । तृ० : पावा, लावा । च० : तृ० ।
३—प्र० : सोभा देखि हरषि मन । द्वि० : प्र० । तृ० : छबि बिलोकि मन हरषि अति । च० : तृ० ।

तापस बेष सरीर[१] कृस जपत निरंतर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतन करु सखा निहोरौं तोहि ॥
बीते अवधि जाउँ जौं[२] जिअत न पावौं बीर ।
प्रीति भरत कै समुझि प्रभु[३] पुनि पुनि पुलक सरीर ॥
करेहु कलप भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम सिधाइहहु[४] जहाँ संत सब जाहिं ॥११६॥

सुनत बिभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरषाने । गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने ॥
बहुरि बिभीषन भवन सिधाए । मनि गन बसन बिमान भराए ॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा ॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं । बरषि दिए मनि अंबर सबहीं ॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता । परम कौतुकी कृपानिकेता ॥

दो०—ध्यान न पावहिं जाहि मुनि[५] नेति नेति कह बेद ।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद ॥
उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥११७॥

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए । पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ॥
नाना जिनिस देखि सब[६] कीसा । पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ॥

१—प्र०: गात । द्वि०: प्र० । तृ०: सरीर । च०: तृ० ।
२—प्र०: बीते अवधि जाहुँ जौ । द्वि०: तृ० । [च०: जौ जैहौं बीते अवधि] ।
३—प्र०: सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु । द्वि०: प्र० । तृ०: प्रीति भरत कै समुझि प्रभु । च०: तृ० ।
४—प्र०: पाइहहु । द्वि०: प्र० । तृ०: सिधाइहहु । च०: तृ० ।
५—प्र०: मुनि जेहि ध्यान न पावहिं । द्वि०: प्र० । तृ०: ध्यान न पावहिं जाहि मुनि । च०: तृ० ।
६—प्र०: देखि सब । द्वि०: प्र० । [तृ०: देखि प्रभु] । [च०: (६) देखि प्रभु, (८) भालु कपि] ।

छं०—मामभिरक्षय रघुकुलनायक । धृत वर चाप रुचिर कर सायक ॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन । संसय विपिन अनल सुर रंजन ॥
सगुन अगुन गुन मंदिर सुंदर । भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन । बसहु निरंतर जन मन कानन ॥
विषय मनोरथ पुंज कंज बन । प्रबल तुषार उदार पार मन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर[१] । बारय तारय संसृति दुस्तर ॥
स्याम गात राजीव बिलोचन । दीनबंधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरंतर । बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥
मुनि रंजन महिमंडल मंडन । तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥
दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलक तुम्हार ।
तब मैं आउब सुनहु प्रभु[२] देखन चरित उदार ॥११५॥
करि बिनती जब संभु सिधाए । तब प्रभु निकट बिभीषन आए ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी । बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी ॥
सकुल सदल प्रभु रावनु मारा[३] । पावन जसु त्रिभुवन बिस्तारा ॥
दीन मलीन हीनमति जाती । मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥
अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जन करिअ समर स्रम छीजे ॥
देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहुं मुदा ॥
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर[४] जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला । सजल भए द्वौ नयन बिसाला ॥
दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।
दसा भरत कै सुमिरि[५] मोहिं निमिष कल्प सम जात ॥

१—[प्र०: मंथन पर मंदर] । द्वि०, तृ०, च०: मंदर परमं दर ।
२—प्र०: कृपासिंधु मैं आउब । द्वि०, तृ०: प्र० । च०: तब मैं आउब सुनहु प्रभु ।
३—क्रमशः मारयो, बिस्तारयो । द्वि०: प्र० । तृ०: मारा, बिस्तारा । च०: तृ० ।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च०: पुर [(६): प्रभु] ।
५—प्र०: भरत दसा सुमिरत मोहिं । द्वि०: प्र० । तृ०: दसा भरत कै सुमिरि मोहिं । च०: तृ० ।

रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर । कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर ॥
परम सुखद चलि[१] त्रिबिध बयारी । सागर सर सरि निर्मल बारी ॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा । मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ॥
कह रघुबीर देखु रन सीता । लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता ॥
हनूमान अंगद के मारे । रन महि परे निसाचर भारे ॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई । इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई ॥

दो०—यह देखु सुंदर सेतु जहँ[२] थापेउँ सिव सुखधाम ।
सीता सहित कृपायतन[३] संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥
जहँ जहँ कृपासिंधु[४] बन कीन्ह बास बिस्राम ।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ॥११९॥

सपदि[५] बिमान तहाँ चलि आवा । दंडकबन जहँ परम सुहावा ॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना । गए रामु सब कें अस्थाना ॥
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आएउ जगदीसा ॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा । चला बिमानु तहाँ ते चोखा ॥
बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि मल हरनि सोहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनामु करु सीता ॥
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा । देखत[६] जन्म कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरन सोक हरि लोक निसेनी ॥
पुनि देखु[७] अवधपुरी अति पावनि । त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ॥

१—प्र०, द्वि० : चलि । [तृ०: बर] । च०: प्र० ।
२—प्र०: इहाँ सेतु बाँध्यौं अरु । द्वि०, तृ०: प्र० । च०: यह देखु सुंदर सेतु जहँ [(८): देखहु सुंदरि सेतु पद] ।
३—प्र०: कृपानिधि । द्वि०: प्र० । तृ०: कृपायतन । च०: तृ० ।
४—प्र०: कृपासिंधु । द्वि०: प्र० । [तृ० में यह दोहा नहीं है] । [च०: (६)(८) करुनासिंधु] ।
५—प्र०: तुरत । द्वि०: प्र० । तृ०: सपदि । च०: तृ० ।
६—प्र०: निरखत । द्वि०: प्र० । तृ०: देखत । च०: तृ० ।
७—प्र०: पुनि देखु । द्वि०: प्र० । [तृ०: देखेउ] । च०: प्र० [(८): देखा] ।

चितइ सबन्ह पर कीन्ही दाया । बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मारा[१] । तिलकु बिभीषन कहुँ पुनि सारा[१] ॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरहु[२] जनि काहूँ ॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर । जोरि पानि बोले सब सादर ॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिं सब सोहा । हमरे होत बचन सुनि मोहा ॥
दीन जानि कपि किए सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा ॥
सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं । मसक कबहुँ[३] खगपति हित करहीं ॥
देखि राम रुख बानर रीछा । प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा ॥

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि ।
हरष बिषाद समेत तब चले बिनय बहु भाखि[४] ॥
जामवंत कपिराज नल अंगदादि[५] हनुमान ।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान ॥
कहि न सकहिं कछु प्रेमबस भरि भरि लोचन बारि ।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि ॥११८॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नावा[६] । उत्तर दिसिहि बिमान चलावा[६] ॥
चलत बिमान कोलाहलु होई । जय रघुबीर कहै सब कोई ॥
सिंघासनु अति उच्च मनोहर । श्री समेत प्रभु बैठे तापर ॥
राजत रामु सहित भामिनी । मेरु सृंग जनु घनु दामिनी ॥

१—प्र०: क्रमशः मारयो, सारयो। द्वि०: प्र० । तृ०: मारा, सारा । च०: तृ० ।
२—प्र०: डरपहु । द्वि०: प्र० [(४)डरेहु, (५) डरपेहु] । [तृ०: डरेहु] । च०: डरहु ।
३—प्र०: कहू । द्वि०, तृ०: प्र० । च०: कबहुँ ।
४—प्र०: सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि । द्वि०: प्र० । तृ०: समेत तब चले बिनय बहु भाषि । च०: तृ० ।
५—प्र०: कपिपति नील रीछपति अंगद नल । द्वि०: प्र० । तृ०: जामवत कपिराज नल अंगदादि । च०: तृ० ।
६—प्र०: क्रमशःनायो,चलायो । द्वि०: प्र० । तृ०: नावा, चलावा । च०: तृ० ।

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहवस बिसराइयो॥
येह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

दो०—समर विजय रघुपति चरित सुनहिं जे सदा[१] सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥
येह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
स्री रघुनाथ नाम तजि नहिं कछु[२] आन अधार॥१२१॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलविज्ञान-
सम्पादनो नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः।

१—प्र०: रघुबीर के चरित जे सुनहिं। द्वि०: प्र०। तृ०: रघुपति चरित सुनहिं जे सदा। च०: तृ०।

२—प्र०: श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिंन। द्वि०: प्र०। तृ०: श्री रघुनायक नाम तजि नहि कछु। च०: तृ०।

दो०—तब रघुनायक श्री सहित अवधहि कीन्ह[१] प्रनाम ।
सजल विलोचन पुलक तनु[२] पुनि पुनि हरषित राम ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी[३] हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ[४] दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥१२०॥

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥
तुरत पवनसुत गवनत भएऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही । अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु[५] आए । नाव नाव कहँ लोग बुलाए ॥
सुरसरि नाँघि जान तब[६] आवा[७] । उतरेउ तट प्रभु आयेसु पावा[७] ॥
तब सीता पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तव अहिवात अभंगा ॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल । आएउ निकट परम सुख संकुल ॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥

छं०—लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती ।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती ॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे ।
सुखधाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते ॥

१—प्र०: सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल । द्वि०: प्र० । तृ०: तब रघुनायक श्री सहित सहित अवधहिं कीन्ह । च०: तृ० ।
२—प्र०: सजल नयन पुलकित तन । द्वि०: प्र० । तृ०: सजलबिलोचन पुलकि तन । च०: तृ० ।
३—प्र०: पुनि प्रभु आइ । द्वि०: प्र० । [तृ०, च०: बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु] ।
४—प्र०: सहित बिप्रन्ह कहँ । द्वि०: प्र० । [तृ०, च०: समेत महीसुरन्ह] ।
५—प्र०: सुना प्रभु । द्वि०: प्र० [(४)(५): सुन्यो प्रभु] । तृ०, च०: प्र०, [(८) : सुनाहि] ।
६—प्र०: तब । द्वि०: प्र० [(३):जब] । तृ०: प्र० । [च०: जब] ।
७—प्र०: क्रमशः आयो, पायो । द्वि०: प्र० । तृ०: आवा,पावा । च०: तृ० ।

रहेउ[१] एक दिनु अवधि अधारा । समुझत मन दुख भएउ अपारा ॥
कारन कवन नाथ नहिं आएउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिंदु अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा ॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥
मोरें जिअँ भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई ॥
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना । अधम कवन जग मोहि समाना ॥

दो०—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गएउ जनु पोत ॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥ १ ॥

देखत हनूमान अति हरषेउ । पुलक गात लोचन जलु बरषेउ ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी ॥
जासु बिरह सोचहु दिनु राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती ॥
रघुकुलतिलक सो जन[२] सुखदाता । आएउ कुसल देव मुनि त्राता ॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित[३] पुर[४] आवत ॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा । तृषावत जिमि पाइ[५] पियूषा ॥
को तुम्ह तात कहाँ तें आए । मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥

१—प्र० रहेउ [(२): रहा] । द्वि०: प्र० । [तृ० : रहा] । च० : प्र० [(८): रहे] ।
२—प्र० : सुजन । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सो जन ।
३—प्र० : सहित अनुज । द्वि० : प्र० [(५) (५अ): अनुज सहित] । तृ० : अनुज सहित । च० : तृ० ।
४—प्र० : प्रभु । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : पुर ।
५—प्र० : पाइ । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : पाव] ।

श्री गणेशाय नमः
श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री राम चरित मानस

सप्तम सोपान

उत्तर कांड

श्लो०—केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥
कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावज[1] महेशवन्दितौ
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंग संगिनौ ॥
कुन्दइन्दुदरगौरसुंदरं अंबिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम् ॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग ।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृसतनु राम बियोग ॥
सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर ।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर ॥
कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ ।
आएउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार ।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन[2] बिचार ॥

१—प्र० : कोमलाबज । द्वि० : प्र० । [तृ० : कोमलाङ्ग] । च० : प्र० ।
२—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : करन [(छ) : करै] ।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं । बाल वृद्ध कहुँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहुँ बूझहिं भाई । तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा कै खानी ॥
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा । भइ सरऊ[1] अति निर्मल नीरा ॥

दो०- हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान ।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥
राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥ ३ ॥

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रुचिर येह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना । बेद पुरान बिदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ[2] । येह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरयू पावनि ॥
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी । धन्य अवध जो राम बखानी ॥

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरह अति ताहु ॥ ४ ॥

१—प्र० : सरऊ । [द्वि०, तृ०: सरजू] । च० : प्र० [(८) : सरजू] ।
२—प्र० : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ । द्वि० : प्र० । तृ० : अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । च० : तृ० ।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ॥
मिलत प्रेमु नहिं हृदयँ समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि रामु पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता । तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥
येह[१] संदेस सरिस जग माहीं । करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥
तब हनुमंत नाइ पद माथा । कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं । सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

छं०—निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यौ ।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यौ ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो ।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

दो०—राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरित गएउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ[२] प्रभु जान चढ़ि ॥२॥

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला । नव तुलसीदल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेम थार भामिनी । गावत चलिं[३] सिंधुरगामिनी ॥

१—प्र० : एह । द्वि० : प्र० [(५अ): एहि] । [तृ० : यहि] । च०: प्र [(६): एहि] ।
२—प्र० : चलेउ । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): चले] । [तृ० : चले] । च : प्र० [(८): चले] ।
३—प्र० : चलिं । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ): चलीं] । [तृ० : चलि मत्र] । च० : प्र० [(८) : चलीं] ।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहिं काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महँ[१] सबहि मिले भगवाना। उमा मरम येह काहु न जाना॥
येहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सील गुन धामा॥
कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं॥
छं०—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥
दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकइ हृदयँ बहुत सकुचानि॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिस पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले[२] मन कर छोभ न जाइ॥ ६॥
सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होउ[३] अचल तुम्हार अहिवाता॥
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥
नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवउ कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहि बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मम बारे। निसिचर सुभट महा बल भारे॥

१—प्र० : महिं। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) महं]। तृ० : प्र०। च० : महं।
२—प्र० : कैकइ कहं पुनि पुनि। द्वि० : प्र० [(३) (४) कैकेई कहुँ पुनि]। तृ०, च० : प्र० [कैकेई कहुँ पुनि]।
३—प्र० : होइ। द्वि० : प्र० [(३) होइ, (४) (५) होउ]। तृ० : होउ। च० : तृ०।

आए भरत संग सब लोगा । कृस तन श्री रघुबीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे[1] गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ॥
सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा । धरम धुरंधर रघुकुल नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज ॥
परे भूमि नहि उठत उठाए । बर[2] करि कृपासिंधु उर लाए ॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

छं०—राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा[3] लही ॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें भिन्न जान जो पावई ॥
अब कुसल कोसलनाथ आरत[4] जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ॥

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब[5] परम प्रेम दोउ भाइ ॥ ५ ॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे । दुसह बिरह संभव दुख मेटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ॥

१—प्र० : धरे । द्वि० : प्र० । [तृ० : गहे] । च० : प्र० [(६): गहे] ।
२—प्र० : द्वि० : बर । [तृ० : बल] । च० : प्र० ।
३—प्र० : सुषमा । द्वि० : प्र० [(३) : परमा] । [तृ०, च० : परमा] ।
४—[प्र०, द्वि० : आरति] तृ०, च० : आरत ।
५—प्र० : भरत मिले तब । द्वि० : प्र० । [तृ० : भेंटे भरत पुनि] । च० : प्र० ।

पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥
तेउ येह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥
दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भए बिगसत भईं निरखि राम राकेस॥
होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि बाजहिं गगन[1] निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥ ९॥
प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥
कृपासिंधु तब[2] मंदिर गए[3]। पुर नर नारि सुखी सब भए[3]॥
गुर बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन सुभदाई[4]॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिबर बिलंबु नहिं कीजे। महाराज कहुँ तिलक करीजे॥
दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ सिर नाइ[5]।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मँगाइ।
हरष समेत बसिष्ठ पद पुनि सिरु नाएउ आइ॥१०॥
अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि[6] लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बोलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥

१—प्र० : गगन। द्वि० : प्र०। [तृ० : नाक]। च० : प्र० [नाक (६).]।
२—प्र० : तब। द्वि० : प्र० [(२) : जब]। [तृ० : जब]। च० : प्र० [(६) : जब]।
३—प्र० : गए, भए। द्वि० : प्र० [(३). गएऊ भएऊ]। [तृ० : गएऊ, भएऊ]। च० : प्र०।
४—प्र० : समुदाई। द्वि०. सुभदाई। तृ०, च०: द्वि० [(८) : सुखदाई]।
५—प्र० : हरषाइ। द्वि०. प्र०। तृ० : सिर नाइ। च० : तृ०।
६—प्र० : झर। द्वि० : झरि। तृ०, च० : द्वि०।

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु ।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥ ७ ॥

लंकापति कपीस नल नीला । जामवंत अंगद सुभ सीला ॥
हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥
भरत सनेहु सील व्रत नेमा । सादर सब बरनहिं अति प्रेमा ॥
देखि नगर बासिन्ह कै रीती । सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती ॥
पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु[१] सकल सिखाए ॥
गुर बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे । इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥
ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भए समर सागर कहुँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे । भरतहुँ तें मोहि अधिक पिआरे ॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए । निमिषि निमिषि उपजत सुख नए ॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नाएउ माथ ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥
सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि बर बृंद[२] ॥ ८ ॥

कंचन कलस बिचित्र सँवारे । सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनिवार पताका केतू । सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥
बीथीं सकल सुगंध सिंचाई । गजमनि रचि बहु चौक पुराई ॥
नाना भाँति सुमंगल साजे । हरषि नगर निसान बहु बाजे ॥
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं । देहिं असीस हरष उर भरहीं ॥
कंचन थार आरती नाना । जुवती सजें करहिं सुभ गाना ॥
करहिं आरती आरतिहर कें । रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : लागहु सकल [(६): लागन कुसल]।
२—प्र० : वर। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): नर]। [तृ० : नर]। च० : प्र० [(८): नर]।

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म[1] सक्ति बिराजते ॥
श्री सहित दिनकर बंसभूषन काम बहु छबि सोहई ।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत मुनि[2] मन मोहई ॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे ।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे ॥

दो०—बहु सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस ।
बरनइ सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥
भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए[3] सुर निज निज धाम ।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्री राम ॥
प्रभु सर्बज्ञ कीन्ह अति आदर कृपानिधान ।
लखेउ न काहू मरम येह लगे करन गुन गान ॥१२॥

छं०—जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने[4] ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार भार[5] बिभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे ॥
तव बिषम मायाबस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित[6] दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे ॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : चर्म [(६) : बर्म] ।
२—प्र० : सुर । द्वि० : प्र० । तृ० : मुनि । च० : तृ० ।
३—प्र० : गए । द्वि० : प्र० । [तृ० : गे] । च० : प्र० ।
४—प्र० : जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने । द्वि०, तृ०, च०, : प्र० [(६): जय सगुन रूप अनूप भूप बिचार बिबुध सिरोमने] ।
५—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : सार भार [(६) संभारि कर] ।
६—भ्रमत अमित दिवस निसि । द्वि० : प्र० [(४): भ्रमत अमित दिवस निसि] । [तृ०: भ्रमित स्रमित दिवस निसि] । [च० : (६) भ्रमत स्रमित दिवस निसि, (८) भ्रमित दिवस निसि प्रभु] ।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत[1] अन्हवाए॥
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउँ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥
पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन माँगि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग कोटि छबि लाजे[2]॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जनु तुरत कराइ।
दिव्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥
राम बाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥११॥

प्रभु बिलोकि मुनि मनु अनुरागा। तुरत दिव्य सिंघासनु माँगा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई॥
जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयेसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारीं। बार बार आरती उतारीं॥
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं॥

छं०—नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥

---

[1]—प्र० : सुग्रीवादि तुरत। द्वि०, तृ० : प्र०। [च० : (६) सुग्रीवहिं तुरत, (८) सुग्रीवहिं प्रथमहिं]।

[2]—प्र० : देखि सत लाजे। द्वि० : प्र० [(३): कोटि छबि लाजे]। तृ० : कोटि छबि छाजे। च० : तृ०।

दससीस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ।
रजनीचर बृंद पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥
महि मंडल मंडन चारुतर । धृत सायक चाप निषंग बर ।
मद मोह महा ममता रजनी । तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात[१] किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिये ।
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे । बिषया बन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हए । भवदंघ्रि निरादर के फल ये ।
भवसिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेमु न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नित हीं । जिन्हकें पद पंकज प्रीति नहीं ।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ॥
नहि राग न लोभ न मान मदा । तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा[२] ।
येहि तें तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेमु निरंतर नेमु लिए । पद पंकज सेवत सुद्ध हिये ॥
सम मानि निरादर आदरहीं । सब संत सुखी बिचरंति मही ॥
मुनि मानस पंकज भृंग भजे । रघुबीर महा रनधीर अजे ।
तव नाम जपामि नमामि हरी । भवरोग महा गद[३] मान अरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।
रघुनंद निकंदय द्वंद घनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ॥
दो०—बार बार बर माँगों हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥१४॥

१—प्र० : मनजात । द्वि० : प्र० । [(४): मनुजात] । [तृ०: मनुजात]। च० : प्र० [(८) : अनुजात]।
२—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : बिपदा [(६) निपदा]।
३—प्र० : गद । द्वि० : प्र० [(४) (५): मद]। [तृ०, च० : मद]।

जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदनदच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥
जे ज्ञान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सो स्मरामहे॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥
अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
पट कंध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित[१] संसार बिटप नमामहे॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु निज गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव येह बर माँगहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतरधान भए पुनि गए ब्रह्म आगार॥
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर॥१३॥

तोमर छं०—जय राम रमा रमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो॥

१—प्र०: नवल नित। द्वि०: प्र० [(४): नव ललित]। तृ०, च०: प्र०।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥
एक टक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥
परम प्रेमु तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेषा॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥
तब प्रभु भूषन बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥
प्रभु प्रेरित लछिमनु पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि॥१७॥

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली॥
असरन सरन बिरिदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ[१] जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहौं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहौं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥

दो०—अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥१८॥

१—प्र० नाथ। द्वि० प्र० [(३) (४) (५) जानि]। [तृ० : जानि]। च० प्र० [(८) जानि]।

सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव भय[1] दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना विधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंत काल रघुपति पुर जाहीं ॥
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई[2] ॥
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कहुँ सुंदर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसलपुरी । हरषित रहहिं लोग सब कुरी ॥
नित नइ प्रीति राम पद पंकज । सबकें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥
मगन बहु प्रकार पहिराए । द्विजन्ह दान नाना विधि पाए ॥

दो०—ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति ।
जात न जाने देवस तिन्ह[3] गए मास षट बीति ॥१५॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं । जिमि परद्रोह संत मन नाहीं[4] ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिर नाए ॥
परम प्रीति समीप बैठारे । भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई । मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥
ता तें मोहिं तुम्ह अति प्रिय लागे । मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना । मृषा न कहौं मोर येह बाना ॥
सब कें प्रिय सेवक येह नीती । मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥

१—प्र० : भय । द्वि० : प्र० । [तृ० : दाप] । च० : प्र० [(८): दाप] ।
२—प्र०: नई । द्वि० : प्र० । [तृ० : नितई] । च० : प्र० [(८): नितई] ।
३—प्र० : देवस तिन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० : दिवस निसि] । च० : प्र० [(८): दिवस निसि] ।
४—प्र० : मन नाहीं । द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ):मन माहीं] । [तृ०, च०: मन माहीं] ।

रामराज बैठे त्रै लोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ॥
दो०—बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुखहि[१] नहिं भय सोक न रोग ॥२०॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती[२] ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धरमरत धुनी[३] । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी । सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥
दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥२१॥
भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू । येह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । येह बरनत हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि येहिं चरित तिन्हहु रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल येह लीला । कहहिं महा मुनिबर[४] दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

१—प्र० : सुखहि । द्वि० : प्र० (३) (४) (५): सुख] । तृ० : प्र० । [च० : सुख] ।
२—प्र० : नीती । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : रीती ।
३—[प्र० : पुनी] । द्वि० : धनी [(३) (४) (५): पुनी] । [तृ०: पुनी] । च०: द्वि० ।
४—[प्र० : बरद सुसीला] । द्वि० : बर दम सीला [(४) (५अ) : बरद सुसीला] । [तृ०: बरद सुसीला] । च० : द्वि० [(८) बार सुसीला] ।

भरत अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदयँ प्रेमु नहिं थोरा । फिरि फिरि चितव राम की ओरा ॥
बार बार कर दंड प्रनामा । मन अस रहन कहहि मोहिं रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी । सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी । चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति आदर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भगत पुनि आए ॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्ही[१] हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तव चरन देखिहौं देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपाआगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता । अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥

दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सैं[२] तुम्हहि कहौं कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहिं सुरति कराएहु मोरि ॥
अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आएउ हनुमंत ।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित्त खगेस राम कर[३] समुझि परइ कहु काहि ॥१९॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू । मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥
चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी । पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी ॥

१—प्र० : कीन्हे । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : कीन्ही ।
२—प्र० : सैं । द्वि० : प्र० । [तृ० : सन]। च० : प्र० [(प्र): सन] ।
३—प्र० : चित खगेस राम कर । द्वि० : प्र० । [तृ० : चित खगेस अस राम कर] । च० : प्र० [(प्र): चित खगेस सुनि राम कर] ।

दो०—जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥२४॥

सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥
दोउ बिजई बिनई गुनमंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहु अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर-चरित उदार॥२५॥

प्रात काल सरऊ[1] करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह संजुत भोजनु करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दूनौं भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुनगाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥
सब के गृह गृह होहिं[2] पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

दो०—अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेस नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥२६॥

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिराग बिसरावहिं॥

१—प्र० : सरऊ। द्वि०, तृ० : सरजू]। च० : प्र० [(८): सरजू]।
२—प्र० : गृह गृह होहिं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): गृह होहिं बेद]।

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस[1] रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा[2] ॥

दो०—बिधु महि पूर मऊखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज ॥२३॥

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयेसु अनुसरई ॥
जेहिं बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥
उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता[3]। जगदंबा संततमनिंदिता ॥

१—प्र०: सुनिअ अस। द्वि०, तृ०: प्र०। [च०: (६) अस सुनिअ जग, (८) अस सुनिअ]।
२—[प्र० में यह अर्द्धाली नहीं है]।
३—प्र०: ब्रह्मानि बंदिता। [द्वि०: ब्रह्मादि बंदिता]। तृ०: प्र०। [च०: (६) ब्रह्मादि बंदिता। (८)ब्रह्मादिक बंदित]।

छं०—बाजार रुचिर[1] न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥२८॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्हकी[2] उपबन सुंदर॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं[3] ग्यानरत मुनि सन्यासी॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥

छं०—बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर[4] मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

दो०—राम नाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥२९॥

१—प्र० : रुचिर। द्वि० : प्र० [(३) (४) चारु]। तृ० : प्र०। [च० : चारु]।
२—प्र० : तिन्हकी। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : तिन्हके]। [तृ० : तिन्हके]। [च० : (६) तिन्हकी, (८) तिन्हके]।
३—प्र० : बसहिं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(५) मज्जहिं]।
४—[प्र० : सुर]। द्वि० : सुर। तृ० : द्वि०। च० : द्वि० [(६) : सुर]।

जातरूप मनि रचित अटारी । नाना रंग रुचिर गच ढारी ॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर । रचे कंगूरा रंग रंग बर ॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा ॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥

छं०—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रचीं ।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खचीं ॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे[१] ॥

दो०—चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे[२] बनाइ ।
राम चरित जे निरखत मुनि मन[३] लेहिं चुराइ ॥२७॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं । बिबिध भाँति करि जतन बनाईं ॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं । फूलहिं सदा बसंत की नाईं ॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर ॥
नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए ॥
मोर हंस सारस पारावत । भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तहँ देखहिं[४] निज परिछाहीं । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जनपालक ॥
राज दुआर सकल बिधि चारू । बीथीं चौहट रुचिर बजारू ॥

१—प्र० : खचे । द्वि० : प्र० । [तृ० : पचे] । च० : प्र० [(८) : पचे]।
२—प्र० : गृह प्रति लिखे । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) प्रति रचि लिखे, (८) प्रतिमा रचे]।
३—प्र० : जे निरख मुनि ते मन । द्वि० : प्र० [(४) : जे निरखत मुनि मन] । तृ० : जे निरखत मुनि मन । च० : तृ० [(८) : निरखत मन मुनि मन]।
४—प्र० : देखहिं । द्वि० : प्र० [(५अ) : देखत] । तृ०, च० : प्र० [(६) : निरखहिं]।

दो०—येह प्रताप रवि जाकें उर जब करै प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥
जानि समय सनकादिक आए। तेजपुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन येह तिन्हहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं ॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनि बर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिबर बहु[1] बरनी। ग्यान जोति[2] पावक जिमि अरनी ॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहुँ दीन्ह ॥३२॥

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन ॥
एक टक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं ॥
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे ॥
आज धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइअ[3] सतसंगा। बिनहिं प्रयास होइ भव भंगा ॥

दो०—संत संग[4] अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सब ग्रंथ[5] ॥३३॥

१—प्र० : मुनिबर बहु। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : मुनि बहु बिधि]।
२—[प्र० : ज्ञान जोति]। द्वि० : ज्ञानजोनि। तृ०, च० : द्वि० [(८) : ज्ञानजो]।
३—प्र० : पाइब। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ) : पाइअ]। तृ० : पाइअ। च० : तृ०।
४—प्र० : संग। द्वि० : प्र०। [तृ० : पंथ]। च० : प्र० [(८) : पंथ]।
५—प्र० : सदग्रंथ। द्वि०, तृ० : प्र०। च० : सब ग्रंथ।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि॥
जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि॥
काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहि। मनसिज करि हरिजन सुखदातहि[1]॥
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि॥
जनक सुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भजन भव भीरहि॥
बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एक रस अज अबिनासिहि॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि॥

दो०—येहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं[2] संतत कृपानिधान ॥३०॥

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह[3] मन सोका॥
जिन्हहि[4] सोक ते कहौं बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ये चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ये पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ये कोक अनेका॥

१—प्र० : [(६) में यह तथा इसके ऊपर की अर्द्धाली नहीं है]।
२—प्र० : द्वि०, तृ०, च० : रहहिं [(६) : रह]।
३—प्र० : बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह। [द्वि० : (३) बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह, (४) बहुतेहु सुख बहुतन्ह, (५) बहुतन्ह सुख बहुतन्ह, (५अ) बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह]। [तृ० : बहुतन्ह सुख बहुतन्ह]। [च० : बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह]।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : जिन्हहि [(६) : तिन्हहि]।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए । भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥
सुनी चहहिं प्रभुमुख कै बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी ॥
अंतरजामी प्रभु सब जाना । बूझत कहहु काह हनुमाना ॥
जोरि पानि कह तब हनुमंता । सुनहु दीनदयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥
तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना । सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥
दो०—नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहु सोक न मोह ।
केवल कृपा तुम्हारि हिं कृपानंद संदोह ॥३६॥
करौं कृपानिधि एक ढिठाई । मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन्ह कै महिमा रघुराई । बहु बिधि बेद पुरानन्ह[१] गाई ॥
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई । तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहौं प्रभु तिन्ह कर लच्छन । कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन ॥
संत असंत भेद बिलगाई । प्रनत पाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥
संत असंतन्हि के असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥
दो०—ता तें सुर सीसन्ह चढ़त जगबल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनन्हि[२] परसु बदनु येह दंड ॥३७॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखें पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

१—प्र० : पुरानन्ह । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : पुरानन्हि] ।
२—प्र० : घनहि । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : घनन्हि ।

मुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी । पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवंत अनंत अनामय । अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुन जयजय गुन सागर[1] । सुख मंदिर सुंदर अति नागर ॥
जय इंदिरारमन जय भूधर । अनुपम अज[2] अनादि सोभाकर ॥
ग्यान निधान अमान मानप्रद । पावन सुजसु पुरान बेद बद ॥
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय । बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय । हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥

दो०—परमानंद कृपायतन मन पर पूरन काम[3] ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्री राम ॥३४॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु[4] कलपतरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु येह बरु ॥
भव बारिधि कुंभज रघुनायक । सेवत सुलभ सकल सुख दायक ॥
मनसंभव दारुन दुख दारय । दीनबंधु समता बिस्तारय ॥
आस त्रास इरिषादि निवारकु । बिनय बिबेक बिरति बिस्तारकु ॥
भूप मौलि मनि मंडन धरनी । देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥
मुनि मन मानस हंस निरंतर । चरन कमल बंदित अज संकर ॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक । काल कर्म सुभाव गुन भच्छक ॥
तारन तरन हरन सब दूषन । तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

१—प्र० : जय जय गुन सागर । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : जय गुन निधि सागर] ।
२—प्र० : अति अनुपम । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : अनुपम अज] । तृ०: अनुपम अज ।
च० : तृ० ।
३—प्र० : मन परिपूरन । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : मन पर पूरन] ।
४—प्र० : सुरधेनु । द्वि०, तृ० : प्र० । [च० : (६) सुरधेनु ।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए । भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥
सुनी चहहिं प्रभुमुख कै बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी ॥
अंतरजामी प्रभु सब जाना । बूझत कहहु काह हनुमाना ॥
जोरि पानि कह तब हनुमंता । सुनहु दीनदयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥
तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना । सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥
दो०—नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहु सोक न मोह ।
केवल कृपा तुम्हारि हिं कृपानंद संदोह ॥३६॥
करौं कृपानिधि एक ढिठाई । मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन्ह कै महिमा रघुराई । बहु बिधि बेद पुरानन्ह[१] गाई ॥
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई । तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहौं प्रभु तिन्ह कर लच्छन । कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन ॥
संत असंत भेद बिलगाई । प्रनत पाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥
संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥
दो०—ता तें सुर सीसन्ह चढ़त जगबल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनन्हि[२] परसु बदनु येह दंड ॥३७॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखें पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

१—प्र० : पुरानन्ह । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : पुरानन्हि] ।
२—प्र० : घनहिं । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : घनन्हि ।

विगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मइत्री । द्विज पद प्रीति धरम जनयित्री[१] ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥
दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥३८॥
सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई । हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥
दो०—पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पावँर पाप मय देह धरे मनुजाद ॥३९॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू कै जौं सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं बिपती । सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथरत परिवार बिरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । संत संग हरिकथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी । बेद बिदूषक पर धन स्वामी ॥
बिप्रद्रोह सुरद्रोह[२] बिसेषा । दंभ कपट जिय धरें सुबेषा ॥

१—प्र० : जनयित्री । द्वि० : प्र० । [तृ० : जन्जंत्री] । च० : प्र० [(न): जनजंत्री] ।
२—प्र० : परद्रोह । द्वि० : प्र० । तृ० : सुरद्रोह । च० : तृ० ।

दो०–ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहि मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना ॥
काल रूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहि[1] भव जिन्ह लखि राखे ॥

दो०–सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक ॥४१॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेमु न हृदयँ समाई ॥
करहि बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा ॥
पुनि रघुपति निज मंदिर गए। येहि बिधि चरित करत नित नए ॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं ॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥
सुनि बिरंचि अतिसय[2] सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं ॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

दो०–जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥४२॥

१—प्र० : परहिं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : परिहिं']।
२—प्र० : कनिसय। द्वि०, तृ०, प्र०। [च० : (६) सुर अति, (८) अति सो]।

बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मइत्री । द्विज प्रद प्रीति धरम जनयित्री[१] ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहिं । परुष बचन कबहूं नहि बोलहिं ॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥३८॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई ॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई । हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

दो०—पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पावँर पाप मय देह धरे मनुजाद ॥३९॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहूँ कै जौं सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं बिपती । सुखी भए मानहुं जग नृपती ॥
स्वारथरत परिवार बिरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । संत संग हरिकथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी । बेद बिदूषक पर धन स्वामी ॥
बिप्रद्रोह सुरद्रोह[२] बिसेषा । दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा ॥

१—प्र० : जनयित्री । द्वि० : प्र० । [तृ० : जन्जंत्री] । च० : प्र० [(न): जनबंत्रा] ।
२—प्र० : परद्रोह । द्वि० : प्र० । तृ० : सुरद्रोह । च० : तृ० ।

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना । स्वारथ रत परलोक नसाना ॥
काल रूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे । ते न परहि भव जिन्ह लखि राखे ॥

दो०—सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥४१॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई । हरषे प्रेम न हृदयँ समाई ॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा । हनूमान हियँ हरष अपारा ॥
पुनि रघुपति निज मंदिर गए । येहि बिधि चरित करत नित नए ॥
बार बार नारद मुनि आवहिं । चरित पुनीत राम के गावहिं ॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं । ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥
सुनि बिरंचि अतिसय[2] सुख मानहिं । पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं ॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं । जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी । सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान ।
जे हरि कथा न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥४२॥

१—प्र० : परहिं । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : परिहिं] ।
२—प्र० : अतिसय । द्वि०, तृ०, प्र० । [च० : (६) सुर अति, (८) अति सो] ।

एक वार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए ॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन[१]। बोले बचन भगत भव[२] भंजन ॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी ॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जौ तुम्हहि सुहाई ॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई ॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥
दो०–सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥
येहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहे[३] परसमनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जीव भ्रमत येह जिव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
दो०-जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन[४] गति जाइ ॥४४॥

१—प्र० : गुर मुनि अरु द्विज। द्वि० : प्र०। [तृ० : सदसि अनुज मुनि]। च० : प्र० [(६) : सदसि अनुज मुनि]।
२—प्र० : भव। द्वि० : प्र० [(४) : भय। [तृ०, च० : भय]।
३—प्र० : ग्रहे। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): गहे]। [तृ० : गहे]। च० : प्र० [(८): गहे]।
४—प्र० : आत्मोहन। द्वि० : आतमहन [(३) (५अ): आत्महन]। तृ०, च० : द्वि० [(६): आत्महन]।

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित । सोइ गुन गृह विज्ञान अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥
दो०—नाथ एक वर मागौं राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कवहुँ घटै जनि नेहु ॥४९॥
अस कहि मुनि वसिष्ठ गृह आए । कृपासिंधु कें मन अति भाए ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ॥
पुनि कृपाल पुर वाहेर गए । गज रथ तुरग मँगावत भए ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ[1] चाहे ॥
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ॥
भरत दीन्ह निज वसन डसाई । वैठे प्रभु सेवहिं सव भाई ॥
मारुतसुत तव मारुत करई । पुलक वपुष लोचन जल भरई ॥
हनूमान समान[2] वड़भागी । नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । वार वार प्रभु निज मुख गाई ॥
दो०—तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल वीन ।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन ॥५०॥
मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा विलोकनि सोच[3] विमोचन ॥
नील तामरस स्याम कामअरि । हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥
जातुधान वरूथ वल भंजन । मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
भूसुर ससि नव वृंद वलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥
भुजवल विपुल भार महि खंडित । खर दूषन विराध वध पंडित ॥
रावनारि सुख रूप भूप वर । जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥
सुजसु पुरान विदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥

१—प्र० : तेइ । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : जेइ] । [तृ०, च० : जेइ] ।
२—प्र० : सम नहिं । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : समान ।
३—प्र० : सोच । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सोक] ।

एक वार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरवासी सब आए॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन[1]। बोले बचन भगत भव[2] भंजन॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥
दो०–सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥४३॥
येहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहै[3] परसमनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जीव भ्रमत येह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सद्गुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
दो०-जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन[4] गति जाइ॥४४॥

१—प्र० : गुर मुनि अरु द्विज। द्वि० : प्र०। [तृ० : सदसि अनुज मुनि]। च० : प्र० [(६) : सदसि अनुज मुनि]।
२—प्र० : भव। द्वि० : प्र० [(४) : भय। [तृ०, च० : भय]।
३—प्र० : ग्रहै। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५): गहै]। [तृ० : गहै]। च० : प्र० [(८): गहै]।
४—प्र० : आत्माहन। द्वि० : आतमहन [(३) (५अ): आत्महन]। तृ०, च० : द्वि० [(६): आत्महन]।

हरिचरित्रमानस[१] तुम्ह गावा । सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा ॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई । कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥

दो०—बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़ राम चरन[२] अति नेह ।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह ॥५३॥

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्मब्रत धारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई । बिषय बिमुख बिराग रत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ । जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी ॥
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी । जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥
सब तें सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरि भगति काग किमि पाई । बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥

दो०—राम परायन ज्ञान रत गुनागार मति धीर ।
नाथ कहहु केहि कारन पाएउ काग सरीर ॥५४॥

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा । कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी । कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥
गरुड़ महा ज्ञानी गुनरासी । हरिसेवक अति निकट निवासी ॥
तेहि केहि हेतु काग सन जाई । सुनी कथा मुनि निकर बिहाई ॥
कहहु कवन बिधि भा संबादा । दोउ हरि भगत काग उरगादा ॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई । बोले सिव सादर सुख पाई ॥
धन्य सती पावनि मति तोरी । रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी ॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा ॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा । भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा ॥

१—प्र० . हरिचरित्र । द्वि० : प्र० । [तृ० : रामचरित] । च० : प्र० ।
२—प्र० . रामचरन । द्वि० तृ०, च० : प्र० [(६). राम सरन] ।

कारुनीक व्यलीक[1] मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलि मल मथन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥
दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥५१॥
गिरिजा सुनहु बिसद येह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
रामचरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥
राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥
बिमल कथा हरिपद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउँ सब कथा सुहाई । जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी । अब का कहौं सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी । बोलीं अति बिनीत मृदु बानी ॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी । सुनेउँ राम गुन भव भय हारी ॥
दो०—तुम्हरी कृपा कृपायतन[2] अब कृतकृत्य न मोह ।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥
नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर ।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥५२॥
रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवन्मुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥
भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कहुँ दृढ़ नावा ॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा । स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥
स्रवनवंत अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सुहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक[3] घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ॥

१—प्र० : व्यलीक । द्वि० : प्र० [(५अ): व्यालिक] । [तृ०, च० : बालिक] ।
२—प्र० : कृपायतन । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) कृपालमइ] ।
३—प्र० : निजात्मक । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : निजानम] । [तृ० : निजानम] ।
च० : प्र० [(८) : निलज कुल] ।

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥
दो०—तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आएउँ कैलास॥५७॥
गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गएउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गए काग पहिं खगकुल केतू॥
जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होत मोहि व्रीड़ा॥
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥
बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरगआराती॥
व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतरा सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥
दो०—भव बंधन तें छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥५८॥
नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न[१] ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भएउ मोह बस तुम्हरिहिं नाईं॥
व्याकुल गएउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माँहीं॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥
जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहि बहु बार नचावा मोहीं। सोइ व्यापी बिहंगपति तोही॥
महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ[२] निदेसा॥
दो०—अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान॥५९॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : प्रगट न [(६) प्रगटत]।
२—प्र० : सोइ करहु जेहि होइ निदेसा। द्वि० : प्र०। [तृ०: सोइ करहु जो देहिं निदेसा] [च० : (६) सोइ करहु जो देहिं निदेसा, (८) रहै न मोह निसा लव लेसा]।

दो०—ऐसिश्र प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहौं सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥
दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥
तब अति सोच भएउ मन मोरे। दुखी भएउँ बियोग प्रिय तोरे ॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरौं बेरागा[१] ॥
गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए ॥
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ॥

दो०—सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥५६॥

तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कलपांत न होई ॥
मायाकृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका ॥
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई ॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ॥
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं[२] अनेक बिहंगा ॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना ॥
सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहि काला ॥

१—प्र० : फिरौ बेरागा। [द्वि०: फिरौं बिरागा]। [तृ०: फिरौं बिभागा]। च०: प्र० [(६) फिरै बिरागा]।
२—प्र० : सुनहिं। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सुनै]।

मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग जप[1] ग्यान बिरागा ॥
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काग भुसुंडि सुसीला ॥
राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुनगृह बहुकालीना ॥
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंग बर ॥
जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी। होइहि मोहजनित दुख दूरी ॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई ॥
ता तें उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरम मैं पावा ॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना ॥
कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खग ही कै भाषा ॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ॥

दो०—ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवन पति कर जान।
ताहि मोह माया नर पाँवर करहिं गुमान ॥
सिव बिरंचि कहुँ मोहै[2] को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान ॥६२॥

गएउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडी[3]। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी[3] ॥
देखि सैल प्रसन्न मन भएऊ। माया मोह सोच सब गएऊ ॥
करि तड़ाग मज्जन जल पाना। बट तर गएउ हृदयँ हरषाना ॥
बृद्ध बृद्ध बिहग तहँ आए। सुनइ राम के चरित सुहाए ॥
कथा अरंभ करइ सोइ चाहा। तेही समय गएउ खगनाहा ॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा ॥
अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूँछि सुआसन दीन्हा ॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा ॥

१—प्र० : तप। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : जप]। तृ० : जप। च० : तृ०।
२—प्र० : मोहै। द्वि० : प्र०। [तृ० : मोह है]। च० प्र० [(८): मोह है]।
३—प्र० : भुसुंडा। द्वि० प्र० [(३) (५) (५अ) . भुसुंडी, अखंडी]। तृ० : भुसुंडी, अखंडी। च० : तृ०।

तब खगपति बिरंचि पहिं गएऊ। निज संदेह सुनावत भएऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम उर[१] छावा ॥
मन महुँ करइ बिचार बिधाता। मायाबस कबि कोबिद ग्याता ॥
हरि माया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोहिं नचावा ॥
अगजग मय जग[२] मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा ॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई ॥
बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू ॥
तहँ होइहि तब संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी ॥

दो०—परमातुर बिहंगपति आएउ तब मो[३] पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥६०॥

तेहि मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा ॥
सुनि ताकरि बिनती[४] मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ॥
मिलेहु गरुड़[५] मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही ॥
तबहि होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा ॥
सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥
नित हरि कथा होति जहँ भाई। पठवौं तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा ॥

दो०—बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥६१॥

१—प्र० : अति। द्वि० : प्र०। तृ० : उर। च० : तृ०।
२—प्र० : मय जग। द्वि० : प्र०। [तृ० : भय सब]। च० : प्र० [(८): माया]।
३—प्र० : मो। [द्वि०, तृ०, च० : मोहि]।
४—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : बिनती [(६) : बिनीत]।
५—प्र०, द्वि०, तृ०, च० : गरुड [(६): गरुर]।

जो अति आतप ब्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥
जौं नहि होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥
सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई । अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई ॥
निगमागम पुरान मत येहा । कहहिं सिद्ध मुनि नहि संदेहा ॥
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहि राम कृपा करि जेही ॥
राम कृपा तव दरसन भएऊ । तव प्रसाद मम[1] संसय गएऊ ॥

दो०—सुनि बिहगपति बानी[2] सहित बिनय अनुराग ।
पुलकि गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग ॥
स्रोता सुमति सुसील सुचि कथारसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि[3] सज्जन करहिं प्रकास ॥ ६९ ॥

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापात्र रघुनायक केरे ॥
तुम्हहि न संसय मोह न माया । मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया ॥
पठइ मोह मिस खगपति तोही । रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही ॥
तुम्ह निज मोह कही खगसाईं । सो नहि कछु आचरज गोसाईं ॥
नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनिनायक आतमबादी ॥
मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा[4] । केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा ॥

दो०-ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न येहि संसार ॥

१—प्र० : सब । द्वि० : प्र० । तृ० : मम । च० : तृ० ।
२—प्र० : बानी । द्वि० : प्र० । [तृ० : बानि बर] ।
३—प्र० : गोप्यमपि । द्वि० - प्र० [(५अ) : गोप्यमत] । [तृ० : गोप्यमत] । च० : प्र० [(८): गुप्तमत] ।
४—प्र० : बौराहा । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): बौरहा] ।

दो०—नाथ कृतारथ भएउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयेसु देहु सो करौं अब प्रभु आएहु केहि काज॥
सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै[1] अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस॥ ६३॥

सुनहु तात जेहि कारन[2] आएउँ। सो सब गएउ दरस तव पाएउँ॥
देखि परम पावन तव आस्रम। गएउ मोह संसय नाना भ्रम॥
अब श्री राम कथा अतिपावनि। सदा सुखद दुख पूग[3] नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवौं प्रभु तोही॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भएउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति गन गाहा॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। राम चरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

दो०—बाल चरित कहि बिबिध बिधि मन महुँ परम उछाह।
रिषि आगमन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह॥६४॥

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुर बासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥
बिपिन गवनु केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥
सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥
करि नृप क्रिया संग पुरवासी। भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी॥

१—प्र० : जेहिकै। द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : जिन्हकैं]। [तृ० : जेहिनी]। च० : प्र० [(८) : जेहिकी]।
२—प्र० : कारन। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : कारज]।
३—प्र० : पूग। [द्वि०, तृ० : पुंज]। च० : प्र० [(८): पुंज]।

दो०—लरिकाईं जहँ जहँ फिरहि तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥
एक बार अति सैसवँ[१] चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भएउ सरीर॥ ७५॥

कहइ भुसुंडि सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक[२] सुखदायक॥
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव कारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥

दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर नाभि रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर[३]॥७६॥

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवाँ। चारु चिबुक आनन छबि सीवाँ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससिकर सम हासा॥
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥
पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥

१—प्र० : अति सैसवँ। द्वि० : प्र० [(४) (५) (५अ): अतिसय सब]। [तृ० : अतिसय सुखद] च० : प्र० [(८). अतिसय सुखद]।
२—प्र० : सेवक। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सेवन]।
३—प्र०: चीर। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): बार]।

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि लोचन[1] सर को अस लाग न जाहि ॥ ७० ॥

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जौबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा ॥
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिंता साँपिनि को नहिं[2] खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया ॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक[3] ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥
यह सब माया कर परिवारा[4]। प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

दो०—ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड ॥
सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहौं पद रोपि ॥ ७१ ॥

जो, माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिज्ञान रूप गुन[5] धामा ॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥

१—प्र० : मृगलोचनि लोचन। द्वि० : प्र० [(५अ) : मृगलोचनि के नैन]। [तृ० : मृगनयनी के नयन]। [च० : मृगलोचनि के नैन]।
२—प्र० : को नहिं। द्वि० : प्र०। [तृ० : केहि नहिं]। [च० : काहि न]।
३—प्र० : लोक। द्वि० : प्र० [(३) (४) नारि, (५) सोक]। [तृ० : नारि]। च० : प्र० [(८) नारि]।
४—प्र० : परिवार। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : परिवारा]
५—प्र० : बल। द्वि० : प्र०। तृ० : गुन। च० : तृ०।

नेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ । जाना अनुज न मातु पिता हूँ ॥
जानुपानि धाए मोहि धरना । स्यामल गात अरुन कर चरना ॥
तब मैं भागि चलेउँ[१] उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा । तहँ हरि[२] भुज देखौं निज पासा ॥

दो०—ब्रह्मलोक लगि गएउँ मैं चितएउँ[३] पाछ-उड़ात ।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहिं मोहि तात ॥
सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति[४] मोरि ।
गएउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भएउँ बहोरि ॥ ७९ ॥

मूदेउँ नयन त्रसित जब भएऊँ । पुनि चितवत कोसलपुर गएऊँ ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं । बिहँसत तुरत गएउँ मुख माहीं ॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया । देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

दो०—जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहौं[५] बरष सत एक ।
येहि बिधि देखत फिरौं मैं अंडकटाह अनेक ॥ ८० ॥

१—प्र०: चलेउँ [(२): चलिउ]। द्वि०, तृ०, च०: प्र०।
२—प्र०: भुज हरि। द्वि०: प्र०। तृ०: हरि भुज।
३—प्र०: चितएउ। द्वि०: प्र०। [तृ०: चितवत]। च०: प्र० [(८): चितवत]।
४—[प्र०: जहा लगि गति]। द्वि०: जहाँ लगें गति [(१अ): जहँ लगि गति रहि]। [तृ०: जहँ लगि गति रहि]। च०: प्र० [(८): जहँ लगि गति रहि]।
५—प्र०: रहौं। द्वि०: प्र० [(४): रहयो]। [तृ०: रहे]। च०: प्र० [(८): रहे]।

मोहि सन करहिं विविध विधि क्रीड़ा । बरनत मोहि होति अति[1] व्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं । चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥

दो०—आवत निकट हसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥
प्राकृत सिसु इव लीला देखि भएउ मोहि मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ॥ ७७ ॥

एतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित ब्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं । आन जीव इव संसृति नाहीं ॥
नाथ इहाँ कछु कारन आना । सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ज्ञान अखंड एक सीतावर । मायावस्य जीव सचराचर ॥
जौं सब के रह ज्ञान एक रस । ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुनखानी ॥
परबस जीव स्ववस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

दो०—रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान ।
ज्ञानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ॥
राकापति षोडस उअहिं[2] तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ ॥ ७८ ॥

ऐसेहि बिनु हरि[3] भजन खगेसा । मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या । प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या ॥
ता तें नास न होइ दास कर । भेद भगति बाढ़इ बिहग बर ॥
भ्रम ते चकित राम मोहि देखा । बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा ॥

१—प्र० : मोहि होति अति । द्वि० : प्र० । तृ० : चरित होति मोहि । च० : तृ० ।
२—प्र० : उअहिं । द्वि० : प्र० । [तृ० : उगहिं] । च० : प्र० [(८): उगहिं] ।
३—प्र० : हरि बिनु । द्वि० : प्र० [(५): बिनु हरि] । [तृ०: बिनु हरि] । च० : प्र० [(६): बिनु हरि] ।

करौं बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥
सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावौं मनु न लहइ बिश्राम॥८२॥

देखि चरित येह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥
कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद. कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥
भगतबछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥

दो०—सुनि सप्रेम मम बानी[१] देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥
काग भुसुंडि माँगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥८३॥

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि[२] दुर्लभ गुन जे जग जाना॥
आजु देउँ सब[३] संसय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं॥
सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥

१—प्र० : मम बानी। द्वि० : प्र०। [तृ० : मम बैन बर]। च० : प्र०।
२—प्र० : मुनि। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६) : सुर]।
३—प्र० : सब। द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): तब]।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता ॥
नर गंधर्व भूत बेताला । किंनर निसिचर पसु खग ब्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती । सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना । सब प्रपंच तहँ आनइ आना ॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेउँ जिनस[1] अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी[2] । सरऊ[2] भिन्न भिन्न नर नारी ॥
दसरथ कौसल्या सुनु ताता[3] । बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा । देखौं बाल बिनोद उदारा[4] ॥

दो०–भिन्न भिन्न मैं दीख सबु[5] अति बिचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥
सोइ[6] सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर ।
भुवन भुवन देखत[7] फिरौं प्रेरित मोह समीर[8] ॥ ८१ ॥

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका । बीते मनहुँ कलप सत एका ॥
फिरत फिरत निज आश्रम आएउँ । तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँएउँ ॥
निज प्रभु जनम अवध सुनि पाएउँ । निर्भर प्रेम हरषि उठि धाएउँ ॥
देखेउँ[9] जनम महोत्सव जाई । जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई ॥
राम उदर देखेउँ जग नाना । देखत बनइ न जाइ बखाना ॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना । मायापति कृपाल भगवाना ॥

१—प्र० : जिनस । द्वि० : प्र० । [तृ० : जिनिस] च० : प्र० [(८): जीव] ।
२—प्र० : क्रमशः निनारी, सरऊ । [(३) (५अ) निनारी, सरजू ,(४)(५) निहारी, सरजू] । [तृ० : निहारी,सरजू] । च० : प्र० [(८): निनारी, सरजू] ।
३—प्र० : कौसल्या सुनु ताता । द्वि० : प्र० । [तृ० : कौसल्यादिक माता] । च० : प्र० ।
४—प्र० : अपारा । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : उदारा ।
५—प्र० : मैं दीख सब । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : प्र० [(८): सब देखेउँ] ।
६—प्र० : सोइ । द्वि० : प्र० । [तृ० : सो] । च० : प्र० ।
७—प्र० : देखत । द्वि०, तृ०, च० : प्र० [(६): प्रेरित] ।
८—प्र० : समीर । द्वि०, तृ० : प्र० । च० : सरीर ।
९—प्र० : देखौं । द्वि० : प्र० । तृ० : देखेउँ । च० : तृ० ।

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब तें अधिक मनुज मोहि भाए ॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी । तिन्ह महँ निगम धर्म अनुसारी ॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि[१] ग्यानी । ग्यानिहुँ तें अति प्रिय बिग्यानी ॥
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न[२] दूसरि आसा ॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥
भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु[३] सम प्रिय मोहि सोई ॥
भगतिवंत अति नीचौ प्रानी । मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ॥

दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥८६॥

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
येहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥
अखिल बिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया । भजइ[४] मोहि मन बच अरु काया ॥

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

सो०—सत्य कहौं खग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय ।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥८७॥

१—प्र० : पुनि । द्वि० : प्र० । [तृ० : अरु] । च० : प्र० ।
२—[प्र० : जेहि भगति मोरि न] । द्वि० : जेहि गति मोरि । तृ०, च० : द्वि० ।
३—प्र० : जीवहु । द्वि० : प्र० [(३)(४)(५) : जीवन] । तृ० : प्र० । [च० : जीवन] ।
४—प्र० : भजइ । द्वि० : प्र० । [तृ० : भजहि] । [च०: में नहीं है, (८) भजहि] ।

भगति हीन गुन सब सुख कैसे[1] । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥
भजनहीन सुख कवने काजा । अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥
जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू । मोपर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत बर माँगौं स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥

दो०—अबिरल भगति बिसुद्ध तव स्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि[2] खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भगत कल्पतरु प्रनतहित कृपासिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु[3] देहु दया करि राम ॥८४॥

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक । बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तइँ सहज सयाना । काहे न माँगसि अस बरदाना ॥
सब सुख खानि भगति तैं माँगी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । माँगिहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे । सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे ॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥

दो०—माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि ।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥
मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग ।
काय बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥८५॥

अब सुनु परम बिमल मम बानी । सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धांत सुनावौं तोही । सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥

१—प्र० : ऐसे । द्वि० : प्र० [(४)(५)(५अ): कैसे] । तृ० : कैसे । च० : तृ० ।
२—प्र० : जेहि । द्वि० : प्र० । [तृ० : जो] । च० : प्र० ।
३—प्र० : प्रभु । द्वि० : प्र० । [तृ० : अब] । च० : प्र० ।

कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९॥
बिनु संतोष न काम[1] नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु बिज्ञान कि समता आवै । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै ॥
स्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥
दो०–बिनु बिस्वास भगति नहि तेहि बिनु द्रवहि न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह[2] बिस्रामु ॥
सो०–अस बिचारि मति धीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥ ९० ॥
निज मति सरिस नाथ मैं गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी । येह सब मैं निज नयनन्हि देखी ॥
महिमा नाम रूप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं । निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥
तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥
राम काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥
दो०–मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास ।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥

१– प्र० : काम न । द्वि० : प्र० [(४) (५): न काम] । तृ०: न काम । च०: तृ० ।
२– प्र० : जीव न लह । द्वि० : प्र० । [तृ० . जिव कि लहै] । [च० : जीव कि लहु]

कबहुँ काल नहिं ब्यापिहि तोहीं । सुमिरेसु भजेसु[१] निरंतर मोहीं ॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ । तन पुलकित मन अति हरषाऊँ ॥
सो सुख जानइ मन अरु काना । नहिं रसना पहिं जाइ बखाना ॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना । कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहिं बयना ॥
बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । चितइ मातु लागी अति भूखा ॥
देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥

सो०—जेहि[२] सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद ।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥
सोई सुख[३] लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ ।
ते नहिं गनहिं[४] खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति ॥ ८८ ॥

मै पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बाल बिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भक्ति बर पाएउँ । प्रभु पद बंदि निजास्रम आएउँ ॥
तब तें मोहि न ब्यापी माया । जब तें रघुनायक अपनाया ॥
येह सब गुप्त चरित मै गावा । हरि माया जिमि मोहि नचावा ॥
निज अनुभव अब कहौ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

सो०—बिनु गुर होइ कि ज्ञान ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥

१—प्र० : सुमिरेसु भजेसु । द्वि० : प्र० [(३)(४)(५) : सुमिरेहु भजेहु] । तृ० : प्र० [च० : सुमिरेहु भजेहु] ।
२—प्र० : जेहि । । द्वि० : प्र० । [तृ० : जो] । च० : प्र० ।
३—प्र० : सोई सुख । द्वि० : प्र० । [तृ० : सो सुखकर] । च० : प्र० ।
४—प्र० : ते नहिं गनहिं । द्वि० : प्र० । [तृ० : सो नहि गनै] । च० : प्र० ।

पाछिल मोह समुझि पछिताना । ब्रह्म अनादि मनुज करि माना[१] ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥
गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ॥
सभय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ॥
तव सरूप गारुड़ि रघुनायक । मोहि जिआएउ जन सुखदायक ॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना । राम रहस्य अनूपम जाना ॥
दो०—ताहि प्रससि[२] बिबिध बिधि सीस नाइ कर जोरि ।
　　बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥
　　प्रभु अपने अबिबेक तें बूझौं स्वामी तोहि ।
　　कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥ ९३ ॥

तुम्ह सर्बज्ञ तज्ञ तमपारा । सुमति सुसील सरल आचारा ॥
ज्ञान बिरति बिज्ञान निवासा । रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा ॥
कारन कवन देह येह पाई । तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥
राम चरित सर सुंदर स्वामी । पाएहु कहाँ कहहु नभगामी ॥
नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं । महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं ॥
मृषा[३] बचन नहिं ईस्वर कहई । सोउ मोरे मन संसय अहई ॥
अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जगु काल कलेवा ॥
अंडकटाह अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ॥
सो०—तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन ।
　　मोहि सो कहहु कृपाल ज्ञान प्रभाव कि जोग बल ॥
दो०-प्रभु तव आस्रम आएँ[४] मोर मोह भ्रम भाग ।
　　कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥९४॥

१—प्र० : माना । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : जा०] ।
२—प्र० : प्रससि । द्वि० : प्र० । [तृ० : प्रससे] । च० : प्र० ।
३—प्र० : मुधा । द्वि० : प्र० । तृ०: मृषा । च० : तृ० ।
४ प्र० : आए । द्वि० : प्र० [(३) : आएउँ] । [तृ०, च० : आएउँ] ।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥ ९१॥

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम[1] पावन। नाम अखिल अघ पूग[2] नसावन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम[3] पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार[4] धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
येहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

दो०—रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहिं सुनाएउँ सोइ॥

सो०—भावबस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीतारवन॥ ९२॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्री रघुपति प्रताप[5] उर आना॥

१—प्र० : सम। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० सर]।
२—प्र० : पूग। [द्वि०, तृ०, च० : पुंज]।
३—प्र० . सम। द्वि० प्र० [(१अ) : सत]। [तृ०, च० : सत]।
४—प्र० : भार। द्वि० : प्र० [(५अ) धरा]। तृ०, च० : प्र०।
५—प्र० प्रताप। द्वि० प्र० [(३)(४)(५) प्रभाउ]। च०

दो०—प्रथम जनम के चरित अब कहौं सुनहु बिहँगेस ।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥
पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मलमूल ।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल ॥९६॥

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई । जन्मत भएउँ सूद्र तन पाई ॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी । आन देव निंदक अभिमानी ॥
धन मदमत्त परम बाचाला । उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला ॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी । तदपि न कछु महिमा तब जानी ॥
अब जाना मैं अवध प्रभावा । निगमागम पुरान अस गावा ॥
कवनेहु जनम अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई ॥
अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं रामु धनुपानी ॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥

दो०—कलिमल ग्रसे[१] धर्म सब लुप्त[२] भए सदग्रंथ ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
सुनु हरिजान ज्ञाननिधि कहौं कछुक कलि धर्म ॥९७॥

बरन धर्म नहिं आस्रम चारी । श्रुति बिरोध रत सब नर[३] नारी ॥
द्विज स्रुति बेचक[४] भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो पर धन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ॥

१ प्र० : ग्रसे । द्वि० : प्र० । [तृ० : ग्रासे] । च० : प्र० ।
२ प्र० : लुप्त । द्वि० : प्र० [(५) : गुप्त] । तृ० : प्र० । [च० : गुप्त] ।
३ प्र० : रत सब नर । द्वि० : प्र० । [तृ० : सब रत नर] । [च० : सब नर श्री] ।
४—प्र० : बेचक । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ) : बंचक] । [तृ०, च० : बंचक] ।

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा । बोलेउ उमा परम[1] अनुरागा ॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी । प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥
सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई । बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ॥
सब निज कथा कहौं मैं गाई । तात सुनहु सादर मन लाई ॥
जप तप मख सम दम ब्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना ॥
सब कर फलु रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥
येहि तन राम भगति मैं पाई । ता तें मोहि ममता अधिकाई ॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

सो०—पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥
पाट कीट तें होइ तेहि तें[2] पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालइ सब कोइ परम अपावन प्रान सम ॥९५॥

स्वारथ साँच जीव कहुँ येहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजइ[3] रघुबीरा ॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही । कबि कोबिद न प्रसंसहि तेही ॥
राम भगति येहि तन उर जामी । ता तें मोहि परम प्रिय स्वामी ॥
तजौं न तनु निज इच्छा मरना । तनु बिनु बेद भजनु नहिं बरना ॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा । राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥
नाना जनम करम पुनि नाना । किए जोग जप तप मख दाना ॥
कवन जोनि जन्मेउँ जहँ नाहीं । मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं ॥
देखेउँ करि सब करम गोसाईं । सुखी न भएउँ अबहिं की नाईं ॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी । सिव प्रसाद मति मोह न घेरी ॥

१—प्र० : परम । द्वि० : प्र० [(६) (५) : सहित] । [तृ०, च० : सहित] ।
२—प्र० : तेहितें । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : तातें] ।
३—प्र० : भजै । द्वि० : प्र० [(२) (६) (५) : भजिअ] । तृ०, च० : प्र० ।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाउ न दूजा ॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जज्ञ न ज्ञाना। एक अधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नामप्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

दो०—कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहि प्रयास ॥
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान ॥१०३॥

नित[१] जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ॥
बुध जुगधर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥
काल धर्म[२] नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नटसेवकहिं न ब्यापइ माया ॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥
तेहि कलि काल बरष बहु बसेउँ अवध बिहँगेस।
परेउ दुकाल बिपतिबस तब मैं गएउँ बिदेस ॥१०४॥

गएउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥

१—प्र० : नित। द्वि० : प्र० [(३) (५अ) कृत]। [तृ०, तृ०: कृत]।
२—प्र० : कालधर्म। द्वि० : प्र०। [तृ० : कालधर्म]। [च० : प्रभु प्रभाव]।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ज्ञानी सो विरागी[१] ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
दो०—असुम बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजितिर[२] कलिजुग माहिं ॥
सो०—जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ[३] ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥९८॥
नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव बिप्र श्रुति[४] संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी बिभूषन हीना । बिधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुर सिष बधिर अंध का[५] लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं ॥
दो०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि मोह बस करहिं बिप्र गुर घात ॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ॥९९॥
पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर । देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं । जे कहुँ सत[६] मारग प्रतिपालहिं ॥

१—[प्र० : ज्ञान बैरागी] । द्वि० : ज्ञानी सो विरागी [(५अ): ज्ञानी बैरागी] । [तृ०, च० : ज्ञानी बैरागी] ।
२—प्र० : पूजिनि । द्वि०: प्र० [(३) (४) (५): पूज्य ते] । [तृ०: पूजित] । [च०: पूज्य ते] ।
३—प्र० : मान्य तेइ । द्वि० : प्र० । [तृ० : मान्यता] । च० : प्र० ।
४—प्र० : श्रुति । द्वि० : प्र० । [तृ० : गुरु] । च० : प्र० ।
५—[प्र० : क] । द्वि० : का [(५अ): कर] । तृ०: द्वि० । [च० : कर] ।
६—प्र० : जे कहुँ सन । द्वि० : प्र० । [तृ० : जे कछु सत] । [च० : निज कृत दोष] ।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाउ न दूजा ॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जज्ञ न ज्ञाना । एक अधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नामप्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

दो०—कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान ॥१०३॥

नित[१] जुग धर्म होहिं सब केरे । हृदयँ राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा । सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस । द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा । कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ॥
बुध जुगधर्म जानि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥
काल धर्म[२] नहिं व्यापहिं ताही । रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया । नटसेवकहिं न व्यापइ माया ॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं ।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥
तेहिं कलि काल बरष बहु बसेउँ अवध बिहँगेस ।
परेउ दुकाल बिपतिबस तब मैं गएउँ बिदेस ॥१०४॥

गएउँ उजेनी सुनु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥

१—प्र० : नित । द्वि० : प्र० [(३) (५अ) कृत] ।। तृ०, तृ०: कृत] ।
२—प्र० : धारधर्म । द्वि० : प्र० । [तृ० : धारधर्म] । [च० : प्रभु प्रभाव] ।

गए काल कछु संपति पाई । तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥
बिप्र एक बैदिक सिव पूजा । करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक । संभु उपासक नहिं हरि निंदक ॥
तेहि सेवौं मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥
संभु मंत्र मोहि द्विजवर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥

दो०–मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरौं करौं बिष्नु कर द्रोह ॥

सो०–गुर नित मोहिं प्रबोध दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति की भावई ॥१०५॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥
सिव सेवा कै फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पावँर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥
हर कहुँ हरिसेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाए । भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । गुर कर द्रोह करौं दिनु राती ॥
अतिदयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥
जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहि हति ताहि नसावा ॥
धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मग परी निरादर रहई । सब कर पद प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई । पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा । बुध नहि करहिं अधम कर संगा ॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥

उदासीन नित रहिअ गोसाईं । खल परिहरिअ स्वान की नाईं ॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई । गुर हित कहहि न मोहि सुहाई ॥
दो०—एक बार हर मंदिर[1] जपत रहेउँ सिव नाम ।
गुर आएउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥
सो दयाल नहिं कहेहु कछु उर न रोष लव लेस ।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥१०६॥
मंदिर माँझ भई नभबानी । रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा । अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥
तदपि साप सठ देहौं तोही । नीति बिरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥
जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई ॥
दो०—हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप ।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि ।
बिनय करत गदगद गिरा[2] समुझि घोर गति मोर ॥१०७॥
नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं ॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं । गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशं ॥
करालं महाकालकालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोहं ॥
तुषारादिसंकाशगौरं गभीरं । मनोभूतकोटिप्रभा श्री शरीरं ॥

१—प्र० : मंदिर । द्वि० : प्र० [तृ० : मंदिरहु] । च० : प्र० ।
२—प्र० : स्वर । द्वि० : प्र० [(५) (५अ) : गिरा] । तृ० : गिरा । च० : तृ० ।

गए काल कछु संपति पाई । तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥
विप्र एक बैदिक सिव पूजा । करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक । संभु उपासक नहिं हरि निंदक ॥
तेहि सेवौं मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥
संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥

दो०–मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरौं करौं बिष्नु कर द्रोह ॥

सो०–गुर नित मोहिं प्रबोध दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति की भावई ॥१०५॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥
सिव सेवा कै फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पावँर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥
हर कहुँ हरिसेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाए । भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । गुर कर द्रोह करौं दिनु राती ॥
अतिदयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥
जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा ॥
धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मग परी निरादर रहई । सब कर पद प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई । पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा । बुध नहि करहिं अधम कर संगा ॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥

सकर दीन दयाल अब येहि पर होतु कृपाल ।
साप अनुग्रह होइ जेहि[1] नाथ थोरे ही काल ॥१०८॥

येहि कर होइ परम कल्याना । सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी । एवमस्तु इति भै नभ बानी ॥
जदपि कीन्ह येहिं दारुन पापा । मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि सापा ॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी । करिहौं येहि पर कृपा बिसेषी ॥
छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मम[2] प्रिय जथा खरारी ॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि । जन्म सहस्र अवसि[3] येह पाइहि ॥
जन्मत मरत दुसह दुख होई । येहि स्वल्पौ नहिं ब्यापिहि सोई ॥
कवनेहु जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना ॥
रघुपति पुरी जन्म तव भएऊ । पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे । राम भगति उपजिहि उर तोरे ॥
सुनु मम बचन सत्य अब भाई । हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ॥
इंद्रकुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरिचक्र कराला ॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥
अस बिबेक राखेहु मन माहीं । तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
औरौ एक आसिषा मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥

दो०—सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि ।
मोहि प्रबोधि गएउ गृह संभु चरन उर राखि ॥
प्रेरित काल बिंधि[4] गिरि जाइ भएउँ मैं ब्याल ।

१—प्र० : तेहि । द्वि० : प्र० । [तृ० ता] । च० : प्र०
२—प्र० : मोहि प्रिय । द्वि : प्र० । तृ० : मम प्रिय । च० : तृ०
३—प्र० : सहस्र अवस्य । द्वि० : सहस्र अवसि । [तृ० : सहस्र अवस्य] । च० : द्वि०
४—प्र० : बिधि । द्वि० : प्र० । [तृ० : सुबिंध] । च० : प्र०

स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजगा ॥
चलत्कुंडल शुभ्रनेत्रं[1] विशाल। प्रसन्नानन नीलकंठं दयाल ॥
मृगाधीशचर्माम्बर मुंडमाल। प्रिय शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥
प्रचंड प्रकृष्ट प्रगल्भं परेश। अखंड अज भानुकोटिप्रकाश ॥
त्रय शूल निर्मूलन शूलपाणिम्। भजेहं भवानीपतिं भावगम्य ॥
कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ॥
चिदानंदसंदोहमोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न यावद् उमानाथपादारविंद। भजंतीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुख शांति सन्तापनाश। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवास ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजा। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्य ॥
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्न मामीश शंभो ॥

श्लो०—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये[2]।
ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ॥

दो०—सुनि बिनती सर्वज्ञ सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ बानी भइ[3] द्विजबर बर मॉगु ॥
जौं प्रसन्न प्रभु मोपर[4] नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति[5] देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु ॥
तव मायाबस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर-क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥

१—प्र० : अ_ सुनेत्र। द्वि० : प्र० [(५अ) : अ_ त्रिनेत्रं]। तृ० : शुभ्रनेत्रं। च० : तृ०।
२—प्र० : तोषये। [द्वि०, तृ० : तुष्टए] च० : प्र०।
३—प्र० : नभ बानी भइ। द्वि० : प्र०। [तृ० . बानी भइ है]। च० : प्र०।
४—प्र० : प्रभु मो पर। द्वि० प्र० [(५अ) . प्रभु मोहि पर]। तृ० : अति मोहि पर]
च० : प्र०।
५—प्र० भगति। द्वि० : प्र०। [तृ० : भगती]। च० : प्र

दो०—गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरौं छन छन नव अनुराग॥
मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नाएउँ बचन कहेउँ अति दीन॥
सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूछत भए द्विज आयहु केहि काज॥
तब मैं कहा कृपानिधि[1] तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन[2] मोहि कहहु भगवान॥११०॥

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि विज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहि वेदा॥
विविधि भाँति मोहिं मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम[3] हृदय न आवा॥
पुनि मै कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सो उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥
भरि लोचन विलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥
तब मै निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपौं करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मै कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥

१—प्र० : कृपानिधि। द्वि० : प्र०। [तृ० . कृपायतन]। च० : प्र०।
२—प्र० : अवराधन। द्वि० : प्र०। [तृ० . अवराधन।] च० : प्र०।
३—प्र० मम। द्वि० . प्र०। [तृ० . मोहि]। च०: प्र०।

पुनि प्रयास बिनु सो[1] तनु तजेउँ गए कछु काल ॥
जोइ तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरिजान ।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ॥
सिव राखी श्रुति नीति अरु मैं नहि पाव कलेस ।
येहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु ज्ञान न गएउ खगेस ॥१०९॥

त्रिजग देव नर जोइ तन धरऊँ । तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ । गुर कर कोमल सील सुभाऊ ॥
चरम[2] देह द्विज के मै पाई । सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ॥
खेलौं तहूँ[3] बालकन्ह मीला । करौं सकल रघुनायक लीला ॥
प्रौढ़ भए मोहिं पिता पढ़ावा । समुझौं सुनौं गुनौं नहिं भावा ॥
मन तें सकल बासना भागी । केवल राम चरन लय लागी ॥
कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई । हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई ॥
भए कालबस जब पितु माता । मैं बन गएउँ भजन जनत्राता ॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौं । आस्रम जाइ जाइ सिरु नावौं ॥
बूझौं तिन्हहि राम गुन गाहा । कहहिं सुनौं हरषित खगनाहा ॥
सुनत फिरौं हरि गुन अनुबादा । अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥
छूटी त्रिबिधि ईषना[4] गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं । तब निज जन्म सुफल करि लेखौं ॥
जेहि पूछौं सोइ मुनि अस कहई । ईस्वर सर्ब भूत मय अहई ॥
निर्गुन मत नहि मोहि सुहाई । सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई ॥

१—सो । द्वि० प्र० । [तृ० : सोउ] । [च० : पंक्ति नहीं है]
२—प्र० : चर्म । द्वि० : प्र० [(५अ) : धर्म] तृ०: चरम । [च० : धर्म] ।
३—प्र० : तहूँ [(२) : तहँ] द्वि०: प्र० । [तृ०, च० : तहा] ।
४—प्र० : ईषना । द्वि० प्र० [(४) (५) : ईर्षना] । [तृ० : ईर्षना] । [च० : न इरषा]

सत्य बचन बिस्वास न करही । बायस इव सब ही तें डरही ॥
सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला । सपदि होहि पच्छी चंडाला ॥
लीन्हि श्राप मैं सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय न दीनता आई ॥
दो०—तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि[१] सन करहिं बिरोध ॥११२॥
सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥
मन बच क्रम मोहि निज जन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥
रिषि मम सहन[२] सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेषी ॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा । हरषित राममंत्र तब दीन्हा ॥
बालक रूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना ॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा ॥
मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । रामचरितमानस तब भाखा ॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥
रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत राम कर जानी । ता ते मैं सब कहेउँ बखानी ॥
राम भगति जिन्ह के उर नाहीं । कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं ॥
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझावा । मइँ सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥
निज कर कमल परसि मम सीसा । हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा ॥
राम भगति अबिरल उर तोरे । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे ॥

१—प्र० : केहि । द्वि० : प्र० । [तृ० : का] । च० : प्र० ।
२—प्र० : सहन । [द्वि० : (३)(४)(५) महत,(५अ) सहज] । तृ० : प्र० । [च० : सहज] ।

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए[1]। उपज क्रोध ज्ञानिन्ह[2] के हिए[1] ॥
अति संघरषन कर जो कोई। अनल प्रगट चंदन तें होई ॥
दो०—बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठ तब करौं विविध अनुमान ॥
क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥१११॥
कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका ॥
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे ॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि पर त्रिय गामी ॥
भव कि परहिं परमातम[4] बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक ॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने ॥
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
लाभु कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥
हानि कि जग येहि सम कछु भाई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई ॥
अघ की बिनु तामस कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥
येहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेउँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेउँ ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा ॥
मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥

१—[प्र० : कोए, होए]। द्वि०: किए, हिए। [(३) (४) : कोए, होए]। [तृ० : किएऊ, हिएऊ]। च० : द्वि०।
२—प्र० : ज्ञानिन्ह। द्वि०: ज्ञान्हि [(३) : ज्ञानिन्ह]। [तृ० : ज्ञानी]। च० : द्वि०।
३—प्र० : को होहिं। द्वि०: प्र० [(३) कि होइ, (४) (५) का होइ]। [तृ०: की होइ]। [च० : किमि होइ]।
४—प्र० : परमातमा। द्वि० : प्र० [(२अ) : परमारथ]। तृ० : परमातम। [च० : परमारथ]।
५—प्र० : बिनु तामस। द्वि० प्र० [(३) (४) (५): पिसुनता सम]। तृ०, च० : प्र०।

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥११४॥

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥
सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥
सुनि भुसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी ॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ॥
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउ बिस्रामा ॥
एक बात प्रभु पूँछौं तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ॥
सोइ[1] मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं ॥
ज्ञानहि भगतिहि अंतरु केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना ॥
भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर ॥
ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना। ये सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड जाती ॥

दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस[2] बिमुख जो पद रघुबीर ॥

सो० सोउ मुनि ज्ञान निधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिकल[3] होहिं हरिजान नारि बिस्व माया प्रगट ॥११५॥

इहाँ न पच्छपात कछु राखौं। बेद पुरान संत मत भाखौं ॥

१—प्र० : सोई। द्वि० : प्र०। [तृ० : सो]। च० : प्र०।
२—प्र० : बिषयाबस। द्वि० : प्र०। [तृ० . बिषयाबिबस]। [च० : जो बिषयबस]।
३—प्र० : बिबस। द्वि० : प्र०। तृ० : बिकल। च० : तृ०।

दो०–सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ज्ञान बिराग निधान॥
जेहि[1] आश्रम तुम्ह बसब[2] पुनि सुमिरत स्री भगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥११३॥

काल करम गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
रामरहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥
बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। प्रभु[3] प्रसाद कछु दुरलभ नाहीं॥
सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥
एवमस्तु तव बच मुनि ज्ञानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥
सुनि नभ गिरा हरष मोहि भएऊ। प्रेम मगन सब संसय गएऊ॥
करि बिनती मुनि आयेसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥
हरष सहित येहि आस्रम आएउँ। प्रभु प्रसाद दुरलभ बर पाएउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥
करौं सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥
जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आस्रम आवौं खगभूपा॥
कथा सकल मैं तुम्हहिं सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥

दो०–ता तें येह तन मोहिं प्रिय भएउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पाएउँ गएउ सकल संदेह॥

१—प्र० : जेहि। द्वि० : प्र०। [तृ० : जो]। च० : प्र०।
२—प्र० : बसब। द्वि० : प्र०। [तृ०, च० : बसहु]।
३—प्र० : हरि। द्वि० : प्र०। तृ० : प्रभु। च० : तृ०।

तेइ तृन हरित चरइ जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदिता मथइ बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥
दो०—जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावइ ज्ञान घृत ममता मल जरि जाइ ॥
तब बिज्ञानरूपिनी[१] बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरइ दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करइ सुगाढ़ि ॥
सो०—येहि बिधि लेसइ दीप तेजरासि बिज्ञानमय ।
जातहिं तासु[२] समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७॥
सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा[३] । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा[३] ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौ सोई । तौ यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ॥
कल बल छल करि जाहिं[४] समीपा । अचल बात बुझावहिं दीपा ॥

१—प्र० : रूपिनी । द्वि० : प्र० । [तृ० : निरूपिनी] । [च० : निरूपन]
२—प्र० : तासु । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५) : जासु] : तृ० : प्र० । [च० : जासु] ।
३—प्र० : उजियारा, निरुआरा । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : उजियारी, निरुआरी] ।
४—प्र० : जाहिं । द्वि० : प्र० [(४) (५) : जाइ] । [तृ० : जाइ] । च० : प्र० ।

मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति[1] अनूपा ॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारि वर्ग जानैं सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया । ता तें तेहि डरपति अति माया ॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी । जाचहिं भगति सकल सुख खानी ॥

दो०—यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ ।
जानै तेर[2] रघुपति कृपा सपनेहुँ मोह न होइ ॥
औरौ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन[3] ।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन[4] ॥११६॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ[5] बखानी ॥
ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भएउ गोसाईं । बँध्यो कीर मर्कट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भएउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह बिसेषी । ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई । तबहु कदाचित सो निरुअरई ॥
सात्विक स्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपा हृदयँ बस आई ॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥

१—प्र० : रीति । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : नीति] ।
२—प्र० : जो जानै । द्वि० : प्र० । तृ० : जाने ते । च० : तृ० ।
३—प्र० : सुप्रबीन । द्वि० : प्र० । [तृ० : परबीन] । [च० : सो प्रबीन] ।
४—प्र० : अबिछीन । द्वि० : प्र० [(५अ) : अबछीन] । [तृ०, च० : अबछीन]
५—प्र० : जाइ । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : जाउ] ।

पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय [१] जग आरति[२] हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥
हरि गुरु निंदक दादुर होई । जनम सहस्र पाव तन सोई ॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि । जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक संत निंदा रत । मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह तें दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह तें[३] पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ[४] । दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

दो०—एक ब्याधि बस नर मरहिं ये असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहइ समाधि ॥

१—प्र० : उदय । द्वि० : प्र० [(४) : हृदय] । [तृ०, च० : प्र० ।
२—प्र० : आरति । द्वि० : प्र० [(५अ) : अनरथ] । [तृ० : अनरथ] । [च० : आरत] ।
३—प्र० : [illegible] । द्वि० : प्र० । [तृ० : [illegible]] । [च० : जेहिते] ।
४—प्र० : डमरुआ । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : डहरुआ] ।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी । तिन्ह तनु चितवन अनहित जानी[1] ॥
जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं बिषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥
जब सो प्रभंजन उर गृह जाई । तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई ॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ[2] बिषय बतासा ॥
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सोहाई । बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥
दो०—तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस ।
हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहँगेस ॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८॥
ज्ञानपंथ[3] कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत[4] सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करइ उपाई ॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने । मुकुति निरादर भगति लुभाने ॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अबिद्या नासा ॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी । जिमि सो असन पचइ[5] जठरागी ॥

१—प्र० : भयी । [द्वि० : भय] । प्र० : भइ । [च० : भा] ।
२—प्र० : साधन । द्वि० : प्र० [(३) (४) (५अ): साधन] । [तृ०, च० : साधन] ।
३—प्र० : ज्ञानपंथ । द्वि० : प्र० । [तृ० : ज्ञानकपंथ] । च० : प्र० ।
४—प्र० : भजत । द्वि० : प्र० [(३): भजन] । [तृ० : भगति] । च०: प्र० ।
५—[प्र० : पचई] । द्वि० : पचइ । [तृ०, च० : पचवै] ।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥१२५॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहिं भवपासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥
मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा स्रवन मनु लाई॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई॥

दो०–मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥१२६॥

सोइ सर्बज्ञ गुनी सोई ज्ञाता। सोइ महि मंडन१ पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुलत्राता। राम चरन जा कर मन राता॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ२ कबि कोबिद सोइ२ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा॥
धन्य सो देस जहाँ३ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसारी॥
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥

दो०–सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥१२७॥

१–प्र० : मंडन। [द्वि०, तृ० : मंडित]। [च० : मंडल]।
२–प्र० : सोइ,सोइ। [द्वि०, तृ० : सो, सो]। च० : प्र०।
३–प्र० : देस सो जहँ। द्वि० : प्र० [(५अ). सो देस जहाँ]। तृ०, च० : सो देस जहाँ।

नेम धर्म आचार तप ज्ञान[1] जज्ञ जप दान ।
भेषज पुनि कोटिन्ह[2] नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥१२१॥

येहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाए[3] । हहिं[4] सब के लखि बिरलेन्हि पाए[3] ॥
जाने तें छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी ॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥
राम कृपा नासहिं सब रोगा । जौं इहि भाँति बनइ संजोगा ॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा । संजम यह न बिषय कै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी[5] ॥
येहि बिधि भलेहि कुरोग[6] नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं । जब उर बल बिराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई । बिषय आस दुर्बलता गई ॥
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥
सब कर मत खगनायक येहा । करिअ राम पद पंकज नेहा ॥
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥
कमठ पीठि जामहिं बरु बारा । बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम तें अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

१—प्र० : ज्ञान । द्वि० : प्र० । तृ० : जोग । च० : तृ० ।
२—प्र० : कोटिन्ह । द्वि० : प्र० । [तृ० : कोटिन्ह] । च० : प्र० ।
३—प्र० : गाए, पाए । द्वि० : प्र० । [तृ० : गाई, पाई] । [च० : गावा, पावा] ।
४—प्र० : हहिं । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : है] ।
५—प्र० : मति पूरी । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : अति रूरी] ।
६—प्र० : भलेहि रोग । द्वि० : प्र० [(०अ): भलेहि कुरोग] । तृ० : [illegible] रोग । च० : तृ० ।

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय येहा ॥
राम उपासक जे जग माहीं । येहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नांहीं ॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥
येहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥
जासु पतितपावन बड़ बाना । गावहिं कबि श्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजिअ[1] मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति केहिं नहिं पाई ॥

छं०—पाई न केहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥
रघुबंसभूषन चरित येह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै ।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति[2] हरै ॥
सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥
जाकी कृपा लव लेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ ।
पाएउ परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

दो०—मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर ॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ १३०॥

१—प्र०, द्वि०, तृ०: भजिअ । [च०: भजहि] ।
२—प्र० : रघुबर । द्वि० : प्र० । तृ० : रघुपति । च० : तृ० ।

मति अनुरूप कथा मैं भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई । तौ मैं रघुपति कथा सुनाई ॥
यह न कहिअ सठही हठसीलहिं । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥
द्विजद्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
राम कथा के तेइ[1] अधिकारी । जिन्ह के सतसंगति अति प्यारी ॥
गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहुँ यह बिसेषि सुखदाई । जाहि प्रान प्रिय श्री रघुराई ॥
दो०—राम चरन रति जौं चहै[2] अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो येहि कथा करौ[3] स्रवन पुट पान ॥१२८॥
राम कथा गिरिजा मैं बरनी । कलिमल समनि[4] मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥
येहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पथाना[5] ॥८॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देहि येहि मारग सोई ॥
मनकामना सिद्धि नर पावा[6] । जे येह कथा कपट तजि गावा[6] ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥
सुनि सब कथा हृदयँ अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥
नाथकृपा मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥
दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥१२९॥

१—प्र० : तेइ । द्वि० : प्र० [(३): ते] । [तृ०: ते] । [च० : तुम्ह] ।
२—प्र० : चहइ । द्वि० : प्र० [(५अ) : चहै] । तृ० : चहै । च० : तृ० ।
३—प्र० : करी । द्वि० : प्र० । तृ० : करै । च० : तृ० ।
४—प्र० : समनि । द्वि० : प्र० । [तृ० : सम न] । च० : प्र० ।
५—प्र० : पंथाना । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : पथ नाना] ।
६—प्र० : पावा, गाव । द्वि० : प्र० । [तृ०, च० : पावै, गावै] ।

श्लो०—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं ।
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणं ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये ।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसं ॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
मायामोहमलापहं[१] सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्तयावगाहन्ति ये ।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने अविरल हरि-भक्तिसम्पादनो नाम सप्तमः सोपानः समाप्तः ।



१—प्र० : भवापहं । द्वि० : प्र० । [तृ० : मलापहं] । [च० में यह श्लोक नहीं है ।